आधुनिक हिन्दी काव्य
में
पुराण कथाओं का प्रयोग

मालती सिंह

प्रयाग विश्वविद्यालय
की
डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी
की उपाधि के लिए
डा० शैल कुमारी
के
निर्देशन में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध
जून, १९६७

विषय सूची

विषय-सूची

प्राक्कथन— क से ह०

पूर्वपीठिका — १— २४

पुराण और प्राचीन साहित्य— पृ० २— ३
भक्तिकाव्य की पौराणिक आधारभूमि पृ० ३— ११
रीतिकालीन प्रवृत्तियों का प्रभाव पृ०११— २४

खण्ड एक

(आधुनिक हिन्दी काव्य में पुराण कथाओं का परम्परागत प्रयोग

अध्याय— प्रथम पृ० २५— ७३

(आधुनिक हिन्दीकाव्य में पुराणकथाओं का प्रयोग:परम्परागत स्वरूप)
परम्परागत स्वरूप का अर्थ पृ० २७— २८
भारतेन्दु युग और पुराण कथाएं पृ० २८— ३१
रामकथा पर आधारित काव्य साहित्य पृ० ३१— ४०

मुक्तक काव्य— पृ० ३१— ३३
प्रबन्ध काव्य— पृ० ३३— ४०

कृष्ण कथा पर आधारित काव्य साहित्य पृ० ४०— ५६

मुक्तक काव्य— पृ० ४०— ४७
प्रबन्ध काव्य— पृ० ४७— ४६

अन्य पुराणकथाएं पृ० ५०— ६६
पौराणिक पात्रों का परम्परागत रूप पृ० ६६—७०

खण्ड— दो

(आधुनिक हिन्दी काव्य में पुराणकथाओं का नवीन प्रयोग)

अध्याय द्वितीय (प्रथम सोपान) पृ० ७४— ११६

(नव चेतना और पुराणकथाओं के नवीन प्रयोग)

प्रवेश पृ० ७६
परिस्थितियां पृ० ७७ – ७८
प्रतिक्रिया:परिस्थितियों से उत्पन्न चेतना का स्वरूप पृ० ७८–८७
१. सांस्कृतिक जागरण पृ० ७६–८३
२. राजनीतिक जागरण पृ० ८४–८५
३. नवचेतना का स्वरूप पृ० ८५–८७
नवजागरण और हिन्दी साहित्य पृ० ८७–६०
नवीन चेतना के संदर्भ में पुराणकथाओं के प्रयोग की दिशा पृ० ६०–१०४
क. पौराणिक कथाओं पर आधारित काव्य रचनाओं की बहुलता पृ० ६०–६६
ख. कथाओं की अभिव्यक्ति के नूतन तत्व पृ० ६६–१००
ग. कथा का परिवर्तित स्वरूप पृ०१००–१०४
दो प्रमुख रचनाएं पृ०१०४–१११
१.प्रमरदूत पृ० १०४–१०७; २. रामचरित चिन्तामणि–पृ० १०७-१११
पौराणिक पात्रों के प्रस्तुतीकरण के नूतन तत्व पृ० १११-११६

अध्याय तृतीय (द्वितीय सोपान) पृ० १२०–२०६

(नवीन मूल्य और नूतन शिल्प : कुछ पौराणिक प्रबन्धकाव्य)
सामान्य प्रवृत्तियां पृ० १२२-१२८
क. नवीन मूल्यों की स्थापना पृ० १२२-१२७
१. लोकादर्श की स्थापना, २. मानव का प्रशस्तिगान,
३. उपेक्षित पात्रों का उद्धार
ख. नूतन शिल्प पृ० १२७-१२८
१. कथा का संक्षिप्तीकरण
२. स्वाभाविक तथा तर्कपूर्ण घटनाप्रसंगों की योजना

कुछ पौराणिक प्रबन्ध काव्य पृ० १२६ - १९७

प्रियप्रवास, पृ० १२६-१३५; साकेत, पृ० १३५-१४३; कौशल किशोर- पृ० १४३ - १४६; नहुष - पृ० १४६ - १४८; वैदेही बनवास - पृ० १४६ - १५१; दैत्यवंश - पृ० १५१-१६०; कृष्णायन - पृ० १६०-१७१; साकेत सन्त - पृ० १७२ - १७८; दिवोदास - पृ० १७८ - १८०; रावण महाकाव्य - पृ० १८० - १९३; रामराज्य - पृ० १९३ - १९७ तक ।

पौराणिक पात्र : शील निरूपण के मौलिक तत्व पृ० १९७ - २०६

अध्याय - चतुर्थ (तृतीय सोपान) पृ० २०७ - २७९

(सूक्ष्म भावाभिव्यंजक काव्य और पुराणकथाएं)

प्रवेश पृ० २०८ - २१०

पुराण कथाओं के प्रयोग की दिशा पृ० २१० - २१६

१. घटना के स्थान पर भावों का चित्रण - पृ० २११-२१६

२. प्रतीकात्मक कथाविधान पृ० २१६

कुछ प्रमुख रचनाएं पृ० २१७ - २६७

रामकी शक्ति पूजा - पृ० २१७-२१९, कामायनी - पृ० - २१९-२३२, पार्वती पृ० २३२-२४०, अंबरा, पृ० २४० - २४९, तारकवध- पृ० २४९ - २६२, उर्मिला पृ० २६२ - २६७ ।

विविध पौराणिक पात्र : द्वन्द्वशील नवीन मानव पृ० २६७ - २७९

अध्याय - पंचम (चतुर्थ सोपान), पृ० २८० - ३३०

(नवीन भावबोध और पुराणकथाएं)

प्रवेश पृ० २८१

मूल्यगत संक्रमण पृ० २८१-२८४

संवेदना का नवीन धरातल पृ० २८५-२८९

पुराणकथाओं के प्रयोग की दिशा—पृ० २८६—२६१

पुराणकथाओं के प्रयोग का स्वरूप—पृ० २६१—३००

कुछ प्रमुख रचनाएं — पृ० ३०१—३१८

कनुप्रिया—पृ० ३०१—३०६; मन्वन्तर—पृ० ३०६—३१३ ;
संशय की एक रात —पृ० ३१४-३१८

भावबोध का नवीन धरातल और पौराणिक चरित्र — पृ० ३१८—३३०

क मानव विशिष्टता की स्थापना — पृ० ३१८— ३१२
ख. संवेदना के नवीन धरातल और पौराणिक चरित्र — पृ० ३१३—३३०

अध्याय षष्ट— पृ० ३३१—३७१

(आधुनिक हिन्दीकाव्य में पौराणिक प्रतीक)

प्रतीक — पृ० ३३२— ३३३
साहित्य और प्रतीक — पृ० ३३३—३३६
प्रतीक और अन्य अलंकार — पृ० ३३६—३३८
प्रतीक का सीमा विस्तार और पौराणिक प्रतीक — पृ० ३३८— ३३६

आधुनिक हिन्दी काव्य में पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग की दिशा — पृ० ३३६— ३४१
राष्ट्रीय भावना और पौराणिक प्रतीक — पृ० ३४१— ३४७
छायावादी काव्य और पौराणिक प्रतीक — पृ० ३४७— ३५४
नयी कविता और पौराणिक प्रतीक — पृ० ३५६— ३७१

पुस्तक सूची — पृ० १— १७

पुराणकथानुक्रमणिका— पृ० १— २२

प्राक्कथन

'प्राक्कथन'

प्राचीनता पुराणों का गुण है किन्तु वह नित नवीन (प्रत्यग्रो भिनवो नव्यो नवीनो नूतनोनव:) भी है। आधुनिक हिन्दी काव्य में पौराणिक कथाओं के प्रयोग का अध्ययन करते समय मैंने प्राचीनता एवं नवीनता का अन्वेषण करने का यत्न किया है। एक ओर धार्मिक भावना की वाहक ये पुराणकथाएं अपने मूल धार्मिक अर्थ में अनेक काव्य ग्रन्थों की विषयवस्तु बनी हैं तो दूसरी ओर नूतन अर्थों से संयुक्त होकर नितान्त नवीन तत्वों की वाहक। आधुनिक हिन्दी काव्य में पुराणकथाओं के विशिष्ट संदर्भ में मैंने इन दोनों प्रवृत्तियों को दो खण्डों के रूप में विभाजित करके देखा है। प्रथम खण्ड में केवल एक अध्याय है जिसमें कथाओं के परम्परागत-स्वरूप को लेकर चलने वाली रचनाओं का विवेचन हुआ है। यह परम्परा धार्मिकता एवं रीतिकालीन शृंगारिकता की है।

'द्वितीय खण्ड' में कथाओं के नवीन प्रयोगों का विवेचन हुआ है। 'आधुनिक युग' नवीनता का ही द्योतक है अतएव नवीन प्रयोगों का क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है। इसको चार अध्यायों में (द्वितीय से पंचम अध्याय तक) विभाजित करके प्रस्तुत किया गया है। नवीन प्रयोगों का प्रारम्भ भारतेन्दुयुग से होता है और पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के समय तक की पौराणिक रचनाओं को नवीन प्रयोगों की प्रारम्भिक भूमिका कहा जा सकता है। परिवर्तित रूप के प्रारम्भिक चरण में प्रयुक्त पुराणकथाएं अपने मूल धार्मिक तथा

अलौकिक कलेवर को त्याग कर युगीन सत्यों को आत्मसात करके चली हैं किन्तु अब तक किसी निश्चित भावादर्श तथा प्रौढ़ शैली का विकास नहीं हो पाया था। वस्तुत: सुनिश्चित भावादर्श एवं नवीन प्रौढ़ शैली का विकास उत्तर द्विवेदी युग से प्रारम्भ होता है जबकि `प्रियप्रवास` तथा `साकेत` जैसी रचनाओं का सृजन होता है। अत: नवीन प्रयोगों की दृष्टि से तत्व एक ही है किन्तु प्रारम्भिक विकास तथा प्रौढ़ विकास के कारण उन्हें दो अध्यायों में विभक्त किया गया है— अध्याय द्वितीय और तृतीय। एक ही तत्व के दो भिन्न स्थितियों के द्योतक होने के कारण उनमें पर्याप्त साम्य भी है।

`चतुर्थ अध्याय` में छायावादी भावसंकुलता के संदर्भ में पुराण-कथाओं के प्रयोग पर प्रकाश डाला गया है। मैंने छायावाद को उसके रूढ़ अर्थ में नहीं लिया है और न इस वितण्डनावाद से ही मुझे विशेष मतलब है कि इस धारा का विकास कब से हुआ तथा इस धारा के कवि कौन हैं। चतुर्थ अध्याय में व्यापक रूप में उन सभी रचनाओं को स्वीकार किया है जिसमें भावाभिव्यंजना की प्रधानता है। आधुनिक हिन्दी काव्य में छायावादी काव्यधारा ने भाव-प्रधान दृष्टि का परिचय दिया है। अत: छायावाद शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थ में लिया गया है— संकीर्ण अर्थ में नहीं। यही कारण है कि मैंने `दिनकर` की `उर्वशी` को भी चतुर्थ अध्याय में रखा है।

`पंचम अध्याय` में विद्रोहमूलक अधुनातन काव्यधारा —प्रयोग-वाद तथा नयीकविता में प्रयुक्त पौराणिक कथाओं के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

इन चार अध्यायों में विभाजित विषयवस्तु नितान्त भिन्न वर्ग का नहीं है, प्रत्युत ये चार स्तर के उत्तरोत्तर विकास के भी परिचायक हैं। इसके इस `विकसित` रूप को संकेतित करने के लिए ही इन्हें चार `सोपानों` के रूप में रखा गया है। यह विकास `कालगत` नहीं वरन् `विषयगत` है। समय की दृष्टि से विषयवस्तु का विभाजन ठीक से सम्भव भी नहीं है।

क्योंकि आज भी ऐसे पौराणिक प्रबन्धकाव्यों की रचना हो रही है जिसे प्रवृत्ति की दृष्टि से द्विवेदी युग अथवा उससे भी पूर्व भारतेन्दु युग की काव्य-धारा के निकट रखा जा सकता है।

`पुराणकथाओं के नवीन प्रयोगों` से आशय उनका नवीन सामयिक तत्वों से संयुक्त होकर व्यक्त होना है। इस नवीनता की यात्रा में प्रयुक्त पुराणकथाएं अपने मूल पौराणिक संदर्भ से दूर होती जा रही हैं। अपने मूल रूप से इस तरह दूर होते जाना ही उसका विकास है। इस विकास को ही चार `सोपानों` के रूप में देखा गया है। ये पुराणकथाएं अपनी कथात्मकता को खोकर पुराणेतरसामयिक तत्वों से संयुक्त होती जा रही हैं। विविध पौराणिक प्रसंगों का त्याग ही नहीं हुआ है वरन् कथा अपने मूल धार्मिक आशय को खोकर नवीन भावों, विचारों अथवा संवेदनाओं की वाहक बनी हैं। अत: यह यात्रा धार्मिकता से अधार्मिकता की ओर अवरोहण की भी है, `आदर्श` से `यथार्थ` की ओर संचरण की है। अपने मूल रूप में धार्मिक अर्थ की वाहक कथाएं सर्वप्रथम धर्म को त्याग कर युगीन आदर्श की वाहक बनीं, पुन: कवि के व्यक्तिगत भावों और अन्तत: धार्मिक विद्रोह की अभिव्यक्ति के लिए भी उन्हीं को माध्यम बनाया गया है। आगे क्या रूप धारण करेंगी — यह भविष्य के गर्भ में है।

`षष्ट अध्याय` इन खण्डों से स्वतंत्र है। इस अध्याय में आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रयुक्त पौराणिक प्रतीकों का विवेचन हुआ है।

कथाएं मात्र कथाएं नहीं होती हैं वरन् वह पात्रों के विभिन्न कृत्यों का संघटित रूप हैं। अत: मैंने प्रत्येक अध्याय के साथ पौराणिक पात्रों के स्वरूप पर भी विचार किया है, जिसके विवेचन के बिना विषय अस्पष्ट और अधूरा रह जाता है।

` आधुनिक हिन्दी साहित्य` के पूर्व भी पुराणकथाओं पर आधारित काव्य रचना की व्यापक परम्परा का विकास हो चुका था। इस परम्परा

पर दृष्टिपात किए बिना विषय विवेचन को आगे बढ़ाना अत्यन्त कठिन था, विशेषत: भारतेन्दुयुग के साहित्य को उन पूर्वकालीन परम्पराओं की अवशिष्ट धारा के रूप में समझा जा सकता है। अत: `पूर्वपीठिका` में मैंने इस परम्परा पर ही प्रकाश डाला है।

`पुराणकथानुक्रमणिका` में मैंने केवल विविध पुराण में वर्णित मुख्य कथाओं— राम कथा, कृष्ण कथा तथा शिव कथा— से सम्बन्धित प्राप्त स्थलों की सूची दी है।

मेरे विषय का अध्ययन विभिन्न कथाओं का वर्ग बनाकर भी हो सकता था किन्तु विवेचन की इस शैली से कदाचित् सम्पूर्ण विषय समाहित न हो पाता। वस्तुत: पुराणकथाओं का वर्णन करते समय आधुनिक कवियों की दृष्टि आद्योपान्त सम्पूर्ण कथा के निर्वाह की ओर नहीं है। कथा के स्थान पर मात्र कथाप्रसंग और पात्रों के चरित्र को लेकर ही अनेक नवीन तत्वों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इन नवीन तत्वों में विविधता होने के कारण प्रयुक्त कथाओं में भी वैभिन्न के दर्शन होते हैं। वस्तुत: नवीनता को दृष्टि में रखकर ही प्राचीन कथा के परिवर्तन और परिवर्द्धन की प्रवृत्ति भी प्राप्त होती है। अत: कथा का मूल पौराणिक अंश इतना अल्प रह गया है कि यदि कोई कथा को लेकर आगे बढ़ते हैं तो वे पुराणेतर नवीन तत्व ढूढ जाते हैं जिनके लिए ये कथाएं माध्यम स्वरूप हैं। क अत: कथा की प्रवृत्ति को दृष्टि में रखकर प्रयुक्त कथाओं के प्राचीन रूप की सापेक्षता में उनके स्वरूप का विवेचन करना मेरा अभिप्रेत था। इसीलिए प्रत्येक अध्याय में प्रवृत्ति विशेष को दृष्टि में रखकर कुछ प्रमुख पौराणिक प्रबन्ध काव्यों की कथा का अध्ययन भी प्रस्तुत किया है।

अपने इस अनुसंधान-कार्य में मुझे एक ओर विविध पुराणों का अध्ययन करना पड़ा है दूसरी ओर आधुनिक काव्यों का। एक का सम्बन्ध प्राचीनता से है दूसरे का आधुनिकता से। ये दो विरोधी धाराएं परस्पर अन्त-र्मुक्त होकर नवीन धारा की सृष्टि करती हैं। इस नवीन धारा का अवलोकन

करना, उसके अन्दर पैठ कर दोनों धाराओं के पृथक किन्तु परस्पर अन्योन्याश्रित अस्तित्व का अन्वेषण करना मेरा उद्देश्य था । वस्तुत: कभी-कभी प्राचीन भी नवीनता की भूमि पर अवतरित होने पर नवीन आयाम की सृष्टि करता है । दूसरी ओर आधुनिकता भी प्राचीन से संयुक्त होकर अधिक गरिमामय हो जाता है । मैंने आधुनिकता के आलोक में पुराणकथाओं को देखा है, प्राचीन अंशों का अन्वेषण मात्र करके नवीनता को छोड़ा नहीं है ।

अपने इस कार्य में मैं अपनी निर्देशिका आदरणीया डा० शैलकुमारी के सुयोग्य निर्देशन को विस्मृत नहीं कर सकती । उनके सुयोग्य निर्देशन के परिणाम-स्वरूप ही मेरा यह शोध प्रबन्ध पूरा हुआ । उनके प्रति आभार प्रकट करके उनके 'दाय' को छोटा नहीं बनाना चाहती । यदि वह मेरी सीमाओं एवं असमर्थताओं के प्रति इतनी सहिष्णु न होतीं तो शायद मेरा यह कार्य भी पूरा न हो पाता ।

मैं जबलपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० उदयनारायण तिवारी की विशेष रूप से आभारी हूं जिन्होंने समय समय पर पुराणों के अनेक दुर्बोध स्थलों को मेरे लिए बोधगम्य बनाया ।

'टंकण कला' के लिए श्री मेवालाल मिश्र की विशेष कृतज्ञ हूं जिन्होंने अधिक से अधिक समय देकर मेरे कार्य को पूरा कराने में सहयोग दिया । उनका सहयोग केवल 'टंकण' कार्य तक सीमित नहीं था, वरन् इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार से मेरी सहायता की है ।

मैं काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कर्मचारियों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूं जिन्होंने अध्ययन के समय मुझे अनेक प्रकार की सुविधा प्रदान की है ।

अन्त में मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय विभाग के श्री मोहन-जी मेहरोत्रा तथा श्री विश्वनाथ मिश्र की आभारी हूँ जिन्होंने मुझे पुस्तकों की सभी प्रकार की सुविधा प्रदान कर मेरे शोधकार्य में सहायता की है ।

मालती सिंह

१५ जून १९६७ ई० —मालती सिंह

पूर्वपीठिका

पूर्वपीठिका

१. पुराण और प्राचीन साहित्य—

सामान्यत: `पुराण` शब्द का अर्थ प्राचीन कथाओं के संग्रह से समझा जाता है। अमरकोशकार ने इसके पुरातन और चिर नवीन स्वरूप की ओर संकेत करते हुए कहा है —

पुराणे प्रतनप्रत्न पुरातन चिरन्तनम् ।
प्रत्यगोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनोनव: ।।[१]

कतिपय पुराणों में भी पुराण शब्द की परिभाषा देते हुए कहा गया है —

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ।।

अर्थात् जिस ग्रन्थ में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित का वर्णन हो उसे पुराण कहा जाता है। किन्तु पुराणों में मात्र सर्ग, प्रतिसर्ग, अथवा राजवंशावली का वर्णन ही नहीं है वरन् हमारी संस्कृति, हमारा सम्पूर्ण लौकिक एवं धार्मिक जीवन सन्निहित है। वस्तुत: आख्यायिकाप्रधान होने के कारण पुराण एक ओर लौकिक साहित्य अर्थात् जनसाहित्य के गुणों से विभूषित है, दूसरी ओर धर्म और दर्शन के अनेक मतमतान्तरों का विवेचन भी इन आख्यायिकाओं के माध्यम से हुआ है। डा० बलदेवप्रसाद मिश्र के विचारानुसार पुराणों का प्राचीनतम रूप लोकवृत्तात्मक था और उसका प्राचीनकाल में धर्मशास्त्र से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका था। धर्मशास्त्रीय क्रियाओं का पुराण में निवेश पंचम

---

[१] अमरकोश, तृतीयकाण्ड, श्लोक ७७

—अष्ट शती की घटना मानी जाती है।[१] अत: वैदिक धर्म को — जो अपनी निगूढ़ता के कारण केवल द्विज वर्ग की सामग्री रह गई थी— पुराणों ने सामान्य जनता के लिए ग्रहणीय धर्म बनाया। 'सामान्य जनता को वैदिक तत्वों तथा क्रियाकलापों का लोक-दृष्ट्या प्रतिपादन करना पुराण का अपना तात्पर्य था।'[२]

भारत मुख्यत: धर्मप्रधान देश है। अत: तदनुरूप प्राचीन भारतीय साहित्य का विकास भी धार्मिक रूप में हुआ है। इसके अतिरिक्त साहित्यिकों का दृष्टिकोण आदर्शात्मक था। एक ओर उनके जीवनादर्श का एक रूप उनकी धर्मसाधना थी, किन्तु लौकिक जीवन में भी उदात्त मानवीय गुणों को ही महत्ता मिली है। परिणामस्वरूप संस्कृत साहित्य में केवल उदात्त चरित्र ही नाटक तथा महाकाव्य के नायक बन सकते थे। पुराणों को विभिन्न चारित्रिक गुणों का आचार-संहिता कहा जा सकता है जिसमें एक ओर लौकिक धरातल पर विभिन्न करणीय आदर्श कर्मों का विवेचन हुआ है दूसरी ओर धार्मिक साधना के लिए भी अनेक मार्गों का निर्देश किया गया है।

अत: अपनी धार्मिकता एवं लोकवृत्तात्मकता के कारण पुराणग्रन्थ शताब्दियों से भारतीय साहित्य को अनुप्राणित करते रहे हैं। संस्कृत साहित्य में पुराणों की कथाओं को माध्यम बना कर नाटक तथा काव्य ग्रन्थ की व्यापक परम्परा वर्तमान है।

२. भक्तिकाव्य की पौराणिक आधारभूमि—

हिन्दी साहित्य का विकास संस्कृत साहित्य के विकासक्रम में आता है, अतएव संस्कृत साहित्य की परम्पराओं और प्रवृत्तियों से उसको अलग करके नहीं

---

१. पुराणविमर्श, पृ० ४०

२. वही, पृ० ३३८

देखा जा सकता है। किन्तु हिन्दी साहित्य के आदि युग का प्राप्त साहित्य मुख्यत: दो वर्ग का है — पहला जैन, बौद्ध तथा नाथपंथ का धार्मिक साहित्य, दूसरा तत्कालीन नरेशों की वीरता को आधार बनाकर लिखा गया काव्य । अत: तद्युगीन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप उस समय के नायक महावीर, बुद्ध तथा ऐतिहासिक वीर थे । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार ईसा की सातवीं आठवीं शताब्दी में ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर काव्य ग्रन्थ लिखने की प्रथा खूब चल पड़ी थी ।[१] कुछ इन परम्पराओं का प्रभाव और कुछ युग की परिस्थितियां भी इस प्रकार के साहित्य-निर्माण का कारण बनीं ।

वस्तुत: हिन्दी साहित्य में पुराण कथाओं का आश्रय सबसे अधिक भक्तिकाल में लिया गया है । भक्तिकाल का साहित्य मुख्यत: धार्मिक प्रेरणा से उद्भूत है तथा तत्कालीन धार्मिक चेतना को पुराणों से अलग करके नहीं देखा जा सकता है । उस समय का धर्म क्या है ? सगुण और निर्गुण उपासना के मध्य से प्रवाहित होने वाली वैष्णव या भागवत धर्म की धारा । यद्यपि निर्गुण भक्त कवियों ने अपने आराध्य देव को साकार व्यक्तित्व नहीं प्रदान किया, किन्तु इस मार्ग के भक्ति का भावादर्श भी पुराणों के अनुसार है । मुख्यत: दो रूपों में प्रवाहित होने वाली सगुण भक्ति की धारा पुराणों के दो धर्म नायकों (अवतारों) तथा उनके जीवन की कथाओं को आधार बनाकर विकसित होती है — राम कथा पर आधारित राम भक्ति की धारा और कृष्ण कथा के आधार पर विकसित होने वाली कृष्ण भक्ति-धारा ।

भक्तिकाल में सगुण भक्ति की जो अजस्र धारा प्रवाहित हो उठी थी उसकी अनुभूति पद्धति का उद्गम यद्यपि दक्षिण के आलवार भक्तों से माना जा सकता है, परन्तु इस युग में आकर जिस रूप में यह भक्ति विस्तृत होती है

---

१. हिन्दी साहित्य, पृ ६८

उसके लिए धरती पुराणों में ही मिलती है। दक्षिण में आविर्भूत होने वाली इस भक्ति के पूर्व भी पुराणों में विष्णु के विभिन्न अवतारों के प्रति सगुण तथा निर्गुण दोनों ही रूपों की भक्ति प्राप्त होती है। 'उत्तर भारत में पौराणिक धर्म का प्रचार पहले से ही था। शैवभक्ति का प्राधान्य था। कृष्णावतार तथा रामावतार की भी व्यापकता थी।'[१] वस्तुत: दक्षिण के भक्ति आन्दोलनों ने इसके विकास में विशेष योग दिया।

विशेषत: पुराणों के अवतारवाद की धारणा ने भक्ति के विकास में विशेष पृष्ठभूमि का काम किया है — 'अवतारों से ही लीला का विस्तार होता है, जिसका श्रवण और मनन भक्ति का प्रधान साधन है। अवतारों के विविध लीलाओं के फलस्वरूप ही विविध नामों का उद्भव होता है जिनका कीर्तन और जप भक्ति के लिए आवश्यक साधन है। यही कारण है कि मध्ययुग के प्राय: सभी सम्प्रदायों ने किसी न किसी रूप में अवतारों की कल्पना अवश्य की है। शिव के अनेक अवतारों की चर्चा मिलती है। गोरखनाथ तथा मत्स्येन्द्र नाथ को भी शिव का अवतार माना गया है और तो और आगे चल कर अवतारवाद के घोर विरोधी कबीर जी को ज्ञानी जी का अवतार ही माना जाने लगा। —— वस्तुत: सगुण भक्ति के मार्ग के मूल में अवतार की कल्पना है।'[२] जैसा ऊपर कहा गया है कि भक्ति काव्य के अन्तर्गत जिन काव्य वस्तुओं का उपयोग किया गया है, वे पौराणिक ही हैं। विशेषत: कृष्ण भक्ति ~~को सबसे~~ साहित्य का कथातत्व तथा विचारतत्व पूर्णत: पौराणिक ही है। कृष्ण भक्ति को सबसे व्यापक रूप में स्वीकार करने वाले हिन्दी के भक्ति-विचारधारा के भक्तकवि सूरदास का सम्पूर्ण काव्य—साहित्य श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार है। कृष्ण के प्रति नवधभक्ति का स्वरूप, भक्ति के अन्तर्गत जीव,

---

१. भागवत दर्शन, डा० हरवंशलाल शर्मा, पृ० ५२

२. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६२

मूल जगत सम्बन्धी धारणाएं, कृष्ण से सम्बद्ध कथाएं और कथा प्रसंग, कृष्ण की विविध लीलाएं, कृष्ण कथा के विविध पात्रों का निरूपण पुराणों को उपजीव्य ग्रन्थ मानकर किया गया है। वस्तुत: भक्तिकाल में कृष्ण का जो लीला अवतारी रूप विकसित हुआ वह महाभारत के अनुसार न होकर श्रीमद्भागवतपुराण तथा विष्णु पुराण के अनुसार है। हिन्दी में विकसित राम कथा का आधार कहीं बाल्मीकि रामायण, अथवा कहीं अध्यात्म रामायण और आनन्द रामायण या अन्य ग्रन्थ हैं, किन्तु राम कथा भी विविध पुराणों में प्राप्त है। राम कृष्ण के अतिरिक्त विष्णु के विविध अवतारों का वर्णन तथा उनके प्रति श्रद्धा एवं भक्ति का प्रदर्शन भक्तिकाल के लगभग सभी कवियों ने किया है।

पुराणों में जिस नवधाभक्ति का उल्लेख किया गया है उसमें भक्ति के नौ रूपों में —श्रवण, कीर्तन या आराध्य देव के गुण-कथन का भी विधान है। एक ओर अपने आराध्यदेव के प्रति जहां प्रत्यक्ष रूप में आत्मनिवेदन करना भक्ति प्रदर्शन का एक रूप है, वहां दूसरी ओर उनके गुण कथन अर्थात् चरित का वर्णन भी भक्ति भावना को व्यक्त करने का मुख्य साधन है। इसीलिए उस समय के भक्त कवियों ने कृष्ण, राम तथा अन्य देवी देवताओं के चरित्र का वर्णन भी अपनी लेखनी के द्वारा किया है। स्वभावत: एक ओर जहां पौराणिक नायक उनके काव्य के विषय बने वहां दूसरी ओर चरितगान के लिए उनके जीवन से सम्बद्ध कथाओं का उपयोग भी होने लगा। तुलसीदास ने `राम चरित मानस` की रचना राम-चरित्र वर्णन की दृष्टि से ही की है, वहां सूरदास ने कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध कथाओं का वर्णन भी कृष्ण लीलाओं अथवा उनके `गुणों का गान` करने की भावना को दृष्टि में रख कर किया है। अतएव भक्ति के विभिन्न साधनों के रूप में `गुण कथन` की परम्परा के कारण एकओर देवी-देवताओं के प्रति स्तुतिमूलक साहित्य की रचना हुई है, दूसरी ओर उनसे सम्बद्ध पौराणिक कथाएं भी प्रबन्ध तथा मुक्तक काव्य की विषय बनती रही हैं।

इस युग की भक्ति में राम और कृष्ण को दो भिन्न भाव-धाराओं के आधार के रूप में स्वीकार किया गया था, इसीलिए उनका दो भिन्न रूप परिलक्षित होता है। राम-भक्ति-शाखा में राम के गरिमामय, मर्यादापुरुषोत्तम रूप की अवतारणा हुई है, जो प्रबन्ध काव्य के अधिक अनुकूल था। अत: इस युग के राम कथा पर आधारित काव्य-साहित्य में कथात्मक अंश अपेक्षाकृत अधिक है। तुलसी के `रामचरित मानस` तथा केशवदास की `रामचन्द्रिका` में राम जन्म से लेकर राम राज्याभिषेक या उसके बाद की कथा को क्रमबद्ध रूप में विस्तार से लिया गया है। परन्तु कृष्ण काव्य में ` कहु भगवत लीला वर्णन करि` का उद्देश्य होने पर भी उनका विस्तार नहीं है। वस्तुत: कृष्ण के माधुर्यपरक रूप के प्रति जिस रागात्मक भक्ति को स्वीकार करके सूरदास तथा नन्ददास आदि कृष्ण भक्ति कवि चले थे, उसमें प्रबन्धदृष्टि नहीं थी। अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में कीर्तन तथा दैनिक चर्या के रूप में अष्टकालिक सेवा-विधान उनके लिए अनिवार्य था। कीर्तन मुख्यत: मुक्तक प्रणाली से सम्बद्ध है---फिर भी भागवत की कथा के आधार के रूप में स्वीकार करने के फलस्वरूप सामान्य प्रबन्धात्मकता यहां परिलक्षित होती है। सूरदास के `सूरसागर` में कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित सभी कथा प्रसंगों का वर्णन हुआ है। नन्ददास ने इस कथा के स्फुट प्रसंगों के आधार पर कई लघु प्रबन्धों की रचना की है। इसके अतिरिक्त कृष्ण के लीला रूप के प्रति ही इन कृष्ण भक्त कवियों की दृष्टि अधिक केन्द्रित होने के कारण कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन की कथा के स्थान पर उनके बाल और किशोर लीलाओं का ही वर्णन अधिक किया गया है।

राम और कृष्ण को आधार बनाकर विकसित होने वाली यह भक्ति-धारा आगे चल कर अनेक रूपों में अपना विकास-पथ बनाती है। सबसे अधिक रूप कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय में होता है। इन सम्प्रदायों में भी कृष्ण के प्रति विभिन्न भावों की भक्ति के कारण अनेक उप सम्प्रदायों की स्थापना हुई है। जिस समय उत्तरी भारत में श्री वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्गी-कृष्णभक्ति का प्रतिपादन किया उसी समय पूर्व में श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण तथा राधा के प्रति अत्यन्त भाव-

विह्वल भक्ति प्रकट की है । इसी सम्प्रदाय की विकसित धारा `गौड़ीय सम्प्रदाय` है । गोस्वामी हितहरि-वंश द्वारा स्थापित `राधावल्लभी` सम्प्रदाय (सं०१५५६-१६०६) स्वामी हरिदास द्वारा स्थापित `सखी सम्प्रदाय` (सं० १५३७ से १६३५) आदि इसी प्रकार के सम्प्रदाय हैं । कृष्णभक्ति के उपर्युक्त विभिन्न सम्प्रदायों में कृष्ण और राधा के व्यक्तित्व को विभिन्न रूपों में स्वीकार किया गया है अत: तदनुरूप उनसे सम्बन्धित कथाएं भी उसी रूप में प्रयुक्त हैं । इन सम्प्रदायों में कृष्ण के भक्ति के अनुरूप कृष्ण कथा में अनेक अवान्तर कथाओं, नवीन प्रसंगों तथा नए पात्रों का विकास हुआ है । परन्तु इस विकास क्रम में एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि राधा को शक्ति के रूप में स्वीकार करने के कारण कृष्ण के स्थान पर राधा की प्रधानता हो जाती है, कारण ये कविगण राधा के माध्यम से ही कृष्ण के पास तक पहुंचना चाहते हैं।इसी तरह राम भक्ति धारा में भी तुलसी के दास्यभाव की भक्ति के समानान्तर ही राम को केन्द्र में रखकर मधुर भाव का आरोपण भक्तिकाल में ही प्रारम्भ हो चुका था ।[१] इस रूप को आधार बना कर विकसित होने वाली भक्ति पद्धति में राम को भी लीला-पुरुष के रूप में स्वीकार किया गया है । यह सम्प्रदाय ही आगे चलकर रसिक-सम्प्रदाय कहलाया है ।

राम के मधुर रूप के चित्रण का मूल तो अनेक प्राचीन आगम ग्रन्थों में भी मिलता है ।[२] परन्तु राम की इस मधुरोपासना को साम्प्रदायिक नाम सर्व-

---

१. हिन्दी में कृष्ण भक्ति के विकास के पूर्व ही कृष्ण पूर्णत: लीला अवतारी रूप में स्वीकार कर लिए गए थे किन्तु मानस में राम के मर्यादाशील रूप को देखकर यही धारणा बनी थी । किन्तु आधुनिक अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चला है कि कृष्ण की भांति राम के माधुर्यपरक रूप का चित्रण मानस की रचना के समय से होने लगा था ।

२. डा० भगवतीप्रसाद सिंह ने अपने शोध प्रबन्ध ग्रन्थ `राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय` में इसके मूल स्रोतों पर विस्तार से विचार किया है ।

प्रथम अग्रदास (१६ वीं शती उत्तरार्द्ध) ने दिया है। उससे पूर्व राम के चरित्र में मर्यादापूर्ण नैतिक निष्ठा के फलस्वरूप उनसे सम्बद्ध विहार-लीलाओं को अत्यन्त `गुह्य` समझा जाता था। सर्वप्रथम अग्रदास ने इस सम्प्रदाय को व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए इस `गुह्यसाधना` का उद्घाटन किया।[१] बाद में इस सम्प्रदाय की व्यापकता इतनी बढ़ जाती है कि इन भक्त कवियों ने तुलसी के रामचरित मानस` की भी माधुर्यपरक व्याख्या की है और आधुनिक युग के अनेक विद्वानों ने भी तुलसी के राम-काव्य में भी सूक्ष्म रूप में इस भक्ति की स्थिति को स्वीकार किया है।

रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्तन के मूल-प्रेरणा के रूप में अनेक प्राचीन ग्रन्थों कंबन-रामायण, आनन्द-रामायण, भुशुंडी-रामायण, हनुमत्संहिता तथा कोशलखण्ड को ले सकते हैं, किन्तु इस दृष्टि से सबसे बड़ी प्रेरणा राम भक्ति धारा के समानान्तर प्रवाहित होने वाली कृष्ण भक्ति धारा से मिली है। कृष्ण भक्तिशाखा के इस प्रभाव का परिणाम यह हुआ कि इस रसिकोपासना के साहित्य में राम और सीता का रूप कृष्ण तथा राधा के सदृश होता गया। इसीलिए राम से सम्बद्ध कथाओं के वर्णन में भी बहुत परिवर्तन आ गया है। राम-साहित्य का प्रणयन जीवन का व्यापक आधार लेकर विकसित हुआ था। अत: उसमें राम का लोकपरोपकारी, रामराज्यसंस्थापक रूप के साथ ही लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान आदि पात्रों का वर्णन प्राप्त होता है तथा उनके सहारे मानव-जीवन के व्यापक आदर्शों की स्थापना के लिए सभी पात्रों के पारस्परिक सम्बन्धों को सूत्र रूप में ग्रथित करके प्रस्तुत किया गया है। राम का लोक-रंजक रूप ही इन रसिकोपासक कवियों के लिए स्वीकार्य हो सका और राम कथा के विविध पात्रों के स्थान पर (मानस के प्रत्येक पात्र का महत्व है राम के विशिष्ट

---

१. श्री गुरु संत अनुग्रह से अस गोपुर वासी।
रसिक जनन हित करत रहसि यह ताहि प्रकासी ॥

—— ध्यानमंजरी, पद ८०

संदर्भ में कवि ने सबकी कथा कही है) सीता की सखियों का महत्व अधिक बढ़ जाता है । अत: राम का रसिक-शिरोमणि रूप ग्राह्य होने के कारण इस सम्प्रदाय के कवियों ने उनके जीवन के केवल एक खंड की कथा पर ध्यान केन्द्रित किया है । राम के जीवन की सम्पूर्ण कथा अर्थात् उनके शत्रु संहारक, लोक उद्धारक, प्रजाप्रतिपालक, राजा राम से सम्बन्धित कथाओं का नितान्त अभाव है ।

कथा-संकोच के अतिरिक्त कथा-प्रसंगों के स्वरूप में भी नूतन कल्पना के प्रयास परिलक्षित होते हैं । कृष्ण के लोकरंजक तथा लीला अवतारी रूप से जिस प्रकार के कथा प्रसंग सम्बद्ध थे उनको राम के जीवन के साथ जोड़ दिया गया है । कृष्ण के सदृश ही राम भी पनघट पर अयोध्यावासिनियों के साथ छेड़ छाड़ करते हैं, सीता की सखियों के साथ हिन्डोला झूलते हैं, जलविहार का आनन्द लेते हैं तथा फाग खेलते हैं । उपरोक्त प्रवृति के फलस्वरूप राम से सम्बन्धित काव्य की रचना भी मुक्तक शैली में होने लगी । तुलसी के समकालीन अग्रदास और नाभादास की रचनाएं मुक्तक शैली में है, और आगे भी जहां राम कथा पर आधृत प्रबन्ध काव्य की रचना हुई उसमें कथा निर्वाह का प्रयास नहीं किया गया है ।

कृष्ण और राम की भक्ति से सम्बन्धित विपुल काव्य साहित्य की रचना हुई है, किन्तु यह भक्ति रामायण तथा पुराण के इन दो मुख्य नायकों से ही सम्बद्ध नहीं है वरन् भक्ति के इस उन्मेषशाली युग में अन्य पौराणिक देवताओं के प्रति भी श्रद्धाभक्ति के प्रदर्शन के लिए उनसे सम्बन्धित पौराणिक काव्य रचना हुई है । राम-कृष्ण के पश्चात् सबसे अधिक प्रचलित देवता शिव-पार्वती थे । स्वयं गोस्वामी तुलसीदास ने पार्वती से सम्बन्धित 'पार्वती-मंगल'[१]

---

१. समय सन् १५८६ ई०.

की रचना की है। इसके अतिरिक्त इस युग के अन्य कवि लछपति के 'शिव विवाह,[1] दयाराम के शिव विवाह,[2] में भक्ति भाव से शिव कथा का वर्णन है। ईश्वर भक्ति के साथ ईश्वर के भक्तों का गुणकथन भी भक्तिसाधना में विशेष महत्व रखता है। पुराणों के विविध भक्त-प्रह्लाद[3], ध्रुव,[4] भरथरी[5], जैसे भक्तों के चरित्र का वर्णन करने की प्रथा भी उस युग में थी।

३. रीतिकालीन प्रवृत्तियों का प्रभाव—

भक्तिकाल में धार्मिक भावना से गृहीत पुराणकथाओं का विकास जिस रूप में हुआ है उसका वह रूप आगे के युगों में (रीतिकाल में) अक्षुण्ण न रह सका। वस्तुत: इस युग की मूल प्रवृत्ति श्रृंगारिकता ने इन कथाओं की आत्मा, उसके रूप तथा पौराणिक चरित्र के स्वरूप में ही अन्तर उपस्थित कर दिया है। भक्ति की उदात्त भावना के क्रोड़ में विकसित होने वाली इस श्रृंगार-पूर्ण लैकिक भावना के लिए उस समय की परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी हैं। ये रीतिकालीन परिस्थितियाँ क्या थीं ? वस्तुत: भारतीय इतिहास में मुगल शासन के सन्ध्याकाल का समय था। औरंगजेब की शासन नीति में उसके साम्राज्य के पतन

---

१. समय (रचना, सन् १७६० ई०)
२. समय सन् १६ ई०
३. रैदास कवि का 'प्रह्लाद चरित्' (१५ वीं शती)
   सब्बाराम का प्रह्लाद चरित (१७३२ ई०)
४. परमानन्द दास विरचित ध्रुवचरित्र (१५५० ई०)
   नरोत्तमदास का ध्रुव चरित्र (१७५७ ई०)
   सुन्दरदास का ध्रुव लीला (१८४४ ई०)
५. गोपाल भरथरी चरित्र, (१६०० ई०)

की सभी सम्भावनाएं सन्निहित थीं । औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् ही केन्द्रीय मुगल शासन छिन्न-भिन्न होने लगा था । ऐसी स्थिति में उस युग के जन-जीवन में गृह-युद्धों के कारण आतंक छाया रहता था । हिन्दू जनता तो युगों से परतन्त्र थी । परतंत्रता वैसे भी नैतिक पतन की कारण बनती है । यही कारण है कि राजनैतिक परवशता एवं आतंकपूर्ण वातावरण के परिणामस्वरूप उस समय के जन जीवन में जिस अनिश्चितता की भावना ने घर कर लिया था उसने तत्कालीन जनता को बौद्धिक तथा नैतिक दृष्टि से पतनोन्मुख बना दिया था । धर्म उनके लिए पावन अनुभूति का विषय नहीं था वरन् जीवन को भुलावा देने का साधन । इसके अतिरिक्त उस समय के कवि लौकिक सुखों से निर्लिप्त मंदिरों से सम्बद्ध साधु सन्त नहीं थे जो भक्तिकाल के कवियों के सदृश उस परतंत्रता के निराशापूर्ण वातावरण में भी अन्तर की ज्योति से प्रकाशमान् भगवद्भक्ति का आधार ग्रहण करके आत्मोन्नति के उच्च शिखर पर पहुंच सके । इनके लिए लौकिक सुख त्याज्य नहीं था अत: उन्होंने देवताओं के स्थानापन्न लौकिक भूपालों का आश्रय-ग्रहण किया और उनके मनोरंजन के लिए काव्य रचना करते थे ।[१] ये राजा-महाराजा उस परतंत्रता के वातावरण में स्वयं स्वत्वहीन हो गए थे । उन्होंने अपने स्वाभिमान हीन जीवन को भुलावा देने के लिए विलासिता का आश्रय ग्रहण किया था । अत: इन नरेशों के मनोरंजन के लिए जिस प्रकार के साहित्य की रचना की गई है वह ऐहिकता-मूलक थी । तत्कालीन विलासिता के अनुकूल रीतिकाल का मुख्य वर्ण्य-विषय—श्रृंगार रस (संयोग-वियोग दोनों ही पक्ष), नायिका भेद, नखशिख-वर्णन, षट्ऋतु वर्णन, अष्टयाम वर्णन, तथा काव्य शास्त्र के विभिन्न अंगों और उपांगों का विवेचन था । इन विविध काव्य वस्तुओं के वर्णन में श्रृंगारिकता ही एक मात्र उस समय की मुख्य प्रवृत्ति थी । वस्तुत: श्रृंगारिकता का एकमात्र काव्य की प्रवृत्ति बन जाना नई बात है, अन्यथा श्रृंगारपूर्ण काव्य प्रणयन की परम्परा संस्कृत साहित्य तथा हिन्दी साहित्य के लिए नई नहीं थी । जीवन में अनुभूत होने वाला प्रेम ही (जिसकी विभिन्न स्थितियां हैं) साहित्य के स्तर पर श्रृंगार रस बन जाता है । कृष्ण काव्य का विकास तथा कालान्तर में राम काव्य का विकास भी

---

१. पद्माकर अपने आश्रयदाता महाराजा जगतसिंह के लिए यहां तक कह देते हैं —

मेरे बान मेरे तुम कान्ह हो जगत सिंह

तेरो बान तेरो वह विप्रहौ सुदामा हौं । —पद्माकर ग्रन्थावली, पृ०३०६

श्रृंगारिकता को ही आधार बनाकर विकसित हुआ किन्तु भक्ति के विशेष उन्मेष के कारण वह श्रृंगार रस शुद्ध होकर `मधुरस` हो गया था । अत: भक्तिकाल का श्रृंगार भक्ति का उपकरण मात्र था, प्रेरक शक्ति तो कवि की आन्तरिक भक्ति भावना थी पर रीतिकाल में प्रेरणा का स्वरूप भक्ति न होकर श्रृंगार हो जाता है । रीतिकालीन परिस्थिति जन्य विलासिता ने परम्परा से प्राप्त माधुर्य भक्ति के उदात्त रूप को पंकिल कर दिया । श्रृंगार रस के भेद-प्रभेद के आधार पर भक्ति भक्ति के रम्य अनुभूति के रूप में वर्णित कृष्ण-राधा, सीता-राम के प्रेम-क्रीड़ाओं को अत्यन्त लौकिकस्तर पर व्यक्त किया गया है । उनके श्रृंगार वर्णन के लिए नायक पूर्वकालीन साहित्य के राम तथा कृष्ण ही हैं किन्तु उनके प्रेरणा का रूप भक्ति की अलौकिक अनुभूति नहीं है वरन् श्रृंगारिकता है — `मध्यकालीन साहित्य को श्रृंगार रस के उत्थान और पतन का इतिहास भी कह सकते हैं । जिस प्रकार विभिन्न जलाशयों में संचित जल सूर्य किरणों द्वारा क्रमश: खिंचता हुआ आकाश की ओर जाता है वहां समुज्ज्वल घन बादलों का रूप धारण कर लेता है उसी प्रकार लौकिक साहित्य का श्रृंगारिक रस भी अवसर उच्च आध्यात्मिक स्तर पर पहुंच गया, एक बार अधिक विशुद्ध भी बन गया किन्तु फिर, अन्त में लौटकर उसे मलिन तथा पंकिल भी हो जाना पड़ा और इसमें फंस जाने के कारण अवतारी राधा कृष्ण तथा सीता राम की मिट्टी पलीद हो गई ।`[1] जब राम-सीता तथा कृष्ण राधा का प्रेम लौकिक स्तर पर उतर आया तो उनके प्रेम वर्णन में कवियों ने काम शास्त्र के उपकरणों का उपयोग करते में भी संकोच का अनुभव नहीं किया । नायक-नायिका-भेद के अन्तर्गत विभिन्न नायकों के वर्णन के रूप में इन पौराणिक दिव्य पात्रों का अदिव्य वर्णन हुआ ही है उसके साथ उनके सौन्दर्य

---

१. परशुराम चतुर्वेदी — रीतिकालीन श्रृंगारिक प्रवृत्ति तथा नवीनबन्ध, पृ० २४ ।

वर्णन में `नखशिख` वर्णन प्रणाली के अनुसार अंग-उपांगों का वर्णन किया गया है, तो षट्ऋतु तथा बारहमासा के अन्तर्गत प्रेम संदर्भों का वर्णन भी समाविष्ट हुआ है ।

राम काव्य की धारा—

भक्तिकाल में स्थापित राम भक्ति काव्य की धारा इस युग में भी प्रवहमान थी । विशेषत: रसिक सम्प्रदाय का विकास इस परिस्थिति में अधिक हुआ है और उससे सम्बन्धित विपुल साहित्य की रचना भी हुई । किन्तु इन रचनाओं में रीतिकालीन श्रृंगारिकता का पर्याप्त प्रभाव है । यह पहले भी कहा जा चुका है कि कृष्ण काव्य के सदृश राम भक्ति काव्य में भी राम के सम्पूर्ण वृत्त को स्वीकारनकरके उसके एक अंश अर्थात् राम के किशोर काल की लीलाओं तथा राम सीता के प्रेम क्रीड़ाओं का वर्णन ही अधिक हुआ है । इस युग तक आते-आते कथा में और भी संकोच होता है और उन प्रसंगों के स्थान पर युग की प्रवृत्ति के अनुसार अनेक अवांतर प्रसंगों की योजना भी होती है । ये अवांतर प्रसंग अधिक तर तत्कालीन वैभव विलास तथा श्रृंगारिकता के कारण निर्मित हुए हैं । अतएव एक ओर परम्परागत पौराणिक कथा में संकोच हुआ है तो दूसरी ओर अन्य पुराणोतर प्रसंगों के वर्णन के कारण कथा का नवीन विस्तार हुआ है । यथा राम और सीता के जन्म बधाई के वर्णन के समय विभिन्न प्रकार के संस्कार-नामकरण, कर्णभेद, छठी आदि का वर्णन , विवाह के वर्णन के समय कलशों की सजावट, विभिन्न रीति-रस्मों (द्वारपूजा से लेकर पुरोहित के विभिन्न कृत्यों) का विस्तृत वर्णन मिलता है । यथा: दिव कुशल विरचित ` राम जी की पत्तल' ( सन् १७७० ई० ), श्री रामनाथ प्रधान कृत ` रामकलेवा रहस्य' (सन् १८४५ ई०), में राम विवाह वर्णन के अन्तर्गत विवाह के रीति रस्मों के साथ विभिन्न व्यंजन-सामग्रियों का वर्णन हुआ है । यह प्रवृत्ति सबसे अधिक खुल कर रसिक सम्प्रदाय के भक्तों की

रचनाओं में प्रकट हुई । रीतिकाल में इस भावधारा के उपासक भक्तों की गद्दियां राजस्थान, अयोध्या, तथा जनकपुर में स्थापित हो गई थीं और उनका प्रसार तथा विकास इस युग में विशेष रूप से हुआ है । इस समय के अनेक राजा-महाराजा इस सम्प्रदाय में दीक्षित थे ।[१] इनके अर्थदान के कारण इन मठों पर अपार ऐश्वर्य तथा विलासिता का साम्राज्य रहता है । अतएव इन गद्दियों से सम्बद्ध कवियों की रचनाओं पर विलासी प्रवृत्ति का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा । राम तथा सीता का वर्णन करते समय इन कवियों ने तत्कालीन विलासिता पूर्ण जीवन का विशेष आरोपण किया है । राम उस समय के विलासी, ऐयाश नरेशों, अथवा सामन्तों के सदृश प्रतीत होते हैं जिनके जीवन का लक्ष्य भोग-विलास है राज्य का संचालन नहीं । राम के साकेत धाम का वर्णन भी मध्यकालीन मुगलशासकों के अन्त:पुर के सदृश है, जहां विभिन्न सखियां राम की सेवा में खड़ी हैं । कहीं गजमुक्ता की झालर लटक रही है तो कहीं झीने कपड़े का पर्दा पड़ा है तो कहीं मखमल बिछा है —

विपुल बिहार सु अस्थल सोहै । जिनहिं देखि सुर मुनि मन मोहैं ।
कनक भवन तेहि पुर बिच राजै । कोटिनि भानु तेजलखि लाजै ।।

< < < < < < < <

बाहिर महलन की रुचि राई । अद्भुत अकथ कहहुं किमि गाई ।।
भीतर कुंज, निकुंज अनूपा । बने उचित मणि विविध सरूपा ।।
बिछे पलंग बहु पले हिंडोरे । कुंज कुंज प्रति मोद न थोरे ।।
चौबारिनि चित्राम सुहाए । मणि माणिक में जाय न गाये ।।
परदनि की अनुमान रचनाई । देखत बने बरणि नहीं जाई ।।
मखमलादि मृदु पाट पटोरे । बिछे लेत चित बरबस चोरे ।।

---

१. रीवां के महाराज विश्वनाथ सिंह, काशी के ईश्वरप्रसाद सिंह, इसके अतिरिक्त पन्ना, इन्दौर, बलरामपुर, टिकारी आदि के अनेक छोटे-बड़े राज्यों के नरेश ।

झीना ललित न जात बखाने । लघु विशाल सुन्दर सौ पाने ।।[1]

इस विलासपूर्ण वातावरण में राम तथा सीता (प्रेम सम्बन्धों का वर्णन करते समय) के विविध प्रेम-क्रीड़ाओं के वर्णन में नवीन प्रसंग विस्तार के दर्शन होते हैं । विशेषत: कृष्ण जीवन से सम्बद्ध विविध विहार लीलाओं को भी राम के साथ संयुक्त किया गया है । राम के विहार-लीलाओं के वर्णन के समय जलविहार, वनविहार, उपवनविहार, हिंडोला, फाग यहां तक की राम-सीता के चौपड़ खेलने का वर्णन भी प्राप्त होता है । राम तथा कनक भवन वासिनी सीता की विभिन्न सखियों के साथ `रास` के वर्णन का विशेषप्रचलन इस सम्प्रदाय के कवियों में था । श्री कृपानिवास ने `रासपद्धति` में श्रीमद्भागवत-पुराण में वर्णित रास के आधार पर 'महारास' का वर्णन किया है । कृष्ण की विविध लीलाओं का अनुकरण इस काव्य धारा में इतना अधिक हुआ है कि राम भी पनघट पर अयोध्या की नारियों को छेड़ते चलते हैं ——

पनघट पर हमको मोहि लई दशरथ के प्यारे सांवरिया ।
जलभरत धरत कटि करक गई सरेखत सारी सरकिगई निरखत छवि।[2]

या राम से सम्बद्ध दान-लीला का वर्णन भी हुआ है ——

विपिन प्रमोद सो बोरि महा ह्वै आवो दही ले बड़ी अलबेली ।
मानत ना डर काहु की नेकहु पाई अचानक आजु अकेली ।।
दीजो हमैं करि नेग तुहे भावतो चित की ओर हो रूप नवेली ।
बात हमारी सुने सब कान दै हो तुम तुमतो वय जोग सहेली ।।[3]

---

१. प्रेमलता जी, `राम भक्ति साहित्य में मधुर उपासना` के संकलन से गृहीत, पृ० ३४७

२. श्याम सखे : वही, पृ० ३७०

३. राम सखे : वही, पृ० ३२३

इसी प्रकार रसिक भक्त कवियों ने राम और सीता के युगल-केलिवर्णन के समय किसी प्रकार के संकोच का अनुभव नहीं किया है और प्रेम का काम शास्त्रीय स्तर का अमर्यादित वर्णन किया है —

जब लाड़िली कटि लचकि मचकति भुकति पिय की ओर
तब जात बलि लाडिली गति होत चंद चकोर ।।
जब परसि गात उरोज कंवल उहत सिय सकुचाय ।
पुनि हेर पिय तन नमित बरबरहि रसन दसन दबाय ।।
लखि हाव पिय उर भाव सरसत चाव चित उमगात ।
सो निरखि दंपति सुख सरस अलि मुदित उमगी गात ।।[१]

< < < < < < < <

नीवी करषत बरजत प्यारी ।
रस लंपट संपुट कर जोरत पद परसत पुनि लै बलिहारी ।।[२]

< < < < < < < <

पिय हंसि रस रस कंचुकि खोले ।
चमक निवारि पानि लाड़िली मुरकि मुख बोले ।।[३]

---

१. रसिक अली, आन्दोलन रहस्य दीपिका, राम भक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ० २३६

२. कृपानिवास, वही, पृ० २३२

३. वही, पृ० २३३

साथ ही इस समय की परिपाटी के अनुसार राम सीता के नखशिख वर्णन[1] और राम के अष्टयाम[2] की लीलाओं का वर्णन भी प्राप्त है ।

कृष्ण काव्य की धारा---

यह पहले भी कहा जा चुका है कि मुक्तक काव्य रूप की ओर सजगता होने के कारण कृष्ण काव्य में कथात्मक संकोच वर्तमान है । भक्तिकाल में वर्णित कृष्ण की बाल तथा किशोर लीलाओं में रीतिकालीन कवियों की मानसिक निष्ठा मात्र कृष्ण-राधा-गोपी से सम्बद्ध शृंगार लीलाओं तक ही सीमित रही । कृष्ण कथा के उदात्त संदर्भ--- यथा : पूतनाबध, शकटासुरबध, तृणावर्तबध, अघासुरबध, यमलार्जुनोद्धार, धेनुकबध आदि के वर्णन नितान्त अल्प हैं । यद्यपि `रामचरितमानस` के अनुकरण पर कृष्ण जीवन के सम्पूर्ण वृत्त के वर्णन की दृष्टि से प्रबन्धकाव्य लिखने का प्रयास इस समय के कवियों ने भी किया है । ब्रजवासी दास का `ब्रजविलास`, मंचित कवि का `कृष्णायन` तथा देव रचित `देवचरित` है । गुमान कवि की `कृष्णचन्द्रिका`, दीनदयाल गिरि का `अनुरागबाग`, तथा गिरिधरदास का `जरासंधबध` इसी प्रकार की रचनाएं हैं जिसमें सम्पूर्ण कृष्ण कथा अथवा कथा-खण्ड का निर्वाह हुआ है ।

---

१. प्रताप कवि का, `रामचन्द्र जी का नखशिख`, लछीराम का `सियाराम चरण चन्द्रिका`, प्रेमसखी कृत `सीताराम नखशिख`, गुमान कवि का `हनुमान नखशिख` आदि ।

२. कृपानिवास का `समय-प्रबन्ध`, युगल प्रिया का `अष्टयाम`, जनक राज किशोरी शरण रसिक अली का `अष्टयाम`, महाराजा विश्वनाथ सिंह का `अष्टयाम` आदि ।

यह पहले भी उल्लेख हो चुका है कि कृष्ण कथा का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत पुराण है। भक्तिकाल के अनेक कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते समय भागवत-पुराण का ही आश्रय ग्रहण किया है। यद्यपि उस युग में प्रचलित अनेक कार्य-प्रणालियों को भी कृष्ण जीवन के साथ सम्बद्ध करके देखा गया है किन्तु कृष्ण के पौराणिक पक्ष की रक्षा वहां पूर्णरूपेण हुई है। उस समय के भक्त कवियों द्वारा वर्णित, दान लीला, चीरहरण लीला, या रास लीला आदि का विशेष आध्यात्मिक अर्थ भी था। रीति काल में पुराणों की विविध कृष्ण-लीलाओं का वर्णन तो होता है, किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव के कारण अनेक काल्पनिक लीलाओं को भी कृष्ण जीवन के साथ जोड़ दिया गया है। जैसे— मान लीला, मनिहारिन लीला, मालिनी लीला, बिसातिन लीला, सुनारिन लीला, फूल लीला, गंधी लीला, योगिन लीला आदि। ये लीलायें विभिन्न प्रकार की छद्म लीलायें हैं जिसमें कृष्ण राधा या गोपियों से मिलने के लिए छद्मवेश धारण करके उनके पास जाते हैं परन्तु उनके समक्ष किसी न किसी तरह भेद खुल जाता है। और उनका इस छद्म वेश के बहाने मिलन होता है। इस तरह की लीलाओं के वर्णन का प्रचलन उस समय इतना अधिक था कि अनेक कवियों ने उनको आधार बना कर छोटे छोटे स्वतंत्र कथा काव्य लिखे हैं। यथा नागरीदास कृत 'मोर लीला', 'बाग विलास', 'गोपी बैन विलास', मंचित कवि का 'सुरभिदान लीला', प्रेमदास कृत 'पंच रत्नगेंद लीला,' आदि।

कृष्ण की इन विविध लीलाओं के वर्णन के साथ ही इस समय के श्रृंगार-पूर्ण वर्णनों एवम् नायक नायिका-भेद, आदि मुख्य काव्य प्रवृत्तियों के अनुसार भी कृष्ण राधा तथा उनके जीवन से सम्बन्धित प्रसंगों का उल्लेख कदाचित् सबसे अधिक हुआ है। यद्यपि इस युग में राम तथा सीता भी

---

१. समय सन् १७०६ ई०

परम्परागत मर्यादापूर्ण रूप से स्खलित किये गए हैं, किन्तु दोनों में अन्तर है। रामकाव्य में, विशेषतः रसिकोपासना के राम साहित्य में, जहाँ राम के कथांशों या कथा प्रसंगों के वर्णन में उपरोक्त उपकरणों का प्रयोग किया गया है, वहाँ कृष्ण-राधा और उनके जीवन से सम्बद्ध कथावृत्त को उपर्युक्त साहित्यिक-उपकरणों के रूप में प्रयोग किया गया है।

रीतिकाल में नखशिख-सौन्दर्य-वर्णन की प्रवृत्ति खूब प्राप्त होती है। यहाँ तक की केवल नखशिख वर्णन को ध्यान में रखकर अनेक पुस्तकों की रचना हुई है। कुलपति मिश्र का 'नखशिख', तोषनिधि का 'नखशिख', ग्वाल कवि कृत कृष्ण जी का नखशिख,[1] चाचा हित वृन्दावनदास का 'नखशिख', गोकुलनाथ का 'राधा नखशिख'[2], कवि चन्द्रशेखर का 'नखशिख' आदि नखशिख वर्णन की रचनायें हैं जिसमें कुछ तो मात्र कृष्ण राधा के नखशिख सौन्दर्य वर्णन से सम्बन्धित हैं और कुछ में नखशिख वर्णन के अन्तर्गत राधा कृष्ण के सौन्दर्य का भी वर्णन किया गया है। यह प्रथा इस युग में इतनी व्यापक हो जाती है कि राधा या कृष्ण के केवल एक अंग का ही विस्तृत वर्णन किया गया है। यथा: रामचन्द्र पंडित की 'चरण चन्द्रिका', सैयद मुबारक अली बिलग्रामी मुबारक का 'तिल शतक', 'अलकशतक'।[3] राधाकृष्ण के सौन्दर्य वर्णन में उनकी दिव्यता, सुषमा को विस्मृत करके सामान्य नायक-नायिका की भांति स्थूल-मांसलता पूर्ण वर्णन किया है। नखशिख वर्णन की यह परम्परा इतनी कुरुचिपूर्ण हो जाती है कि इन कवियों ने राधा के मुख में शीतलता के दाग का वर्णन भी किया है —

सीतला का दाग राधे मुख में लखात कैधों,
सांवरे प्रसंग के प्रस्वेद साफ साखी है।[4]

---

१. सम्य, सन् १८२७ ई०

२. सम्य, सन् १८१३ ई०

३. १७ वीं शती प्रारम्भ की रचनाएं

४. कवि दिवाकर

इसी प्रकार कृष्णा के अष्टयाम लीला का वर्णन भी हुआ है। देव का 'अष्टयाम', बाबा हितवृन्दावन का 'अष्टयाम' इसी प्रकार की रचना है। कृष्णा-राधा का सबसे अधिक उपयोग नायिका भेद तथा शृंगार-रस के संयोग-वियोग पक्ष की विविध स्थितियों के लिए हुआ है। सूर ने जिस कृष्णा का वर्णन लीला-अवतारी दिव्य पुरुष के रूप में किया था, उनके नायक-नायिका परब्रह्म तथा ब्रह्म की आह्लादकारिणी शक्ति हैं, उनका गोपियों के प्रति तथा गोपियों का उनके प्रति का प्रेम सामान्य भाव की कोटि का न होकर 'महाभाव' है, वहां इस युग के कवियों ने उन्हें इस परम्परा से विच्छिन्न करके सामान्य नायक-नायिका तथा उनके प्रेम को सामान्य लौकिक स्तर के प्रेम के रूप में स्वीकार किया है। मतिराम ने तो स्पष्ट ही कह दिया है :—

> बरनि नायक नायकिन रच्यौ ग्रन्थ मति राम।
> लीला राधा रमन की सुन्दर जस अभिराम।[१]

मीर कवि ने 'कृष्णा चन्द्रिका'[२] में कृष्णा को आधार बना कर ही नायिका भेद तथा रस का विवेचन किया है। बेनी प्रवीन के 'नवरस-तरंग'[३] में कृष्णा या ब्रजमण्डल के बहाने नायिकाभेद का निरूपण हुआ है। बेनी प्रवीन की खण्डिता विषयक इन पंक्तियों में कृष्णा शठ नायक के रूप में चित्रित है ——

> भोरहि भ्योंति गई तौ तुम्हें वह गोकुल गांव की ग्वालिन गोरी।
> आधिक राति लौं बेनी प्रवीन, कहा ढिग राखि कियो बरजोरी।।
> आवै हंसी हमें देखत लाल, भाल में दीन्ही महावर घोरी।
> एते बड़े ब्रजमण्डल में न मिली कहूं मांगेहु रंचक रोरी।।[४]

---

१. रसराज, पद ३, मतिराम-ग्रन्थावली, पृ० २०१

२. समय सं० १७७६,वि०

३. समय सन् १८७४ ई०

४. बेनी प्रवीन : रीतिकाव्य संग्रह, पृ० २५८

इसी प्रकार शृंगार रस के वर्णन के अन्तर्गत कृष्ण राधा के अलौकिक प्रेमानुभूति को लौकिक भावभूमि पर स्थापित करने पर ये कवि उनके पूर्व कालीन परम्पराओं को तो विस्मृत ही कर देते हैं, साथ ही लौकिकता की भूमि पर भी स्वस्थ प्रेम के दर्शन न होकर विलासिता ही अधिक है। संयोग की विभिन्न लीलाओं में तत्कालीन वातावरण से प्रेरित नवीन कुसुम लीलाओं का विकास तो हुआ ही है अनेक नवीन विहार लीलाओं की नवीन प्रसंगोद्भावना भी हुई है, जिस पर उस युग के सामंती वातावरण का प्रभाव है। प्रेम के वियोग पक्ष के वर्णन में भी अनुभूति की गहराई न हो कर उक्ति वैचित्र्य अधिक है। कृष्ण के मथुरागमन के पश्चात् राधा के अनुभूतिहीन विरह वर्णन के लिए पद्माकर की यह पंक्तियां उदाहरण के लिए प्रस्तुत कर सकते हैं —

ताके तन ताप की कहौं मैं कहा बात मेरे,
गातहि छुवौ तौ तुम्हें ताप चढ़ि आवैगी ।[१]

विरह वर्णन में विरह उत्पन्न करने वाली स्थितियों के रूप में कृष्ण कथा के प्रसंगों (अक्रूर आगमन, कृष्ण मथुरागमन, उद्धव आगमन आदि) का वर्णन नहीं है। विरह वर्णन के बीच अक्रूर व कुब्जा के प्रति उलाहना, उद्धव के प्रति व्यंग्योक्ति,उद्धव के ज्ञान-मार्ग के प्रति आक्रोश,आदि प्रसंगों का मात्र संकेत कहीं कहीं मिल जाता है। वस्तुत: चाहे शृंगार का संयोग अथवा वियोग पक्ष हो, या नायिका-भेद और नखशिख सौन्दर्य का वर्णन हो, अथवा कृष्ण के अष्टयाम लीलाओं का वर्णन--कृष्ण के पौराणिक पक्ष से इन कवियों का विशेष सम्बन्ध नहीं रह जाता है। पौराणिकताये विच्छिन्न कृष्ण और राधा का नवीन संस्करण हुआ है—मध्यकालीन सामंती सभ्यता के नायक - नायिका के रूप में। वृन्दावन की कुंज गलियों में विचरण करने वाले ये दिव्य पुरुष और नारी रीति काल में आकर महलों में निवास करते हैं

---

१. पद्माकर, जगद्विनोद, पद्माकर ग्रन्थावली, पृ० १६५

तथा महलों के अदब कायदे का पालन करते हैं ——

> अदब से रही बेअदब की न कही कान्ह ।
> वृन्दावन महारानी राधे को महल है ।।[१]

या अपने को गंवार ग्वालिन कहने वाली श्रीमद्भागवत की गोपियां[२] वस्तुत: वैसी नहीं थीं, किन्तु रीतिकालीन कवियों ने उनको तथा उनके प्रेम को ग्रामीणता के स्तर पर उतार दिया है ——

> मेरी गही उन चूनरी मोहन, मैं हूं गह्यो उनको तब फेंटा ।
> मेरो गह्यो उन हार भपेटि के मैं हूं गही वन माल भपेटा ।।
> बाबु लो बेनी प्रवीन सखी जै भई सखियन में च्याल समेटा ।
> मोसे कह्यो अरी कौन री बेटी मैं हूं कह्यो तु है कौन को बेटा[३]।।

अन्य पौराणिक कथाएं——

भक्तिकाल की भांति इस युग में भी रामकृष्ण के अतिरिक्त विभिन्न देवी-देवताओं पर काव्य-रचनाओं का सृजन हुआ है । राम और कृष्ण के पश्चात् सर्वाधिक लोकप्रिय देवता शिव ही हैं । इस युग के कवि, मनियार सिंह की `सौन्दर्य लहरी` एवम् रामचन्द्र कवि की `चरण चन्द्रिका` , में पार्वती के प्रति

---

१. वही

२. चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का

(——श्रीमद्भागवत, १०।४७।१५

< < < < < < < <

किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मन: ।
श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेतार्थ: कृतात्मन: ।।
——श्रीमद्भागवत १०।४७।४६

३. बेनी प्रवीन, रीतिकाव्य संग्रह, पृ० २५०

भक्ति का चित्रण हुआ है। दीनदयाल गिरि के `विश्वनाथ`— नवरत्न`[१] में शिव की स्तुति की गई है। इसके अतिरिक्त विष्णु के अवतारों में नृसिंह को आधार बनाकर बुमान कवि ने `नृसिंह-चरित्र`[२] `नृसिंह पचीसी तथा गिरिधर दास ने `नरसिंह कथामृत` की रचना की है। कवि गिरिधर दास ने विष्णु के अन्य अवतारों पर काव्य रचना की है। यथा: `बाराहकथामृत`, `मत्स्यकथामृत`, `वामनकथामृत` आदि।

इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय कृति गुरुगोविन्द सिंह[३] की `चण्डीशतक` है जिसमें दुर्गासप्तशती के कथा का वर्णन है। गंगा तथा यमुना को आधार बना कर लिखी गई दो रचनायें मुख्य हैं —पद्माकर की `गंगालहरी` तथा ग्वाल कवि की `यमुनालहरी`।

यद्यपि यह रचनाएं विशुद्ध भक्तिभावना से लिखी गई हैं किन्तु इन पर भी रीतिकालीन प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। यथा ग्वाल कवि ने अपने `यमुनालहरी` में रीतिकालीन उपकरण-षट्ऋतु वर्णन तथा शृंगार रस के प्रयोग में किसी प्रकार संकोच का अनुभव नहीं किया है।

---

१. समय, सं० १८७६ वि०

२. समय, सं०, १८७६ वि०

३. कवि का समय सं० १७४० से १७६० वि० तक

खण्ड — एक

(आधुनिक हिन्दी काव्य में पुराणकथाओं का परम्परागत प्रयोग)

अध्याय — प्रथम

आधुनिक काव्य में पुराण कथाओं का प्रयोग:परम्परागत स्वरूप :—

परम्परागत स्वरूप का अर्थ—

आधुनिक हिन्दी काव्य-साहित्य में पुराणकथाओं के प्रयोग के विशिष्ट सन्दर्भ में, यहां परम्परागत रूप से तात्पर्य पुराण निर्दिष्ट आशय से पुराण - कथाओं का ग्रहण मात्र नहीं है, प्रत्युत् हिन्दी काव्य के पूर्वकालीन (रीतिकालीन) परम्पराओं की अविशिष्ट धारा की परम्परा के रूप में समझ सकते हैं, क्योंकि इस रूप में प्रयुक्त यह पौराणिक कथाएं सीधे पुराणों से ही यथातथ्य रूप में गृहीत नहीं हैं, वरन् इन कथाओं के भक्तिकालीन तथा रीतिकालीन विकसित - स्वरूप[१] का प्रभाव भी है। अतएव `परम्परागत रूप` का अर्थ मध्यकालीन साहित्य में प्रयुक्त विविध पौराणिक कथाओं के स्वरूप के अग्रिम विकास से भी है। अपने मूल रूप में ये पुराण-कथाएं विशिष्ट धार्मिक तथा दार्शनिक भावों की वाहक हैं, जिसके पुराण निर्धारित अर्थ के अनुसार ग्रहण भक्ति काल के काव्य साहित्य में प्राप्त होता है किन्तु रीतिकाल की विशिष्ट प्रवृत्ति श्रृंगारिकता के प्रभाव के परिणाम स्वरूप इन कथाओं की मूल भावना में ही अन्तर नहीं उपस्थित होता, वरन् उसका स्वरूप भी परिवर्तित होता है।

पौराणिक कथा-प्रयोग की दृष्टि से `परम्परागत स्वरूप` को सामान्यत: दो रूपों में समझ सकते हैं —एक ओर भक्ति भावना अथवा धार्मिक भावना से पुराण कथाओं का ग्रहण है, दूसरी ओर रीति काल की विशेष

---

१. इसका विवेचन `पूर्वपीठिका` में हुआ है।

प्रवृत्ति शृंगारिकता अथवा काव्य कला के प्रदर्शन के लिए भी पुराण कथाओं को माध्यम रूप में स्वीकार किया गया है। ये दोनों ही प्रवृत्तियां रीतिकालीन काव्य-साहित्य की ही विषय-वस्तु हैं, किन्तु इनको स्पष्ट विभाजन के रूप में भी नहीं समझ सकते हैं क्योंकि रीति-काल में भी यह दोनों प्रवृत्तियां परस्पर अन्तर्भुक्त होकर व्यक्त हो रही थीं। भक्ति मिश्रित शृंगार अथवा शृंगारिकता से परिपूर्ण भक्ति की विशद् परम्परा रीतिकाल में भी थी जिसका विकास भारतेन्दु-युग के काव्य साहित्य में विशेष रूप में तथा अन्य युगों में क्षीणरूप में प्राप्त होता है।

परम्परा का प्रभाव अथवा प्राचीनता का अंश उक्त मूल भावना के कारण ही नहीं वरन् कथा के स्वरूप के कारण भी है। इस तरह की प्रयुक्त कथाओं में कथा का स्वरूप मुख्यत: वर्णनात्मक तथा स्थूल है। कथा वर्णन की दृष्टि से आधुनिक काल में विकसित नवीन वैज्ञानिक दृष्टि तथा विश्लेषण-बुद्धि के आलोक में इन पुराण कथाओं के विश्लेषण, संश्लेषण, वैज्ञानीकरण की प्रवृत्ति नहीं प्राप्त होती है और न कथाओं की युगानुकूल नवीन व्याख्या ही की गई है। कवि का उद्देश्य वाणी को पवित्र करना है। भवसागर पार करने के लिए नौका के रूप में हरिभजन अथवा हरिगुण-कथन के उद्देश्य से, रामायण, महाभारत तथा पुराणों की कथा का वर्णन उसी रूप में कर दिया गया है। धार्मिकता अथवा ईश्वरी विश्वास के कारण चमत्कारिकएवम् अलौकिक घटनाओं का वर्णन पुराणों के सदृश ही हुआ है। कहीं रीति-कालीन कवियों की भांति लेखनी के कलात्मक प्रदर्शन के लिए, कहीं नायिका भेद, नखशिख एवं षट्ऋतु वर्णन के लिए अथवा प्रेम के संयोग-वियोग पक्ष की विभिन्न स्थितियों के वर्णन के लिए पौराणिक प्रसंगों अथवा चरित्रों का अधिक उपयोग हुआ है।

भारतेन्दु-युग और पुराणकथाएं :—

यद्यपि भारतेन्दु-युग में नवजागरण के चिह्न प्रगट होने लगे थे किन्तु इस युग के अधिकांश साहित्य को (विशेषत: काव्य साहित्य को) पूर्वकालीन

धार्मिकता तथा श्रृंगारिकता के अवशिष्ट के प्रभाव के रूप में समझा जा सकता है। वस्तुत: रीतिकाल का सीधा उत्तराधिकार भारतेन्दु युग को ही मिला था। अत: नवचेतना के उन्मेष के इस प्रारम्भिक युग में भी काव्य साहित्य का अधिकांश इस प्रकार की परम्परागत रचनाओं से परिपूर्ण है। भक्तिकाल के भक्ति की धारा रीतिकाल के मध्य से होकर इस युग में भी प्रवहमान थी। भक्ति काल में स्थापित तथा रीतिकाल में विभिन्न रूपों में विकसित राम तथा कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित विविध सम्प्रदाय इस युग में भी विद्यमान थे। स्वयं भारतेन्दु तथा राधा कृष्ण दास कृष्ण भक्ति के वल्लभ-सम्प्रदाय के दीक्षित भक्त थे। राम - भक्ति के रसिक-सम्प्रदाय के भक्त पं० उमापति त्रिपाठी `कोविद` , युगलाशरण हेमलता (समय संवत् १८७५—१९३३) महात्मा बनादास, (समय संवत् १८७८—१९४१), कामवेन्द्रमणि (मृत्यु संवत् १९७५), सीताराम शरण शुभशीला (मृत्यु सं०१९०१) महाराजा रघुराज सिंह (संवत् १८८०– १९३५ वि०) इस युग में भी वर्तमान थे[1]।

इस साम्प्रदायिक भक्ति के अतिरिक्त पुराणों के मुख्य देवता राम, कृष्ण तथा अन्य देवी-देवताओं (शिव-पार्वती,गंगा-यमुना, सूर्य आदि) के प्रति लोक प्रचलित सामान्य भक्ति भावना (अथवा श्रद्धा की भावना)का विशेष उन्मेष भी इस युग में प्राप्त होता है। अनेक कवियों ने धार्मिक भावना से स्तुतिमूलक काव्य की रचना की है तथा पुराण कथाओं का वर्णन भी किया है।

वस्तुत: भारतेन्दु युग तक मध्ययुगीन दरबारों का अन्त हो चुका था, किन्तु दरबारी संस्कृति का प्रभाव अब भी शेष था। राज-दरबारों के स्थान पर इस युग में `कवि समाज` की स्थापना का विशेष प्रचलन था, जिसमें विभिन्न कवि काव्य-कला के प्रदर्शन के लिए अपनी रचनाओं को प्रस्तुत किया करते थे। स्वयं भारतेन्दु ने काशी में `कवि समाज` की स्थापना की थी जिसका पोषण उनके पश्चात् भी होता रहा तथा कानपुर का `रसिक समाज` भी इसी प्रकार के

---

१. कवियों के समय के लिए डा० भगवतीप्रसाद सिंह की पुस्तक `राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय` से सहायता ली है।

कवि-दरबारों का उदाहरण था । समस्या पूर्तियाँ इस समय के कवियों का विशेष व्यसन था और इन कवि समाजों में इस प्रकार के समस्यापूर्तियों का आयोजन भी किया जाता था । इस प्रकार के काव्य-प्रणयन में पौराणिक देवी-देवता तथा उनसे सम्बद्ध कथाओं का उपयोग उसी रूप में होता रहा है, जैसा रीतिकाल के काव्य साहित्य में प्राप्त है । स्वयं भारतेन्दु की रचनाओं में इस प्रकार के परम्परागत काव्य प्रवृत्तियों का पोषण सबसे अधिक हुआ है । इसके अतिरिक्त इनके समसामयिक अन्य कवि श्री प्रेमघन, शंकर, राधाकृष्णादास की रचनाओं में विशेष रूप में तथा अन्य अनेक कवियों में गौण रूप में परम्पराओं का ग्रहण होता रहा है । वस्तुत: इस युग के सभी कवियों ने परम्परा के रूप में भक्ति (चाहे सम्प्रदायनिष्ठ भक्त न भी हों) तथा रीतिकालीन शृंगारिकता का प्रभाव अवश्य ग्रहण किया है । रीतिकालीन प्रेम तत्कालीन कवियों के लिए आवश्यक तत्व था । श्री जगमोहन सिंह तो उस युग में भी रीतिकालीन परम्पराओं का पोषण करते रहे । उन्होंने श्यामा से प्रेम किया था और श्यामा के विरह में `श्याम विरह`, `श्यामा स्वप्न`, तथा श्यामालता` जैसी रचनाएं की थीं ।

भारतेन्दु युग में विशेष रूप से विकसित होने वाली परम्पराओं (पुराण कथाओं के प्रयोग के संदर्भ में) का विकास आगे के युगों में भी होता है । एक ओर पर श्री रघुराज सिंह विरचित `रुक्मिणी-परिणय`, `राम-स्वयंबर` और बाबा रघुनाथ दास राम सनेही का `विश्राम-सागर` है दूसरे
पर श्रीकृष्णचन्द्र कपूर प्रणीत 'व्रजचंद विनोद'
जिसमें धार्मिक श्रद्धा से अलौकिक चमत्कारिक घटनाओं से परिपूर्ण पौराणिक कथा का इतिवृत्तात्मक वर्णन प्राप्त होता है । इसी तरह एक तरफ प्रेमघन और शंकर की शृंगारपूर्ण रचनाएं हैं तो दूसरी ओर `रावण-महाकाव्य` , या `दैत्यवंश` का वह अंश है [१] जहां कवि रीतिकालीन वातावरण की सृष्टि करता है ।

---

१. कवि हरिदयालु सिंह ने अपने दैत्यवंश में अष्टादश सर्ग में वाणपुत्र स्कंद के चरित्र के वर्णन के समय नौकाविहार, मृगया तथा विभिन्न ऋतुओं के जलविहार, हिंडोला पन्सारी, होली यहां तक रास का भी वर्णन किया है इसी तरह उषा का पूर्वानुरागजन्य विरह वर्णन में तथा रावण-महाकाव्य में सुलोचना एवं मेघनाद के प्रेम वर्णन में रीतिकालीन परम्पराओं का पालन करता है ......

" पर्यंक पै लेटि विशाल उषा, मुरझाय गई मानो फूल-छरी ।
घनसार उशीर को लेप कियो, सित कुंकुम लौ सोपरी बिछरी ।।

किन्तु भारतेन्दु युग के पौराणिक वातावरण में इस प्रकार की रचनाएं खप गईं तथा द्विवेदी युग तक भी इसका निर्वाह हो गया, श्री मैथिलीशरण गुप्त के समानान्तर श्री जगन्नाथप्रसाद रत्नाकर की रचनाओं को स्वीकार कर लिया गया, किन्तु आगे के युगों में इस प्रकार की रचनाओं को विशेष महत्व न मिल सका। पर उनका यह प्रयास इस तथ्य की ओर संकेत अवश्य करता है कि युगानुरूप पुराण-कथाओं की अभिव्यक्ति में अन्तर आने पर भी धार्मिक भावना से पुराणकथाओं का ग्रहण आज भी हो रहा है, किन्तु युग की वास्तविकता को अभिव्यक्त करने वाली काव्य की मुख्य धारा से कट कर यह प्रवृत्ति अलग हो गई है। इसी तरह श्री मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं से लेकर `तारक वध' तक के कथा-प्रयोगों के विकास क्रम में यद्यपि व्यक्तिगत विश्वास के रूप में ईश्वरीय-भक्ति प्रच्छन्न रूप में विद्यमान अवश्य है, किन्तु कथा-प्रयोगों के स्तर पर इन कवियों की पुराण-कथाओं पर अधारित काव्य रचनाओं की मूल प्रेरणा पुराणों में स्थित धार्मिकता नहीं है वरन् पुराणेतर अनेक सामयिक उद्देश्य और कवि की व्यक्तिगत भावना या चिन्तना है — जिसकी अभिव्यक्ति के लिए यह पुराण कथाएं और पौराणिक व्यक्तित्व माध्यम-स्वरूप है।

रामकथा पर आधारित काव्य-साहित्य:—

क. मुक्तक काव्य— भक्तिकाल में स्थापित तथा रीतिकाल में विकसित राम के रसिकोपासक सम्प्रदाय के अनेक कवि भारतेन्दु-युग के पूर्व तथा उनके समय में

पिछले पृष्ठ का शेष—

बिजना करते रही सोसहिं लाई, गुलाब की नाई दई सिगरी।
बनि धूम उड्यो सोह, छूट्यो हरा, बिरहानल मे हति जात नरी।।

— दैत्यवंश, स १३, पृ० २०१

भी काव्य रचना करते रहे हैं। किन्तु जैसा कि पहले भी संकेत किया गया है कि राम कथा भी कृष्ण कथा के साँचे में ढलने ~~कुछ लगे~~ लगी थी, जिसके परिणाम स्वरूप रामकाव्य भी मुक्तक-परक हो गया था। भारतेन्दु युग तथा उनके बाद भी राम की विविध लीलाओं तथा क्रियाकलापों का वर्णन स्फुट रूप में होता रहा है। स्वयं भारतेन्दु ने भी एक दो पदों में राम की वन्दना की है[1] तथा 'रामलीला' नामक एक लघु चम्पू की रचना भी की थी, जिसमें अत्यन्त संक्षेप में बालकाण्ड से अयोध्याकांड की कथा वर्णित है। श्री प्रेमघन तथा शंकर ने भी राम के प्रति वन्दना के पद लिखे हैं। श्री सुधाकर द्विवेदी राम-भक्त थे और उन्होंने भी राम सम्बन्धी कुछ पदों की रचना की है।[2]

आधुनिक युग में भी रसिक सम्प्रदाय के विभिन्न कवियों ने राम की विहार लीलाओं यथा : जलविहार, वाटिका विहार, राम-सीता के प्रेम के संयोग एवं वियोग पक्ष की विविध क्रीड़ाओं, हिंडोला, झूलन, रास आदि प्रसंगों का वर्णन अनेक स्फुट पदों में किया है तथा सम्पूर्ण राम कथा वर्णन के अन्तर्गत भी इन प्रसंगों की योजना हुई है। इस युग के राम-भक्त कवियों में विशेष उल्लेखनीय कवि महाराज रघुराज सिंह ने अनेक पदों में राम के जन्म की बधाई गाई है तथा राम-सीता तथा सीता की सखियों के साथ फाग[3] और 'हिंडोला' का वर्णन किया है। हिंडोला की स्थली कभी कनक भवन में है तो कभी सरयू-तट का कदम्ब वृक्ष ——

---

१. जयति राम अभिराम छवि-धाम

पूरन-काम स्याम-वपु वाम सीता-विहारी।

— राग संग्रह, भारते०, ग्र०, पृ० ४५१

२. पिया हो अलसत कुछ पगबीच

लखन लाग सिय पिय सन बोली कछु आई नगीच।

कविता-कौमुदी, भाग ५., पृ १३१

३. रघुराज गुलाल उड़ाय रह्यो

श्री रघुराज सखनि तिरछी आलिन को जिय लेन चह्यो।

— रघुराज विलास, पद २, पृ० ५३

आये हो कनक मंदिर में जनक दुलारी राज दुलारे ।
भूलन देत किये गलबाँही अंग सभी अली संगसोहाहीं ।
वानिक वेश बनाये ।[१]

< < < <

आवत धीजत दोऊ हो ।
सरयूतीर कदम्ब भूलन हित सखि सब कोउ हो ।
बरसत मंद मंद घन कुंदन भुवन अरुणा पर हो ।[२]

ख. प्रबन्ध काव्य— इन मुक्तक रचनाओं के अतिरिक्त रसिक सम्प्रदाय तथा सम्प्रदायेतर कवियों द्वारा प्रबन्धकाव्य के रूप में सम्पूर्ण राम कथा अथवा रामकथा के विविध प्रसंगों को ग्रहण किया गया है। बाबा रघुनाथदास 'रामसनेही' के 'विश्रामसागर'[3] के रघुपति खंड में रामचरित मानस के सदृश शंकर गिरिजा संवाद के रूप में कथा प्रस्तुत है। कवि ने रावण जन्म के उल्लेख के पश्चात् रामजन्म वर्णन से लेकर रामराज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन अत्यन्त भक्तिभाव से किया है। यद्यपि कवि ने प्रयुक्त रामकथा के आधार के रूप में ब्रह्माण्ड पुराण[४] का उल्लेख किया है किन्तु कथा के विविध प्रसंगों का वर्णन मानस के ढंग का है। ब्रह्माण्ड पुराण में एक दो स्थलों पर राम आदि से सम्बन्धित उल्लेखों को छोड़कर रामकथा नहीं प्राप्त है।

---

१. रघुराज विलास, पद १४, पृ० १५

२. रघुराज विलास, पद १३, पृ० १५

३. समय, संवत् १६११ वि०

४. कह्यो ब्रह्माण्ड पुराण मत रघुपति खण्ड बखानि ।

रसिक सम्प्रदाय के भक्त महाराज रघुराज सिंह का `राम स्वयंवर` [1] विशेष उल्लेखनीय कृति है, जिसमें कवि ने रामकथा का सम्पूर्ण वृत्त— अयोध्या वर्णन, दशरथ प्रशंसा से आरम्भ करके राम-राज्याभिषेक तक का वर्णन किया है। कथा का स्वरूप मुख्यत: वाल्मीकि रामायण के सदृश है किन्तु भक्ति की भावना, तथा भक्तिभाव से कथा वर्णन का उद्देश्य मानस के ढंग का है। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में वर्णित विविध पौराणिक कथाओं-- (ऋष्यश्रृंग की कथा, अंगदेश वर्णन प्रसंग में कामदेव के भस्म होने की कथा, करूशा-मलदा वर्णन प्रसंग में इन्द्र के पाप रहित होने का वृत्तान्त आदि) का वर्णन भी कवि उसी रूप में स्वीकार कर लेता है। राम विवाह प्रसंग का वर्णन कवि ने विशेष विस्तार से किया है। उसके पश्चात् की घटनाओं का उल्लेख अत्यन्त वर्णनात्मक ढंग से (कदाचित महाकाव्य का रूप देने के उद्देश्य से) कर दिया है। वस्तुत: इसके मूल में रसिक सम्प्रदाय की वह परम्परा है जिसके अनुसार राम कथा के दु:खद प्रसंगों (यथा राम वनवास, सीता हरण)—का वर्णन वर्जित है। सीता-राम के प्रति भक्तिभावना के कारण कवि ने वाल्मीकि रामायण से स्वीकृत कथा में रामचरितमानस की तरह अलौकिक घटनाओं का विशेष सन्निवेश किया है। सीता को `पराशक्ति` के रूप में स्वीकार करने के कारण मानस की तरह `सीता हरण` प्रसंग में कवि ने `माया सीता`-हरण` का वर्णन किया है। वस्तुत: राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय में सीताहरण के इस वृत्तान्त को अवास्तविक माना गया है।[2] रावणवध की घटना को रामचरितमानस के अनुकरण पर दसशीश-रावण के विभिन्न शीश के कटकर पुन: पुनर्जीवित हो जाने के रूप में प्रस्तुत किया है।[3] `फुलवारी-वर्णन` प्रसंग भी मानस के ढंग का है किन्तु राम-सीता के पारस्परिक पूर्वानुराग की योजना में कवि ने स्वकीया भाव

---

१. रचना, सन् १८७० ई०

२. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, डा० भगवतीप्रसाद सिंह, पृ० २८२

३. वाल्मीकि रामायण में रावण राम के ब्रह्मास्त्र से आहत होकर स्वाभाविक रूप में मरता है।

की सृष्टि के लिए उनके पूर्व सम्बन्धों (विष्णु और लक्ष्मी रूप में) की ओर संकेत कर दिया है।[१] इसी तरह रामवनवास के कारण के रूप में रामचरितमानस की भांति देवताओं द्वारा प्रेषित सरस्वती का मन्थरा की जिह्वा पर आ बैठने का ही वर्णन हुआ है। कवि उसके आगे की कल्पना भी करता है कि दशरथ की बुद्धि पर भी सरस्वती का प्रभाव था, जिससे वह भरत की अनुपस्थिति में सहसा राम का राज्याभिषेक करने की सोचते हैं तथा कैकय और मिथिला - नरेश को निमंत्रण भी नहीं भेजते हैं। अपने दोनों आधार ग्रन्थों से गृहीत राम-जीवन के विविध प्रसंगों का कवि ने केवल उल्लेख मात्र कर दिया है और अपनी रुचि के अनुसार कुछ नवीन प्रसंगों को विशेष विस्तार दिया है। इन प्रसंगों की योजना में रीतिकालीन वातावरण का प्रभाव विशेष रूप में प्राप्त होता है। विशेषत: मध्ययुगीन सामंतों के जीवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं का उल्लेख (यथा अश्वशाला, गजशाला, पानदान, इतरदान) तो करता ही है, अनेक रीतिकालीन रीतिरिवाजों तथा क्रिया-कलापों को भी रामजीवन के साथ संयुक्त कर दिया है। सीता फुलवारी में जाते समय पानदान, पीकदान के साथ चलती हैं।[२] राम भी विवाहोपरान्त अपनी ससुराल में नर्मसखाओं के साथ मिथिला की नारियों से होली खेलते हैं तथा अयोध्या वापस आने पर `मृगया` खेलने जाते हैं। रीतिकालीन कवियों के सदृश ही कवि की रुचि `वस्तु परिगणन` में विशेष रूप से परिलक्षित होती है। राम विवाह के समय वह भोज्य-पदार्थों की नामावली तक गिनाता है। वस्तुत: राम विवाह-प्रसंग में अयोध्या से बारात-प्रस्थान करने के विस्तृत वर्णन से `वर्णनों` की

---

१. राम को देखकर सीता सोचती है कि उनके विरह की घड़ी अब समाप्त हो गई है — सुमिरत प्रीति पुरातनी करत जानकी ध्यान। पृ०३५५, श्लो०१८

× × ×

दुसह विरह दारुण व्यथा जान्यो मिटिहै हाल। पृ० ३५४

२. पानदान लीन्हें कोउ नारी। पीकदान कोउ पाणि पियारी ।।
इतरदान कोउ गहे दुलारी। लिये गुलाबदान कोउ भारी ।।
लिहे लाल उरमाल रसाला। कोउ बीजन कोउ दर्पण माला ।।

हरी अवारन संग में रत्न जटित सखि पाणि।
जय विदेह नृप नंदिनी, बोल रही वर वाणि ।। रामस्व०, १८।३४१

जो शृंखला प्रारम्भ होती है वह दुलहनों के अयोध्या वापस आने पर ही समाप्त होती है। बारात के विभिन्न सजावटों के वैभव पूर्ण वर्णन के साथ ही तेल-चढ़ावन, नख्छू-नहावन, वस्त्र-पहनावन, अगवानी, द्वारपूजा जैसे छोटे से छोटे रस्मों का वर्णन भी हुआ है।

रसिक सम्प्रदाय के कवि लालमणि विरचित `श्री' 'श्री अद्भुत रामायण'[१] की कथा का आधार संस्कृत का `अद्भुत-रामायण' है, जिसमें राम कथा बाल्मीकि द्वारा भारद्वाज मुनि के प्रति वर्णित है। संस्कृत के अद्भुत-रामायण के सदृश ही कवि अम्बरीष कन्या के प्रति नारद के मोह तथा नारद द्वारा उसके जानकी रूप धारण करने का ~~वर~~ शाप देने से कथा का प्रारम्भ करके राम राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में करता है। संस्कृत के अद्भुत रामायण के `रावण वध` प्रसंग की भाँति ही[२] यहाँ भी सीता अहिरावण के बाण से आहत राम को देखकर विकराल रूप धारण करके शत्रु का संहार स्वतः करती हैं तथा देवताओं द्वारा स्तुति किये जाने पर लघु रूप धारण कर लेती हैं —

आदि ज्योति भगवती महमाई। तासु चरित सुनिये मन लाई।
कीन्ह कटक रिपु के पयमारा। लागि मर्दन अस्त्र पंवारा।
मारि खड्ग रिपुदल सब काटा। परे न धरणि रुधिर सब चाटा।
शत्रुघातिनी करि संहारा। पुनि सकोपि महिरावण मारा।
लखि कौतुक नभ सुर अनुरागे। वर्षि सुमन यश गावन लागे।
करि अस्तुति बोले मृदुबानी। अब निज रूप पलटु महरानी।
जबै सुरन बहुविनय सुनाई। धर्यो रूप निज सिय हर्षाई।
भई लुप्त शक्ती क्षण मांही। भूत्ता सिया रूप लखि सुर हर्षाहीं।
जय जय कहि मृदु बचन उचारे। सुरहित तुम सुर रिपु रणमारे।[३]

---

१. कवि ने ग्रन्थ रचना का समय सं०, १९३१ कहा है।

२. अद्भुत रामायण — अध्याय २३।६३

३. वही, पृ० ५४

बाबा गोमतीदास के `नई रामायण`[१] में तुलसी के अनुकरण पर सात कांडों में राम जन्म से राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन अत्यन्त भाव-पूर्ण ढंग से किया गया है । कवि धनाराम के श्री कृष्ण रामायण[१क] में यशोदा-कृष्ण से रामकथा का वर्णन करती हैं । श्री हरिश्चन्द्र ने कुलश्रेष्ठ के `राम-पंचाशिका` में राम-जन्म से राम राज्यारोहण तक की घटना का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में किया गया है । श्री महावीरप्रसाद मालवीय के `छन्द रामायण`[२] में यद्यपि धार्मिकता के दर्शन भी हो जाते हैं, किन्तु कवि का उद्देश्य कथा कहना नहीं है, वरन् छन्दों के उपयोग के प्रति अपनी भिज्ञता तथा निपुणता प्रकट करना है । इसीलिए बालकाण्ड से उत्तरकांड तक की रामकथा में से केवल कुछ मुख्य प्रसंगों को लेकर उसी विभाजन के रूप में अनेक छन्दों में राम के प्रति भक्ति का प्रदर्शन किया है । तत्कालीन प्रचलित लोक-शैली `आल्हा` में राम कथा के विविध प्रसंगों के वर्णन का प्रचलन भी हुआ था जिसमें कथा का आधार मुख्यत: मानस ही है । वस्तुत: कथा वर्णन इन कवियों का उद्देश्य भी नहीं है । काव्य कला के प्रदर्शन तथा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों के मध्य कथा का उल्लेख मात्र हो गया । श्री सारस्य प्रसाद सिंह का `आल्हारामायण बालकाण्ड,`[३] 'आल्हारामायण अरण्यकाण्ड,'[४] में क्रमश: बालकाण्ड तथा अरण्यकाण्ड की कथा का वर्णन है चतुर्भुज मिश्र के `आल्हारामायण किष्किंधाकाण्ड`[५]; `आल्हारामायण सुंदरकाण्ड`[६] तथा 'आल्हारामायण लंकाकाण्ड`[७] में मानस के इन्हीं काण्डों की कथा का वर्णन

---

१. कवि ने ग्रन्थ प्रारम्भ करने का समय संवत् १९१४ वि० दिया है ।

१क. प्रकाशन—समय, सन् १८९४ ई०, प्रका०,की भूमिका के अनुसार समय १८७६ ई०

२. समय, संवत् १९४० वि०

३. समय, सन् १८९५ ई०

४. समय, सन् १८९५ई०

५. समय, सन् १८९५ई०

६. समय, सन् १८९०ई०

७. समय, सन् १८९२ई०

उसी रूप में कर दिया गया है। पं० नारायणप्रसाद सुन्दरराम जी के `आल्हाखण्ड रामायण`[१] में सम्पूर्ण रामकथा वर्णित है। श्री गौरीप्रसाद मिश्र ने `गौरी रामायण`[२] में अत्यन्त भक्तिभावना से भवसागर-पार करने के निमित्त राम कथा का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में कर दिया है। श्री देवकीनन्दन त्रिपाठी के `तत्व-रामायण`[३] में रामकथा वर्णन के द्वारा राम भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन हुआ है। श्री बच्चूलाल शर्मा के `रामचरित दर्पण`[४] में भी रामकथा के विविध प्रसंगों का हवाला देकर राम के चरित्र का वर्णन अत्यन्त भक्तिभाव से किया गया है। भक्तिभावना से रचित उपरोक्त विविध ग्रन्थों में `विश्रामसागर` तथा `रामस्वयंवर` को छोड़ कर अन्य रचनाओं में कथा-वर्णन की दृष्टि से न किसी प्रकार की मौलिकता के दर्शन होते हैं और न कथा-वर्णन की प्रौढ़ दृष्टि ही प्राप्त होती है। रामकथा के अतिप्रचलित प्रसंगों का वर्णन करके ही ये कवि अपनी वाणी पवित्र करना चाहते हैं अथवा अपने कवि होने का परिचय देते हैं। इस प्रकार की रचनाओं का विशेष साहित्यिक महत्त्व भी नहीं है।

उपर्युक्त राम-कथा सम्बन्धी विविध पुस्तकों की रचना उस काल में हुई थी जबकि पुराणकथाओं का परम्परावादी रूप ही प्रचलित था किन्तु द्विवेदीयुग तथा उसके बाद भी राम-कथा को आधार बनाकर कहीं भक्तिभावना की अभिव्यक्ति के लिए अथवा कहीं काव्यकला के प्रदर्शन के लिए भी रामकथा का उपयोग होता रहा है, जिसमें कथा का स्वरूप मुख्यत: मानस तथा गौण रूप में बाल्मीकि रामायण के अनुसार है। इस दृष्टि से श्री राधेश्याम कथा-वाचक की रचनाएं[५] विशेष उल्लेखनीय हैं जिनमें `रामचरितमानस` की कथा

---

१. समय, संवत् १८५५ वि०

२. कवि के अनुसार समय संवत् १९४२ वि०

३. समय सन् १९६१ ई०

४. समय सन् १८०१ ई०

५. राधेश्याम की रचनाएं — रामायण (२५ भाग में) प्रकाशन समय, १९३९ ई०

को-साधारणजनों के मध्य गेय रूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से — वर्णन प्राप्त होता है । उनके कथा-वर्णन में राम लीलाओं में प्रस्तुत रामकथा की घटनाओं तथा उनके प्रस्तुतीकरण के नाटकीय ढंग का विशेष प्रभाव है । राधेश्याम कथावाचक के अनुकरण पर लिखी श्री गोविन्ददास की रचना `रामायण लव राधेश्याम` में सम्पूर्ण राम-कथा वर्णित है । इस प्रकार की रचनाएं साहित्यिक स्तर की नहीं हैं । श्री चौधरी लक्ष्मीनारायण सिंह`ईश` की रचना `लंकादहन`[1] को असाहित्यिक नहीं कहा जा सकता है, किन्तु कथा प्रयोग की दिशा में कवि की दृष्टि परम्परावादी ही है । बाल्मीकि-रामायण के `लंकाकाण्ड` पर आधारित रामचन्द्र की मुद्रिका लेकर हनुमान के लंकाप्रयाण तथा लंकादहन के पश्चात् सीता की चूड़ामणि लेकर राम के पास वापस आने तक की घटना का वर्णन है । किन्तु कवि का मूल उद्देश्य भारतेन्दुयुगीन कवियों की भाँति काव्य-कला का प्रदर्शन है ।[2] कवि की दृष्टि इतनी परम्परानिष्ठ है कि अशोकवन-स्थित सीता के विरह का वर्णन भी कवि रत्नाकर की गोपियों के ~~सदृश जैसा है~~ विरह सदृश करता है —

ऊधि ऊधि आसन ते ऊससि उसांसन ते,
विरहविकासन ते लोचन लचारे ये ।
नीर बरसावत न पावत तनिक चैन ।
उर अकुलावत दुसह दुख मारे ये ।
सांस बस अंटके निवास तन पिंजर में,
दरसन आस बस तरसत तारे ये
राघव बिछोह छोह छकित विमोह धरि,
कढ़त न पापी प्राण पामर हमारे ये ।[3]

---

१. प्रकाशन समय संवत् २००७ वि०

२. पुस्तक की भूमिका में श्री रायकृष्ण दास ने लिखा है — `विचार यह था कि रत्नाकर जी के उद्धवशतक के समान एक ऐसा काव्य प्रस्तुत किया जाए जिसमें ब्रजभाषा तथा उनकी परम्पराओं के निर्वाह के साथ साथ काशी में प्रयुक्त होने वाली बोली की पुट हो ।`

३. लंकादहन, पृ० ७३

किन्तु जैसा कि पहले भी कहा गया है कि मैथिलीशरण गुप्त के साकेत जैसी रचनाओं के समक्ष इस प्रकार की परम्परावादी रचनाओं का विशेष महत्व नहीं रह गया है।

कृष्ण कथा पर आधारित काव्य साहित्य:—

क. मुक्तक काव्य — हिन्दी काव्य साहित्य में कृष्ण कथा का विकास मुक्तकों के रूप में ही हुआ था अत: `रामचरितमानस` के ढंग से कृष्ण की सम्पूर्ण कथा के (एक ग्रन्थ में पूर्वापरक्रम से) वर्णन की परम्परा कम मिलती है। रीतिकालीन काव्य-प्रवृत्ति मुख्यत: मुक्तकपरक होने के कारण कृष्ण-काव्य की तरह रामकाव्य भी मुक्तक परक होने लगा था, किन्तु एक बात द्रष्टव्य है कि जिस प्रकार रीतिकाल में कृष्ण कथा—काव्य के अनुकरण पर रामकाव्य का सृजन मुक्तकों के रूप में होने लगा था उसी प्रकार उत्तर रीतिकाल तथा भारतेन्दुयुग में राम काव्य के अनुकरण पर कृष्ण के सम्पूर्ण कथावृत्त अथवा किसी खण्ड को स्वीकार करके प्रबन्ध काव्य लिखने की प्रवृत्ति भी प्राप्त होती है। अत: आधुनिक हिन्दी काव्य साहित्य के प्रारम्भिक युग में एक ओर भारतेन्दु, प्रेमघन, शंकर तथा रत्नाकर आदि कवियों ने मुक्तकों के रूप में कृष्ण कथा के विविध प्रसंगों का वर्णन किया है, दूसरी ओर इस युग में अनेक प्रबन्ध काव्य भी लिखे गये हैं। इन प्रबन्ध काव्यों में श्रीमद्भागवत-पुराण या अन्य पुराणों के अनुसार कृष्ण की सम्पूर्ण कथा वर्णित है या कृष्ण कथा के एक खंड—यथा:—— कृष्णजन्म, कंसवध, कृष्ण रुक्मिणी विवाह, सुदामा चरित, उषा- अनिरुद्ध विवाह आदि का वर्णन है। कृष्ण कथा के ये ही प्रसंग अधिक प्रचलित भी हैं। इस प्रकार की रचनाओं के कथा वर्णन में धार्मिक उद्देश्य मुख्य है। कथा के लिए ये कवि मुख्यत: अपने आधार ग्रंथों का अनुकरण मात्र करते हैं। रीतिकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियों से निकट का सम्बन्ध होने के कारण (कालगत निकटता) कथाओं पर उनके अशिष्ट प्रभाव के दर्शन भी हो जाते हैं।

इस युग के सर्वाधिक महत्वशाली कवि भारतेन्दु ने अपने आराध्य देव राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति प्रकट करने के लिए भक्तिकालीन कवियों के सदृश अनेक मुक्तकपदों में व्यापक पैमाने पर कृष्ण कथा के विविध प्रसंगों का वर्णन किया है। जैसा कि पहले भी संकेत किया गया है कि वह वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित भक्त थे अत: उन्होंने अनेक पदों में अपने आराध्यदेव कृष्ण तथा आराध्यदेवी[१] राधा के प्रति[२] 'आत्मनिवेदन' प्रकट किया है। इन स्तुतिमूलक पदों के अतिरिक्त भारतेन्दु ने अनेक पदों में कृष्ण जीवन से सम्बन्धित विविध प्रसंगों में से अपनी रुचि के अनुसार कुछ को चुनकर विशेष विस्तार दिया है।

भारतेन्दु द्वारा स्वीकृत विविध प्रसंगों में केवल कुछ नवीन प्रसंगों को छोड़कर अधिकांश परम्परागत हैं। कृष्ण जन्म, कृष्ण का पालन-झूलन, कृष्ण का गोचारण, चीर हरण-लीला, पनघट लीला, गोवर्धन धारण लीला, रास लीला, पाती वर्णन, दीपदान वर्णन, कृष्ण अभिषेक तथा कृष्ण रथयात्रा आदि प्रसंगों का वर्णन किया है जिनका रूप श्री मद्भागवत तथा सूरसागर के समान है। कृष्ण जन्म वर्णन प्रसंग में कृष्ण जन्म के कारण, कारागार में जन्म, भगवान् के विराट्--रूप का प्रकटीकरण, वसुदेव द्वारा कृष्ण को मथुरा पहुंचाना आदि प्रसंगों का उल्लेख तक न करके कृष्ण के व्रज में प्रकट होने तथा उनके जन्म से उत्पन्न उल्लास का वर्णन किया है । कृष्ण के अतिरिक्त कवि ने राधा राधा सखी ललिता तथा बलराम के जन्म का भी वर्णन किया है। कृष्ण की रथयात्रा का वर्णन भी हुआ है। सूरदास ने भी कृष्ण की रथयात्रा का वर्णन किया है किन्तु कदाचित् कवि पर पुरी की रथयात्रा का प्रभाव है। कृष्ण तथा गोपियों की पारस्परिक लीला वर्णन में कवि ने पूर्वकालीन परम्पराओं के अनुसार 'वैदी छद्मलीला', 'रानी छद्मलीला', 'दानलीला', तथा तन्मय-

---

१. इस युग तक वल्लभ सम्प्रदाय में राधा की प्रधानता हो गई थी।

२. श्री राधा तुही सुहागिन सांची।

× × ×

राधे तुही सुहागिन पूरी। प्रेम फुलवारी, भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ५६८

लीला` का वर्णान भी किया है। `देवी छद्म लीला` तथा `रानी``छद्मलीला` में राधा क्रमश: देवी तथा रानी का छद्मवेश धारण करके कृष्णा से मिलने का यत्न करती है। इस प्रकार की छद्मलीलाओं का वर्णान श्रीमद्भागवत् में प्राप्त नहीं है, किन्तु रीतिकाल में इनका कुछ विकास हुआ है। `छद्मलीला` के प्रदर्शन के लिए जिस घटना का वर्णान भारतेन्दु ने किया है —वह मौलिक है। इसी प्रकार राधा तथा गोपियों की तन्मयता के उदाहरण भी श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण[१] तथा सूरदास की रचनाओं में प्राप्त होता है किन्तु एक `प्रसंग` के रूप में इस घटना की योजना में नवीनता है। कृष्णा द्वारा गोपियों से गोरसदान मांगने का उल्लेख श्रीमद्भागवत् में नहीं है,[२] वरन् इस प्रसंग का विकास बाद के कृष्णा भक्ति काव्य में हुआ है। कृष्णा के `वेणुवादन` तथा उसके प्रभाव का वर्णान भी श्रीमद्भागवत तथा हिन्दी-कृष्णा भक्ति काव्य में बहुत मिलता है। कवि ने अपने `वेणुगीत` में इस प्रसंग को एक संयोजित-घटना के रूप में प्रस्तुत किया है। कृष्णा के गोचारण के लिए चले जाने पर उनकी अनुपस्थिति में गोपियां परस्पर बैठकर कृष्णा की मुरली की प्रशंसा करती हैं—इस घटना की योजना में भी कवि की मौलिकता प्रकट होती है। इस प्रकार की लीलाओं से सम्बन्धित प्रसंगों के वर्णान में कवि ने अपने धार्मिक उद्देश्य का निर्देश करते हुए उनके अंत में कहा है —

` हरीचंद पावन भयो यह रसलीला गाइ।`

भारतेन्दु की भक्ति माधुर्य भाव से ओत-प्रोत होने के कारण उनकी अधिकांश रचनाएं राधाकृष्णा की प्रेम क्रीड़ाओं से (कुछ श्रीमद्भागवत के अनुसार तथा कुछ तत्कालीन जीवन से गृहीत) भरी पड़ी हैं। प्रेम के संयोग वर्णान के अन्तर्गत कृष्णा की विभिन्न लीलाएं तथा विहार-क्रीड़ाएं आती हैं। इस प्रकार

---

१. ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा की तन्मयता का वर्णान है।

२. श्रीमद्भागवत में द्विजपत्नियों से कृष्णा सखाओं द्वारा दान मांगने का वर्णान है। — १०।२३

के विहार-लीलाओं का विकास रीतिकाल के कृष्णकाव्य में विशेष रूप में हुआ है। भारतेन्दु ने रीतिकाल कीपरम्परा के अनुसार प्रत्येक ऋतु के अनुसार युगल-विहार का वर्णन किया है। वर्षा-ऋतु के विहार में `हिंडोला` तथा बसन्त ऋतु के विहारों में कृष्ण-राधा तथा ब्रजवनिताओं के पारस्परिक` फाग` का वर्णन भी अनेक पदों में किया है। ये फाग- लीलाएं केवल सामंतशाही परम्पराओं के नायक-नायिकाओं की साधारण प्रेम-क्रीड़ा मात्र नहीं है वरन् कृष्ण के ब्रह्मत्व के कारण अलौकिक भी है —

नित नित होली ब्रज में रही,
विहरत हरि संग ब्रज युवती गन सदा अनंद लही ।।
प्रफुलित फलित रह्यो वृन्दावन मधुप कृपा गुन कह्यो ।
`हरीचंद` नित सरस सुधामय प्रेम प्रवाह बहो ।।[१]

कृष्ण राधा के युगल केलि का वर्णन भी दिव्य धरातल पर हुआ है पर कवि ने, `विपरीत- रति ` तथा ` सुरति-श्रम` तक का वर्णन किया है। रीतिकालीन परम्परा के अनुकरण पर विभिन्न स्थलों के हिसाब से भी विहार-लीलाओं का वर्णन हुआ है। जल विहार ही नहीं वरन् समयानुकूल `हौज-विहार` का वर्णन भी प्राप्त होता है —

आज दोऊ बैठे हैं भल मौन,
हौज किनारे भरे मौज सो प्यारी राधा रौन ।।
सावन भादों छूटत फुहारें नीरहि तीन दिखाई ।
भीज रहे दोउ तंह रस भीजे सखि लखि लेत बधाई ।।[२]

कृष्ण-कथा —काव्य में वियोग वर्णन की परम्परा में एक ओर लोकलाजगत व्यवधान से उत्पन्न विरह है, दूसरी ओर अक्रूर के साथ कृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात् का प्रवास —विप्रलम्भ। भारतेन्दु ने दोनों प्रकार के

---

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ३८७
२. ,, ,, , पृ० ४१३

विरह का वर्णन किया है। किन्तु प्रवास--विप्रलम्भ के अन्तर्गत, अक्रूर-आगमन, कृष्ण बलराम प्रस्थान, उद्धव आगमन, उद्धव द्वारा गोपी के प्रति उपदेशकथन तथा गोपियों की व्यंग्योक्तियां-- आदि प्रसंगों का निर्वाह नहीं है। भारतेन्दु ने `भ्रमर गीत` के सम्पूर्ण प्रसंग का वर्णन नहीं किया है, केवल उद्धव को सम्बोधित करके गोपियों की विरहोक्तियां वर्णित है।

भारतेन्दु के समसामयिक अन्य कवि प्रेमघन ने भी कृष्ण सम्बन्धी पद लिखे किन्तु उनकी प्राचीनता भागवत-भक्ति की न होकर शृंगारिकता की अधिक है। यद्यपि प्रेमघन ने `युगलमंगल-स्तोत्र` में राधा के युगल रूप की वन्दना की है, किन्तु इस प्रकार के वन्दना का स्वर उस समय की सामान्य प्रवृत्ति थी जो सामान्य धार्मिकता के रूप में प्रकट हुई थी ---भक्ति के भावोन्मेष के रूप में नहीं।

कृष्ण जीवन के विविध प्रसंगों में प्रेमघन ने एक दो पदों में कृष्ण की जन्म-बधाई गाई है[१] तथा एक पद में उनके बालहठ का वर्णन भी किया है।[२] इसके अतिरिक्त अनेक लोकगीतों में कृष्ण के गोवर्द्धनधारण, वंशीवादन तथा कृष्ण के अन्य क्रीड़ा कौतुक, गोपियों द्वारा `दधिबेचन` आदि प्रसंगों का वर्णन भी कर दिया है। राधाकृष्ण के प्रेम प्रसंगों के वर्णन में संयोग के अन्तर्गत फाग, झूलन, जुआ खेलने, तथा युगलकेलि का भी वर्णन प्राप्त है। विरह-वर्णन के अन्तर्गत यहां भी केवल विरहोक्तियां ही वर्णित हैं।

भारतेन्दु के समकालीन अन्य कवि `शंकर` में पौराणिकता का अंश

---

१. जन्म भयो ब्रजराजु आजु अति आनन्द नन्द घर छायो आज।

— प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ४४१

२. मांगत चंद श्री ब्रजचंद,

मातु पै मचले न मानत करत बहु छल छंद।

— प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ४३५

सबसे कम है।[१] किन्तु उन्होंने भी श्रृंगारपूर्ण समस्यापूर्तियों में राधा-कृष्णा का उपयोग किया है। निम्नलिखित समस्यापूर्ति में कवि ने राधा-कृष्णा के होली का वर्णन किया है —

लाई वृषभानु की दुलारी उत गोपन को,
शंकर खिलाड़ी इत नंद को दुलारे हैं।
रंगन से गोरिन के गात गुनियारे भए,
श्याम हरियारो भयो कौन कहे कारो है।
लाल ने अबीर औ गुलाल लै रंगीली रंगी,
लाड़िली के बादर पर चौगुनो बगारो है।
मोड़ कर मंगल समंगल दिखाय मानौ,
चांदनी पर चन्द्र चूर चूर कर डारो है।[२]

श्री राधा कृष्णा दास यद्यपि कृष्णा भक्त थे किन्तु उनकी काव्य रचनाएं अल्प मात्रा में हैं। कवि ने एक पद में राधा की वन्दना[३] की है तथा दूसरी में उनके मान[४] का वर्णन किया है। 'सुन्दरी तिलक' में संगृहीत श्री अम्बिकादत्त व्यास के होली सम्बन्धी पदों में राधा-कृष्णा का नामोल्लेख भी हो गया है जिसमें रीतिकालीन लौकिकता की छाप है। यद्यपि उन्होंने कृष्णा की बाल लीलाओं का वर्णन बहुत विस्तार से किया है।[५] किन्तु उसमें भी रीतिकालीन

---

१. क्योंकि वे आर्य समाजी थे।

२. शंकर-सर्वस्व, पृ० २६५

३. लाड़िली ऐसी मति मोहि दीजै।
बरण छोड़ि नहिं जाऊं अनन्त कहुं, सरन आपनी दीजै।।
— राधाकृष्णा ग्रन्थावली, पृ० ६५

४. ये पद 'सुकवि सतसई' में संकलित हैं।

५. हौं बलि जाऊं मानिनी छबि पर,
बैठि भौंह चढ़ाय रिसभरी गोल कपोलनि कर धर।
—राधाकृष्णा ग्रन्थावली, पृ० ६५

उक्ति-वैचित्र्य अधिक है। इस युग के एक अन्य कवि श्री देवशरण सिंह'गोप' भी कृष्ण भक्त थे, उन्होंने 'मानचरित्र'[1] नामक एक विवरणात्मक-काव्य की रचना की है तथा स्फुट रूप में राधा के विरह का वर्णन भी किया है।[2] श्री गोविन्द गिल्लाभाई भक्त कवि थे किन्तु इनका दृष्टिकोण रीतिकालीन श्रृंगारिकता का था। इनकी रचना 'राधामुख षोडशी'[3] में भक्ति भाव से राधा के केवल मुख-सौन्दर्य का वर्णन किया गया है[4] जिसमें उक्ति-वैचित्र्य अधिक है ——

'राधिका रसीली तेरे आनन की आभा सखि जग में सुहात बातदेखो जग
जात है।
मुकुर मसक जात मान तजि मानसी तैं जानत जगत सोई बात विख्यात है।।
गोविन्द सुकवि कहै तजि के गुलाब आब कांपत रहत काय दिन अरू रात है।
चन्द सरमाइ भयो मन में मलीन ताको दाग देह मांहि देखो आज लौं दिखात है[5]॥

श्री जगन्नाथ दास'रत्नाकर' यद्यपि भारतेन्दु के बहुत बाद के कवि हैं, किन्तु अपनी काव्य प्रवृत्तियों के कारण भारतेन्दु युग के कवियों की परम्परा में ही आते हैं। उन्होंने कृष्ण के प्रति अपने भक्तिपूर्ण 'अष्टकों'[6] तथा जीर्ण-

---

१. मानचरित्र -- हरिश्चन्द्र मेगजीन जनवरी, १८७४ ई०

२. मोहन क्यों अनीति मन भाई
सबसों तोरि नेह,बरनन में जोरि यह मनभाई ।
— हरिश्चन्द्र- मेगज़ीन,दिसम्बर१८७४ई०

३. समय संवत् १६५४ वि०

४. कोऊ तो सराहै सदागिरिजा गनेश पुनि कोऊ तो सराहै सदा नंदजू को नंदको।
कोऊ तो सराहै सदा सारदा स्वयंभु पुनि कोऊ तो सराहै सदा संभु सुरवंदको।।

× × ×

कोऊ तो सराहै रामचन्द्र मुख चंद को। ~~गोविन्द~~
गोविन्द सुकवि पर हम तो सराहै सदा आनंद के कंद एक राधामुख चन्द को।।'
— राधा मुख षोडशी -- पृ० १

५. राधामुख षोडशी,पृ० २,३ ६. कृष्णाष्टक सुदामाष्टक आदि।

पदावली`[१] में राधा-विनय सम्बन्धी पद लिखे हैं, कृष्ण कथा सम्बन्धी 'उद्धव शतक' जैसे ग्रन्थ की रचना की है एवम् अनेक स्फुट पदों में शृंगारिक-वर्णन के लिए राधा-कृष्ण की विविध क्रीड़ाओं का भी उपयोग किया है। यही कारण है कि कृष्ण राधा के पारस्परिक प्रेम-क्रीड़ाओं को छोड़ कर उनके जीवन की किसी अन्य घटना का उल्लेख नहीं है। राधा-कृष्ण की संयोग-वियोग से सम्बन्धित प्रेम क्रीड़ाएं (होली, हिंडोला, पनघट लीला, आँगन लीला, गोसाइन लीला) प्रेमानुभूति के विभिन्न भावों तथा स्थितियों की सृष्टि, विपरीत रति तथा ऊहात्मक विरह वर्णन आदि रीतिकालीन प्रवृत्तियां थीं-जिनका पृष्ठपोषण कवि ने किया है।

ब. प्रबन्ध काव्य-- स्फुट रूप में प्राप्त कृष्ण कथा के विविध प्रसंगों के वर्णन के अतिरिक्त प्रबन्धात्मक रूप में कृष्ण की सम्पूर्ण कथा के वर्णन की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय कृति बाबा रघुनाथ दास राम सनेही का 'विश्राम सागर' है। इस ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में कवि ने कृष्ण जन्म से लेकर प्रद्युम्न विवाह तक की कथा का वर्णन श्रीमद्भागवत पुराण के अनुकरण पर किया है। श्री जगन्नाथ सहाय रचित 'कृष्णसागर'[२] में श्रीमद्भागवत के अनुसार श्री शुकदेव-परीक्षित संवाद के रूप में कृष्ण कथा का वर्णन है। परीक्षित द्वारा शृंगी ऋषि के गले में सांप डालने का उल्लेख करके यदुवंशी नरेश शूरसेन के वर्णन से कथा का प्रारम्भ होता है। इसके पश्चात् कृष्ण जन्म पुन: जन्मोत्सव, विभिन्न असुरों का वध, चीरहरण, गिरिपूजन अक्रूर के साथ मथुरा गमन, कंस वध, उद्धव आगमन, उद्धव का गोपियों को प्रबोध, रुक्मिणी हरण, सत्यभामा विवाह, शतधन्वासंहार ऊषास्वप्न', ऊषा-

---

१. रत्नाकर (काव्य संग्रह), पृ० ५३३

२. प्रकाशन, संवत् सन् १८८५ ई० (तीसरा संस्करण)

चरित, साम्ब विवाह, पाण्डव सन्देश, कृष्णा का हस्तिनापुर गमन, जरासंध-बध, शिशुपाल बध, शाल्वबध, सुदामा प्रसंग , कुरुक्षेत्रगमन, सुभद्राहरण, भस्मासुरबध, आदि प्रसंगों का वर्णन कवि ने श्रीमद् भागवत के दशम स्कंध के अनुसार किया है। श्री सीताराम सिंह वर्मा ने अपनी रचना `कृष्णा विलास`[१] में राजा उग्रसेन के परिचय से प्रारम्भ करके जरासंध-बध तक की कथा का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में किया है। श्री रामप्रसाद कसार` विशारद` के `कृष्णा चरित मानस`[२] तथा श्री काशीदीन शुक्ल की `कृष्णा चरित माला`[३] में वर्णित कृष्णा-कथा का मूल रूप मुख्यत: भागवत के अनुसार ही है।

कृष्णा कथा वर्णन के आधार के रूप में `श्रीमद्भागवत पुराण` का प्रयोग अधिक हुआ है किन्तु `कृष्णा-कौस्तुभ`[४] के कवि ने` ब्रह्मवैवर्त पुराण` तथा `गर्ग संहिता` का आधार ग्रहण किया है। श्रीमद्भागवत में विष्णु के अनेक अवतारों में कृष्णावतार को विशेष विस्तार अवश्य मिला है, किन्तु ब्रह्मवैवर्त पुराण में कृष्णा का सब देवों से श्रेष्ठ, विष्णु के रूपों में सर्वश्रेष्ठ, दिव्यातिदिव्य गोलोकवासी के रूप में वर्णन किया गया है -- जो श्रीमद्भागवत में नहीं है। कदाचित् कवि को कृष्णा के इस रूप ने अधिक आकर्षित किया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के सदृश यहाँ भी नारायण द्वारा कृष्णा कथा का वर्णन है -- पाप से भाराक्रान्त पृथ्वी का देवताओं के साथ गोलोक स्थित कृष्णा के पास जाना, गोलोक वर्णन, सनकादिक का जय विजय के प्रति तथा राधा का श्रीदामा के प्रति शाप, विरजा का नदी रूप धारण करना, आदि प्रसंगों की योजना ब्रह्मवैवर्त पुराण के ` श्रीकृष्णा जन्म खण्ड` के अनुसार है। कुछ

---

१. समय सन् १९२६ ई०, द्वितीय संस्क०.

२. सं० १९५७ वि०

३. सं० १९८७ वि०

४. समय सं० २०११ वि०

प्रसंगों को कवि ने अपनी मौलिक कल्पना के द्वारा नवीन विस्तार दिया है। यथा--- रामायण में वर्णित रावण के दिग्विजय यात्रा के सदृश[१] कंस के दिग्विजय यात्रा का विस्तृत वर्णन किया है, जिसमें वह क्रमशः एक-एक असुरों को पराजित करके अपना अनुयायी बना लेता है। इसी प्रकार कृष्ण जन्म के समय 'जन्मोत्सव' के रूप में विभिन्न क्रीड़ा-कौतुक का वर्णन कवि की मौलिक कल्पना है। कवि की दृष्टि पूर्णतः परम्परावादी है। उसने अनेक स्थलों पर कृष्ण के 'ब्रह्मत्व' का निरूपण किया है तथा अलौकिक घटनाओं की योजना भी पुराणों के सदृश है। श्री किशोर चंद 'किशोर' की रचना 'ब्रजचन्द-विनोद'[२] में दो खण्डों में कृष्ण जन्म से लेकर भीष्म उपदेश तक की घटना का वर्णन है। कृष्ण की विविध बाल एवम् किशोर लीलाओं का वर्णन करते समय कवि ने यशोदा द्वारा 'पयछोड़ावन' तक का वर्णन किया है।

कृष्ण जन्म--- इस युग में कृष्ण जीवन की सम्पूर्ण कथा के अतिरिक्त केवल 'कृष्णजन्म' तथा 'जन्मोत्सव' के वर्णन के लिए भी अलग प्रबन्धों की रचना हुई है। श्री मंगलाप्रसाद गुप्त के 'कृष्ण दर्शन'[३] में कंस के अत्याचार से भाराक्रान्त पृथ्वी का विष्णु के पास जाने से लेकर देवकी कन्या द्वारा कंस के नाश की भविष्यवाणी तक की घटना का वर्णन है। श्री शिवप्रसाद कवीश्वर के 'श्रीकृष्ण जन्मोत्सव'[४] में ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुकरण पर कृष्ण जन्म वर्णन के अन्तर्गत पूर्वजन्म के महर्षि कश्यप तथा अदिति का वसुदेव और

---

१. वाल्मीकि रामायण, उत्तर काण्ड, सर्ग १३--१६

२. समय संवत् २०१६ वि०

३. समय संवत् १९८२ वि०

४. समय संवत् १९५१ वि०

देवकी रूप में अवतीर्ण होने के उल्लेख [1] से कथा का प्रारम्भ होता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के सदृश ही यहाँ भी देवकी कन्या के वध के लिए तत्पर होने पर आकाशवाणी द्वारा कंस को चेतावनी मिलती है जिसे सुन कर वह कन्यावध का विचार त्याग देता है।[2] रीतिकालीन प्रवृत्तियों के प्रभाव के कारण कवि देवकी की गर्भावस्था का वर्णन उस युग के कवियों के समान करता है।[3]

कंसवध—— कृष्ण जन्म के पश्चात् कंसवध के प्रसंग पर आधारित श्री श्यामलाल पाठक के `कंसवध` का उद्देश्य यद्यपि कथा के माध्यम से राजधर्म का विवेचन करना है किन्तु कथा का स्वरूप परम्परागत रूप में ~~भगवान के प्रसंग में वर्णित~~ भागवत के दशमस्कंध के `कंसवध —वृतान्त` के अनुसार है। आकाशवाणी द्वारा कंस के मृत्यु की सूचना से कथा का प्रारंभ होता है। कंस द्वारा देवकी को बन्दी बनाना, कृष्ण जन्म, कृष्ण का लालन-पालन, कंस द्वारा कृष्ण को आमंत्रण और कंस का वध आदि प्रसंगों का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में प्राप्त होता है। कंस वध की घटना से सम्बन्धित अन्य रचना श्री निहालचन्द्र महता के `कंसवध` में कवि का दृष्टिकोण धार्मिक है। कंस के अत्याचार से पीड़ित पृथ्वी का विष्णु के पास जाने से कथा का प्रारम्भ होकर कंस वध तक की कथा का वर्णन संक्षेप में है। कथा वर्णन में किसी प्रकार की नवीनता नहीं है। इस रचना का विशेष साहित्यिक महत्व भी नहीं है। कवि ने दो युगों के समय के अन्तर पर भी ब दृष्टि नहीं रखी है और कृष्ण के समय में कप्तान, हवलदार, थानेदार तक की कल्पना करता है।

भ्रमर गीत—— हिन्दी कृष्ण काव्य में श्रीमद्भागवत के दशम् स्कंध के `उद्धव ब्रज आगमन`[4] प्रसंग का विशेष भावात्मक विस्तार सूरदास ने दिया —

जिनके अनुकरण पर इस प्रसंग पर आधारित `भ्रमरगीत` नामक एक पृथक काव्य परम्परा का विकास हुआ है। इस प्रसंग वर्णन में उस भ्रमर का विशेष महत्व है जो गोपी उद्धव संवाद के मध्य आकर गोपियों के विरह-विदग्ध तथा उद्धव के ज्ञानोपदेश से संतप्त मन के व्यंगबाण का लक्ष्य बनता है। इसीलिए इस प्रसंग को `भ्रमरगीत` की संज्ञा दी जाने लगी। सूरदास ने इस प्रसंग के साथ एक और परम्परा का विकास किया है। उस युग में प्रचलित योगसाधना और ज्ञानमार्गी भक्ति के खंडन के लिए गोपियों के अनन्य प्रेम को `प्रेमाभक्ति` के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। भागवत की भांति यहां सूरदास की गोपियां कृष्ण के संदेश से आश्वस्त नहीं होतीं।[१] वरन् उनका प्रेम प्रवाह योग रूपी चट्टान से टकराकर और भी वेगवान् हो जाता है। गोपियों के व्यंग-बाण तथा प्रेम से पराजित उद्धव असफल लौट आते हैं। उद्धव की यह पराजय योगमार्ग की पराजय तथा गोपियों की विजय प्रेममार्ग के विजय का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त सगुण तथा निर्गुण भक्ति के दो रूपों में सगुण-साधना को, सहज-साध्यता के कारण, अधिक ग्राह्य सिद्ध किया गया है। निर्गुण भक्ति मार्ग उसी प्रकार दुस्तर है जिस प्रकार गोपियों के लिए कृष्ण के साक्षात् स्वरूप की सचेतन अनुभूति को त्याग कर, उद्धव द्वारा बतलाये कृष्ण के निर्गुण निराकार रूप की आराधना कठिन थी। यही निर्गुण भक्ति के स्थान पर सगुण-भक्ति की स्थापना है। आगे चल कर इस प्रसंग का मुख्य आधार `भ्रमर` भी छूट जाता है तथा उपरोक्त तत्व ही मुख्य प्रतिपाद्य रह जाता है।

श्री जगन्नाथदास रत्नाकर के `उद्धव शतक` की गणना भी भ्रमर-हीन `भ्रमरगीत` परम्परा में की जा सकती है। यहां उद्धव ही भ्रमर हैं जिन्हें

---

१. भागवत में उल्लेख है कि कृष्ण के सन्देश से गोपियों का विरहताप शान्त हो जाता है।

ततस्ताः कृष्ण सन्देशैर्व्यपेतविरहज्वराः।
उद्धवं पूजयांच कृज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ।। १०।४७।५४

लक्ष्य करके गोपियां अपने मन की कटुता व्यक्त करती हैं। पारस्परिक युक्ति-प्रतियुक्ति और विरह के वर्णन के कारण इस प्रसंग में घटनाएं अल्प हैं। कृष्ण द्वारा प्रेषित उद्धव का ब्रज में आना, भ्रमर को लक्ष्य करके गोपियों की व्यंग्योक्तियां तथा पराभूत उद्धव के वापस लौटने के अतिरिक्त किसी घटना का वर्णन नहीं है। `उद्धव शतक` में कवि रत्नाकर ने भी इन्हीं तत्वों को उसी रूप में स्वीकार कर लिया है। केवल प्रबन्धात्मकता लाने के उद्देश्य से कवि ने `आरम्भ` की योजना मौलिक ढंग से की है —

एक दिन कृष्ण अपने सखा उद्धव के साथ यमुना में स्नान करते समय एक कमल को बहते हुए देखते हैं जिसका ऊपरी भाग मुरझाया (जाको अध-ऊरध अधिक मुरझायो है) हुआ था। कृष्ण तैर कर उस पद्म को पकड़ लेते हैं किन्तु उसकी सुगंध (कमल के सुगंध और राधा-शरीर के सुगंध में साम्य था तथा मुरझाया कमल विरहदु:ख कातर राधा के कमलमुख की स्मरण करा रहा था) से सहसा व्याकुल होकर अचेत हो जाते हैं[1]। कीर द्वारा राधा नाम लेने पर उनको पुन: चेतना होती और वह विरहाकुल होकर वृन्दावन की पूर्व स्मृतियों में डूबे हुए उद्धव के समक्ष उनका वर्णन करते लगते हैं। यहां भी उद्धव परम्परागत रूप में कृष्ण को ब्रह्मत्व की याद दिलाकर उन्हें ब्रजवासियों के प्रति तटस्थ तथा निर्लिप्त रहने का उपदेशदेते हैं। उसके पश्चात् का प्रसंग सूर के सदृश ही है।

श्री अमृतलाल चतुर्वेदी की रचना `स्याम संदेसो`[2] भी उद्धव शतक की परम्परा में आता है। प्रसंग का विस्तार कवि ने मौलिक रूप में किया है। कथा का प्रारम्भ कंस का सन्देश लेकर अक्रूर के ब्रज पहुंचने से होता है। अक्रूर के साथ कृष्ण के चले जाने पर ब्रजवासियों के विरह का वर्णन है। राधा विशेष रूप में दु:खी हैं। ब्रजवासियों के दु:ख से द्रवित होकर एक मैना उनका सन्देश

---

१. उद्धव शतक, पद २, पृ० ४

२. समय सन् १९५० ई०

लेकर कृष्ण के पास जाती है। 'उद्धव शतक' की भाँति यहाँ मैना द्वारा 'राधा-राधा' नाम रटते रहने के कारण, कृष्ण को राधा की स्मृति हो आती है और वह बेसुध हो जाते हैं। उद्धव यहाँ भी कृष्ण की कातरता देख कर कृष्ण को ब्रह्मत्व का स्मरण कराते हुए धिक्कारते हैं तथा कृष्ण द्वारा चुनौती दिए जाने पर ब्रज पहुंचते हैं, जहाँ से वह गोपियों के प्रेम से पराजित तथा अभिभूत होकर लौट आते हैं। इस प्रसंग के साथ ही कवि ने कुरुक्षेत्र में हुई ब्रजवासियों तथा कृष्ण के पारस्परिक भेंट[१] को भी संयुक्त कर दिया है। ब्रज से लौट कर उद्धव के कृष्ण से एक बार ब्रज हो आने का अनुरोध करने पर कृष्ण उन्हें आश्वासन देते हैं कि सूर्यग्रहण के अवसर पर वह कुरुक्षेत्र आयेंगे और वहाँ ब्रजवासियों से भेंट होगी। अन्त में दोनों ओर के दलों का कुरुक्षेत्र में पहुंचने का वर्णन है जहाँ राधा-कृष्ण, यशोदा-कृष्ण आदि मिलते हैं। ग्रहण के दिन ब्रजवासिनियाँ अपने आभूषणों से कृष्ण को तौलती हैं। यहाँ कवि अपनी मौलिक कल्पना से परम्परागत दुखान्त कथा को इस प्रसंग द्वारा सुखान्त रूप में प्रस्तुत करता है।

कृष्ण-रुक्मिणी विवाह— कृष्ण रुक्मिणी विवाह प्रसंग को आधार बनाकर स्वतंत्र ग्रन्थ प्रणयन की परम्परा प्राप्त होती है। इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय कृति महाराजा रघुराज सिंह रचित 'रुक्मिणी-परिणय'[२] है। कवि ने यद्यपि श्रीमद्भागवत के अनुसार कृष्ण जन्म से कथा वर्णन का प्रारम्भ किया है किन्तु रुक्मिणी विवाह-प्रसंग को विशेष विस्तार मिलता है। विविध घटनाओं के वर्णन में कवि ने अपने आधार ग्रन्थ (श्रीमद्भागवत) का अनुकरण मात्र किया है किन्तु अनेक अन्य पुराणेतर विषयों को अपनी रुचि के अनुसार विशेष विस्तार दिया है। वस्तुतः कवि ने कथा में पूर्णता लाने

---

१. श्रीमद्भागवत, १०।८२अ

२. रचना समय, १८५० ई०

के उद्देश्य से कृष्ण के जन्म एवं बाल-लीलाओं का उल्लेख भी कर दिया है। यही कारण है कि कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए उपदेश की योजना भी अप्रासंगिक रूप में इस कथा के साथ कर दी है।[1] यहां अर्जुन नहीं वरन् रुक्मिणी है जो अपने बन्धु रुक्मी के अपमान पर विचलित हो उठती है।

श्री महाराजा रघुराज सिंह यद्यपि राम भक्त थे किन्तु इस ग्रन्थ में कवि ने कृष्ण के प्रति भक्ति प्रकट की है और कृष्ण के ब्रह्मत्व का निरूपण भी किया है किन्तु कवि पर रीतिकालीन प्रवृत्तियों का प्रभाव होने के कारण सम्पूर्ण खंडकाव्य की सृष्टि ही रीतिकालीन प्रवृत्तियों की आधारभूमि पर हुई है। यही कारण है कि कृष्ण जन्म आदि घटनाओं का वर्णन केवल एक-एक पंक्तियों में हुआ है। जरासंध-बलराम युद्ध, जरासंध- कृष्ण युद्ध, बलराम तथा रुक्मी पक्ष के योद्धाओं के पारस्परिक युद्ध का वर्णन खूब विस्तार से किया है। इतना ही नहीं कवि युद्धोपरान्त रणभूमि में पड़े सैनिकों की क्षत-विक्षत दशा का वर्णन भी अत्यन्त रुचि से करता है। रीतिकालीन परिपाटी के अनुसार नखशिख वर्णन, षट्ऋतु वर्णन, जलविहार वाटिका-विहार तथा फाग का वर्णन किया है। कृष्ण कथा में `रास` की स्थली वृन्दावन है किन्तु कवि ने विवाहोपरान्त द्वारिका महल में कृष्ण तथा रुक्मिणी एवं उनकी सखियों के मध्य हुए `रास` का भी वर्णन किया है। कदाचित् यहां किसी कारण कवि पर राम-काव्य का प्रभाव है।[2] (रसिकोपासना में अयोध्यास्थित कनक भवन में राम तथा सीता और सखियों के रास का वर्णन हुआ है) रास का वर्णन श्रीमद्भागवत के अनुसार है।[3] `रास`

---

१. रुक्मिणी परिणय सर्ग १५

२. रसिकोपासना में कनक भवन में राम-सीता और सखियों के रास का वर्णन है।

३. भागवत, १०।२९-३३

वर्णन में कवि की श्रृंगारिकता खुल खुल कर प्रकट हुई है जिसमें कवि काम-शास्त्र के अनुसार चुंबन, परिरम्भण, जैसे प्रेम-क्रीड़ाओं का वर्णन करता है। रीतिकालीन परम्पराओं का कवि पर इतना प्रभाव है कि प्रयुक्त कथा के पौराणिक वातावरण को भूल कर कालनेमि के दरबार का वर्णन मुगलकालीन दरबारों के सदृश करता है तथा सभासदों का वर्णन करते समय कवि ने कुरान-पाठ करने वालों का भी उल्लेख किया है। विशेषत: कृष्ण विवाह के पश्चात् द्वारिकाधीश कृष्ण को लेकर जिस प्रकार के राजसी वातावरण की सृष्टि की है वह मध्ययुग के राज महलों जैसा प्रतीत होता है। कवि गुलाबदान, पीकदान, पानदान जैसे महलों में प्रयुक्त होने वाले तत्कालीन उपकरणों का उल्लेख तो करता ही है साथ ही तहखाने तथा खसखाने और गलीचों का भी वर्णन किया है ——

> शीतलता सिराने महा तहखाने नये खसखाने बने हैं।
> मेन सवांरे भगोवे फुहारे अपारे बतारे छूटे धने हैं।
> श्री रघुराज तहां यदुराज सहीन समाज लैं मोद सये हैं।
> ग्रीष्म जानि यहे सुख खानि सु रुक्मिणी सी हमि वानि मने हैं।[1]

* * * *

> मन्दिर मधि सोहत अतिहि बिछे गलीचे लाल।[2]

पं० बैजनाथ की आल्हा शैली में लिखी गई पुस्तक 'कृष्ण खण्ड और रुक्मिणी स्वयंबर'[3] में भागवत की कथा का विस्तार अतिशयोक्तिपूर्ण विस्तृत वर्णनों के रूप में किया गया है जिस पर रीतिकालीन दरबारी संस्कृति

---

१. रुक्मिणी परिणय पृ०, २३५
२. ,, ,, पृ०, २०३
३. समय संवत् १६३७ वि०

का विशेष प्रभाव है। बहुत बाद की रचना रूपनारायण पाण्डेय विरचित 'रुक्मिणी मंगल'[१] में भी रुक्मिणी विवाह प्रसंग के अन्तर्गत सम्पूर्ण कृष्ण कथा का वर्णन हुआ है। रुक्मिणी के पिता नृप भीष्मक नारद से अपनी पुत्री के लिए योग्य वर के विषय में पूछते हैं। नारद कृष्ण की प्रशंसा के रूप में कृष्ण के जन्म ग्रहण के कारण से लेकर विद्याप्राप्त करके गुरुपुत्रों के लौटने तक की कथा का वर्णन करते हैं। अन्तिम सर्ग में विवाह का वर्णन है। कृष्ण कथा के विविध घटनाओं का रूप भागवत के अनुसार है केवल कथा के प्रस्तुतीकरण का ढंग नवीन है।

कृष्ण-सुदामा मैत्री — कृष्ण कथा में कृष्ण तथा उनके मित्र सुदामा की कथा भी अत्यन्त प्रचलित है जिसको आधार बनाकर आधुनिक युग में भक्ति भावना से लिखी गई पुस्तकों में लालाशालग्राम वैश्य का 'सुदामा चरित्र'[२] श्री शिवनन्दन सहाय का 'कृष्ण सुदामा'[३] तथा विनायक राव भट्ट का 'सुदामा चरित्र'[४] मुख्य है। यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी सुदामा से सम्बन्धित कुछ पदों की रचना की है जिसमें सुदामा की कथा नहीं वर्णित है। केवल द्वारिका से लौटने पर सुदामा अपनी कुटिया के स्थान पर अट्टालिका खड़ी देखकर अपनी कुटिया तथा ब्राह्मणी के प्रति दु:ख प्रकट करते हैं।

कृष्ण—कथा के अन्तर्गत सुदामा के द्वारिका गमन एवं वहां से लौटने पर अपनी कुटिया को धनधान्य पूर्ण पाने का वृत्तान्त श्रीमद्भागवत्

---

१. समय सन् १९५७ ई०

२. समय संवत् १९५०वि०

३. समय सन् १९०७ ई०

४. समय सन् १९३६ ई०

के दशम स्कंध में[१] विस्तार से वर्णित है। भक्तिकाल में रचित नरोत्तमदास का श्री सुदामा चरित्र (समय संवत् १६०२ वि०) अपने भावात्मक अभिव्यंजना के कारण विशेष प्रिय रहा है। यद्यपि नरोत्तमदास का `सुदामा चरित्र` अत्यन्त संक्षिप्त है तथा उसका आधार भी श्रीमद्भागवत ही है किन्तु कविने एक-दो नवीन उद्भावनाओं का भी सहारा लिया है। भागवत में सुदामा बिना किसी व्यवधान के ही कृष्ण के अन्त:पुर तक पहुंच जाते हैं किन्तु सुदामा चरित्र में द्वारपाल द्वारा सुदामा के आगमन का समाचार पाकर कृष्ण का स्नेहातुर होकर सुदामा के पास दौड़कर आना -- जैसी उद्भावनाओं ने इस प्रसंग को अधिक मार्मिक बना दिया है। आधुनिक काल में लिखी उपर्युक्त तीनों ही रचनाओं में नरोत्तमदास की उद्भावनाओं के साथ ही कथा को उसी रूप में स्वीकार कर लिया गया है। कथा वर्णन में किसी प्रकार की मौलिकता नहीं है। वस्तुत: मौलिकता की सृष्टि करना इन कवियों को विशेष अभिप्रेत भी नहीं है। वह तो सुदामा की कथा कहकर अपनी वाणी पवित्र करना अथवा कलिकाल के पाप को विनष्ट करना चाहते हैं --

सरस सुदामा-चरित्र भक्तगन जो नित गावे।
लहे कृष्ण पद पद्म-प्रेम कलि कलुष नसावे।।[२]

उषा-अनिरुद्ध विवाह-- कृष्ण पौत्र अनिरुद्ध तथा बाण पुत्री उषा के प्रणय तथा विवाह की कथा को आधार बना कर लिखी गई रचनाओं में श्री ललनप्रिया का `अनिरुद्ध परिणय`[३] उल्लेखनीय है। कवि ने कथा का वर्णन मुख्यत: श्रीमद्भागवत् पुराण के अनुसार शुकदेव परीक्षित संवाद के रूप में किया है, किन्तु गौण रूप में विष्णु-पुराण की सहायता ली है। कथा का आरम्भ बाण के पूर्वज ब्रह्मा-पुत्र कश्यप के उल्लेख से करता है। उसके पश्चात् बाण का शिव से वरदान प्राप्त करना, पुन: शंकर से

---

१. भागवत, १०।८०-८१

२. सुदामा चरित्र, ले०विनायक राव भट्ट, पृ० १६

३. रचना समय संवत् १६५४ वि०

लड़ने को उद्यत होना, शंकर द्वारा उसके पराजय का सूचक तोरण प्रदान करना, उषा-अनिरुद्ध का परिणय, बाण का अनिरुद्ध को बन्दी बनाना, नारद द्वारा सूचना पाकर कृष्ण बलराम का अनिरुद्ध की मुक्ति के लिए बाणासुर से युद्ध करना, बाणासुर का पराजय तथा शंकर प्रेरित बाणासुर का कृष्ण की शरणागति ग्रहण करना— आदि प्रसंगों का वर्णन श्रीमद्भागवत के अनुसार है। ऊषा अनिरुद्ध प्रणय-प्रसंग में कवि ने विष्णु पुराण की सहायता ली है। श्रीमद्भागवत के अनुसार ऊषा सहसा ही एक दिन अपने पति को स्वप्न में देख लेती है[1], किन्तु विष्णु पुराण में वर्णन है कि ऊषा एक बार शिव-पार्वती को काम क्रीड़ा में निरत देखकर स्वयं भी शिव के साथ विहार करने की इच्छा प्रकट करती है। पार्वती उसे आश्वासन देती है कि तू अधिक संतप्त न हो तुझे स्वप्न में पति का दर्शन होगा।[2] कवि ने विष्णु पुराण के इस प्रसंग को स्वीकार किया है किन्तु अपनी ओर से मौलिकता भी प्रदर्शित की है। यहाँ ऊषा सात वर्ष की हो जाने पर पार्वती के पास शिक्षा प्राप्त करने जाती है। इसके अतिरिक्त विष्णु पुराण की तरह यहाँ ऊषा स्वयं शिव के साथ विहार करने की इच्छा नहीं प्रकट करती है वरन् उसे प्रिय-मिलन की इच्छा हो जाती है।

यद्यपि कवि ने ग्रन्थ के प्रणयन के मूल में अपने धार्मिक उद्देश्य का निर्देश किया है, किन्तु कवि पर रीतिकालीन शृंगारिकता का विशेष प्रभाव है। ऊषा-अनिरुद्ध के प्रेम का वर्णन रीतिकालीन नायक-नायिकाओं के प्रेम के सदृश किया है जिसमें अनुभूति की गहराई के स्थान पर तन का ताप अधिक है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रसंगों की योजना में भी रीतिकालीन वातावरण का प्रभाव परिलक्षित होता है। ऊषा के सौन्दर्य वर्णन के समय नखशिख-सौन्दर्य वर्णन की प्रणाली को स्वीकार किया है। ऊषा के शृंगार-वर्णन प्रसंग में विभिन्न प्रसाधनों— तेल उबटन, सुगन्धित इतर, पान, मेंहदी, महावर आदि का उल्लेख किया है तथा आभूषणों की लम्बी

---

१. श्रीमद्भागवत, १०।६२।१२-१४

२. विष्णुपुराण, अंश ५ अ ३२।११—१४

नामावली गिनाई है —

कटिकर्धनी छवि छुघंटि दियै पिछरि तनु भांगली ।
सुत कहे छड़े जड़े पहजेब पहुंचे सांकरे ।।[१]

श्री रामचरण वैश्य की आल्हाशैली में लिखी पुस्तक 'ऊषा अनिरुद्ध का ब्याह'[२] में ऊषा के प्रणय से परिणय तक की कथा अत्यन्त वर्णनात्मक ढंग से प्रस्तुत है। कथा में किसी प्रकार की नवीनता नहीं है। इस कथा पर आधारित अन्य रचनाएं रामदत्त राय शर्मा का 'उषाहरण'[३] तथा शिवप्रसाद 'कुसुम' का 'ऊषा'[४] हैं। 'उषा' के रचयिता का उद्देश्य खंडकाव्य की सृष्टि भी हो सकती है किन्तु ऊषाहरण के रचनाकार ने अपने कथा-वर्णन का उद्देश्य प्रकट करते हुए लिखा है —'किशोरावस्था प्राप्त नवयुवक-नवयुवतियाँ को पति-पत्नी के वास्तविक प्रेम को हृदयंगम कर विशुद्ध श्रृंगार रस से मज्ज कर संसार को स्वर्ग बनायें।' किन्तु ग्रन्थ में जिस प्रेम का निरूपण किया गया है वह आधुनिक युग की भांति आदर्शात्मक तथा भावनापरक न होकर स्थूल और मांसल अधिक है। कवि ने ऊषा अनिरुद्ध के प्रेम के संयोग तथा वियोग दोनों ही स्थितियों का वर्णन किया है, पर दोनों में ही कवि की दृष्टि श्रृंगारिक है। संयोग की स्थिति में उनका भाव रीतिकालीन नायक-नायिकाओं के सदृश है —

मन अधीर तन पीर भार तउ, सरल हृदय सकुचानी ।
बार बार बतराय पीय पैं लजति अंग रससानी ।
पति कर सों कर खींचि सहमि तिय उरज सुअंबर आनी ।
कन्त सुचन अति चाव अधर गह, पै मुख मोरति नारी ।
बिहरि बार मुख चन्द ग्रस्त युग, पै मुख मोरति नारी ।।[५]

---

१. अनिरुद्ध परिणाय, पृ० १०
२. समय संवत्, १६०२ ई०
३. समय सन् १६१७ ई०
४. समय सन् १६२५ ई०
५. उषाहरण, पृ० १२

`उषाहरण` में कथात्मक अंश अपेक्षाकृत अधिक है। कथा का रूप यद्यपि श्रीमद्भागवत् के अनुसार है किन्तु कुछ प्रसंगों की योजना— ऊषा का पार्वती के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाना तथा शिव-पार्वती समागम देखकर पति की इच्छा प्रकट करना —ललन प्रिया के अनिरुद्ध परिणय के अनुकरण पर है। `ऊषा` की कथा का आधार श्रीमद्भागवत है, जिसमें कवि ने बाणासुर से सम्बन्धित प्रसंगों का उल्लेख न करके सीधे ऊषा-स्वप्न से ही कथा का प्रारम्भ करता है। कथा के अन्त में वर्णन की नवीनता है। यहां बाण पहले ही कृष्ण को शक्तिशाली समझ कर आत्मसमर्पण कर देता है।

अन्य पुराण कथाएं :—

इस युग में पुराणों के दो मुख्य नायक राम तथा कृष्ण की कथा के अतिरिक्त अन्य कथाओं को भी स्वीकार करके काव्य रचना हुई है। ईश्वर के स्थान पर ईश्वर-भक्त के महत्व का प्रतिपादन पुराणों में हुआ है। अत: अनेक कवियों ने प्रह्लाद, ध्रुव और अन्य ईश्वर भक्तों के चरित्र का वर्णन भी धार्मिक दृष्टि से किया है। बाबा रघुनाथ दास `रामसनेही` ने अपने `विश्राम सागर` के प्रथम खण्ड में अजामिल, प्रह्लाद, ध्रुव से सम्बन्धित पौराणिक कथाओं का वर्णन किया है।

अन्य कथाओं में सबसे प्रचलित कथा शिव तथा पार्वती की है। रामकृष्ण के प्रति स्तुतिमूलक काव्य रचनाओं के सदृश शिव स्तुति से सम्बन्धित अनेक पदों की रचना भी आधुनिक युग में हुई है। श्री सत्यनारायण कविरत्न के `शिवमहिम्न स्तोत्र`[१] तथा `शिवताण्डव स्तोत्र`[२] में प्रथम पुष्पदन्त विरचित `शिव महिम्नस्तोत्रम्` का अनुवाद है किन्तु द्वितीय कवि की मौलिक कृति है।

---

१. हृदय तरंग, पृ० १०
२. ,, , पृ० २१

श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ने भी शिव वन्दना सम्बन्धी पद लिखे हैं।

शिव के ब्रह्मत्व का निरूपण तथा शिव कथा का विस्तृत वर्णन `शिवपुराण` में प्राप्त होता है, यद्यपि अन्य पुराणों में भी गौण रूप में शिव की कथा का वर्णन है।[१] आधुनिक युग में परम्परागत दृष्टि से रचित प्रबन्धात्मक कृति` शिव रहस्य`[२], गौरी विवाह[३] में शिव की पौराणिक कथा के अति प्रचलित प्रसंगों (सती जन्म, सती-शिव विवाह, सती दाह, दक्ष यज्ञ विध्वंस, उमा जन्म, उमातप, काम दहन, उमा-शिव विवाह) का वर्णन मात्र कर दिया गया है। समय की दृष्टि से बहुत बाद की रचना `पार्वती तपस्या`[४] में भी कवि की दृष्टि धार्मिक[५] है तथा वर्णित कथा का स्वरूप भी परम्परागत है। पार्वती तपस्या से लेकर पार्वती-विवाह तक की मुख्य घटनाओं का वर्णन अत्यन्त वर्णनात्मक ढंग से कर दिया गया है।

हिन्दुओं के धार्मिक जीवन में गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा० आदि नदियों का विशेष आध्यात्मिक महत्व है। पुराणों में इनकी देवी के रूप में आराधना ही नहीं की गई है, वरन् इनसे सम्बन्धित कथाओं का विस्तृत वर्णन भी (प्राप्त) है।

---

१. देखिए परिशिष्टांक [पुराण कथानुक्रमणिका]

२. श्री रामचरन, समय सन् १८८३ ई०

३. श्री गौरीप्रसाद मिश्र, समय सन् १६०२ ई०

४. श्री रामचन्द्र शुक्ल`सरस` समय सन् १६५१ ई०

५. सफल अचलजा ने शंभु की तपस्या,
शिव मुदित करें त्यों पाठकों की समस्या।
रखकर मन में जो नित्य ही भक्ति भाव
नित्य पढ़न करेंगे चित्त में चारु चाव।
—पार्वती-तपस्या, पृ० ७८

विभिन्न नदियों में गंगा-यमुना सम्बन्धी रचनाओं की विस्तृत परम्परा हिन्दी-भक्ति काव्य में प्राप्त होती है। आधुनिक युग के कवि श्री भारतेन्दु ने जहां एक ओर कृष्ण के प्रति वैष्णव-भक्ति प्रकट की है, वहां दूसरी ओर गंगा यमुना के प्रति अपने भक्तिभावना का प्रदर्शन भी किया है किन्तु उनसे सम्बन्धित पौराणिक कथाओं का वर्णन नहीं किया है। गंगावतरण की पौराणिक कथा पर रचित श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर की 'गंगावतरण'[१] अत्यधिक महत्वपूर्ण रचना है, जिसकी कथा का रूप यद्यपि पूर्णत: परम्परागत है, किन्तु कथा का संयोजन नि:सन्देह कृति को प्रौढ़ता प्रदान करता है।

गंगा से सम्बन्धित कथा का वर्णन लगभग सभी पुराणों में प्राप्त है। पुराणों में गंगावतरण की कथा दो रूपों में वर्णित है। पहला स्वर्गलोक में[२] गंगा का अवतीर्ण होना, दूसरा राजा सगर के मृत पुत्रों के देह-तर्पण के लिए राजा भगीरथ द्वारा स्वर्ग-स्थित गंगा का महीतल पर अवतारण। कुछ पुराणों में कथा के दोनों पक्षों का, जिसमें किसी एक पक्ष को विशेष महत्व प्रदान किया गया है तथा कुछ में केवल एक पक्ष की कथा का, वर्णन प्राप्त है। श्रीमद्भागवत तथा नारद पुराण में गंगावतरण की कथा सगर के पुत्रों के वृत्तान्त के रूप में वर्णित है। स्कन्ध पुराण में सगर की कथा का संकेत एक दो स्थलों पर प्राप्त हो जाता है। इन पुराणों में स्वर्गस्थित विष्णुपदी गंगा का वर्णन नहीं है। इनके अतिरिक्त विष्णु-पुराण, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, मार्कण्डेयपुराण, देवीभागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में स्वर्गस्थित गंगा का वर्णन मुख्य रूप से हुआ है। स्वर्ग स्थित गंगा का वर्णन विशेष विस्तार से ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा देवी भागवत में प्राप्त होता है, जिसका रूप अन्य पुराणों से भिन्न है। विविध पुराणों के अध्ययन से एक तथ्य सामने आता है कि राजा सगर की कथा के रूप में सभी पुराणों में साम्य है, किन्तु विष्णुपदी गंगा के आविर्भाव तथा विष्णु

---

१. गंगावतरण, समय संवत् १९८० वि०

पद से लेकर विभिन्न धाराओं के रूप में विभक्त होकर प्रवाहित होने के वृत्तान्त में वैभिन्य के दर्शन होते हैं।

श्री जगन्नाथप्रसाद 'रत्नाकर' ने अपने 'गंगावतरण' में कथा के दोनों ही पक्षों को स्वीकार किया है तथा संतुलित भाव से दोनों को समान महत्व भी प्रदान किया है। कवि द्वारा वर्णित कथा के प्रथम रूप (अर्थात स्वर्गस्थित गंगा का आविर्भाव) का आधार ब्रह्मवैवर्तपुराण[1] है। दूसरे रूप के लिए वाल्मीकि रामायण के 'गंगावतरण[2]- प्रसंग' से सहायता ली है। विविध प्रसंगों का वर्णन आधार ग्रंथों (ब्रह्मवैवर्तपुराण, रामायण) की तरह है किन्तु कवि ने कथा को जिस रूप में संयोजित करके प्रस्तुत किया है — वह नि:सन्देह मौलिक है। कथा का प्रारम्भ रामायण की तरह राजा सगर के वर्णन से होता है। कवि के नवीन कथा-संयोजन के अनुसार चतुर्थ सर्ग में वरुण अंशुमान को गंगा के अलौकिक जल से पूर्वजों के तर्पण की सलाह देते समय स्वर्गस्थित गंगा की कथा का वर्णन भी करते हैं।

राजा सगर तथा भगीरथ द्वारा गंगावतरण की कथा के रूप में पुराणों तथा वाल्मीकि रामायण में विशेष अन्तर नहीं है, किन्तु जो कुछ वैभिन्य है उसमें 'गंगावतरण' की कथा रामायण के अधिक निकट है। सगर-पुत्रों द्वारा अश्व की खोज में पाताल लोक पहुंचने पर चारों दिशाओं के दिग्गजों का वर्णन[3], कपिल मुनि के 'हुं' ध्वनि से सगर पुत्रों की मृत्यु,[4] अंशुमान द्वारा अपने भस्मीभूत पूर्वजों के तर्पण के लिए जलाशय की खोज, वरुण द्वारा गंगा के अलौकिक जल से तर्पण की सलाह देना,[5] भगीरथ का तप द्वारा

---

१. ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृति खण्ड, १०,११,१२

२. वाल्मीकि रामायण —लंकाकाण्ड, सर्ग ३८—४४

३. वही, बा०का० ४१।७,८,९

४. वही, " ४०।२८,२९,३०

५. वही, " ४१।१९,२१

ब्रह्मा को प्रसन्न करना, ब्रह्मा के निर्देश पर गंगा को धारण करने के लिए शिव की स्तुति[१], गंगा तथा शिव के पारस्परिक होड़ में शिव द्वारा गंगा को बहुत दिनों तक अपनी जटाओं में धारण किए रखना, भगीरथ की प्रार्थना पर[२] शिव द्वारा गंगा की मुक्ति,[३] गंगा का विभिन्न धाराओं के रूप में विभक्त होकर पृथ्वी पर प्रवाहित होना, आदि प्रसंगों का वर्णन रामायण के अनुकरण पर है।

गोलोक स्थित गंगा के वर्णन में कवि ने ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार गंगा को कृष्ण के चरणों से उत्पन्न माना है।[४] अन्य प्रसंगों की योजना— यथा: गोलोक में `रास` के अवसर पर देवताओं का एकत्रित होना, शिव के गान से विमोहित देवताओं के समक्ष से कृष्ण का सहसा लुप्त होना, तथा उस स्थल पर अपार जलराशि का प्रकट होना, उस जलराशि का वपुरूप-धारी बाला के रूप में (गंगा) प्रकटीकरण, राधा के क्रोध से भयभीत गंगा का कृष्ण के पदनख में समाहित हो जाना तथा देवताओं के त्राहि-त्राहि करने पर पुन: प्रकट होना— ब्रह्मवैवर्तपुराण की तरह है। कथा में संक्षेप लाने के लिए कवि ने एक दो स्थलों पर मौलिकता भी प्रदर्शित की है। ब्रह्मवैवर्त-पुराण के अनुसार राधा के क्रोध से भयभीत गंगा पहले अपने जल रूप में प्रविष्ट हो जाती हैं, किन्तु राधा द्वारा उस जल को भी पीने के लिए उद्यत होने पर वह पुन: वपु रूप धारण करके कृष्ण के चरणों में समाहित हो जाती हैं। कवि ने पहले प्रसंग को छोड़ दिया है तथा सीधे राधा के क्रोध से भयभीत गंगा का सूक्ष्म रूप धारण करके कृष्ण चरणों में प्रविष्ट हो जाने का वर्णन किया है। इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार देवताओं की प्रार्थना पर पुन:

---

१. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, ४२।२५,२६

२. वही, ४३।१०-१२

३. वही, ४३।१३-२०

४. विष्णु पुराण में गंगा को विष्णु के पदनख से उत्पन्न होने के कारण उन्हें विष्णु पदी कहा गया है। विष्णुपुराण— २।८

प्रकट होने वाली जल-रूप-धारी-गंगा के जल को ब्रह्मा ने अपने कमंडल तथा शिव ने अपनी जटा में धारण किया था । पुराणों के अनुसार राजा भगीरथ शंकर की जटा में स्थित गंगा के प्रति तपस्या करके उन्हें शंकर से प्राप्त करते हैं । कवि ने गंगा जल को ब्रह्मा द्वारा कमंडल में धारण करने का उल्लेख किया है, किन्तु शिव द्वारा गंगा धारण जल का वर्णन नहीं प्राप्त है । कदाचित् रामायण के गंगावतरण (भूलोक पर) की कथा के साथ मेल बैठाने के लिए उपरोक्त द्वितीय प्रसंग (गंगा-जल को ईश्वर (शंकर) द्वारा मस्तक पर धारण करना) को छोड़ दिया है । किन्तु बाल्मीकि रामायण के सदृश `गंगावतरण` में भी भगीरथ ने तप के द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न करके उनसे गंगा की प्राप्ति की थी ।[२] जिसके वेग को शिव अपने मस्तक पर धारण करते हैं ।

राजा हरिश्चन्द्र की कथा को आधार बनाकर लिखी गई विशेष उल्लेखनीय कृति श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की `हरिश्चन्द्र` है । मार्कण्डेय पुराण[३] तथा देवी भागवत[४] में हरिश्चन्द्र की कथा विस्तार से वर्णित है तथा अन्य पुराणों में प्रसंगवश हरिश्चन्द्र का उल्लेख हो गया है । मार्कण्डेय पुराण तथा देवी भागवत के कथा में विशेष अन्तर नहीं है । 'रत्नाकर' के `हरिश्चन्द्र` की कथा का रूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के `हरिश्चन्द्र नाटक` की तरह है । अन्तर केवल इतना ही है कि कवि ने नाटक के कुछ अति नाटकीय तत्वों को छोड़ दिया है ।

मार्कण्डेय पुराण में वर्णन है कि एक बार राजा हरिश्चन्द्र शिकार के समय वन में कुछ स्त्रियों को रोते देखते हैं जो हरिश्चन्द्र द्वारा पूछे

---

१. ब्रह्मवैवर्तपुराण— अध्याय ११, श्लोक १२७

२. बाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, अ० ४३

३. मार्कण्डेयपुराण, अध्याय ७—८

४. देवीभागवत, स्कंध, ७।१८-२७

जाने पर अपने को विश्वामित्र द्वारा सताई हुई महाविद्याएं बतलाती है। उनकी रक्षा का आश्वासन देने के कारण हरिश्चन्द्र विश्वामित्र के क्रोध के पात्र बनते हैं।[१] किन्तु कवि ने कथा का आरम्भ हरिश्चन्द्र नाटक की भांति किया है। यहां देवराज इन्द्र नारद द्वारा हरिश्चन्द्र की प्रशंसा सुनकर ईर्ष्यावश नारद से हरिश्चन्द्र की परीक्षा लेने को कहते हैं और नारद के क्रोधित होने पर विश्वामित्र को अपने कार्य सम्पादन का साधन बनाते हैं। इसके पश्चात् के अनेक प्रसंगों की योजना भी कवि ने उक्त नाटक की भांति की है। हरिश्चन्द्र से दक्षिणा मांगने पर देवताओं का विश्वामित्र को धिक्कारना, विश्वामित्र का विश्वदेवा को क्षत्रिय कुल में जन्म लेने का शाप देना,[२] चांडाल रूप में श्मशान में घूमते हुए हरिश्चन्द्र के समक्ष श्मशान देवी का प्रकट होना, हरिश्चन्द्र द्वारा श्मशान देवी से स्वामिकल्याण का वर मांगना,[३] कापालिक वेशधारी धर्म के द्वारा हरिश्चन्द्र को सिद्धियां प्रदान किए जाने पर हरिश्चन्द्र की अस्वीकृति,[४] दु:ख से विह्वल हरिश्चन्द्र का दुपट्टे से फांसी लगाकर मरने के लिए उद्यत होना पुन: अपनी पराधीनता को स्वीकार करके स्वयं को धिक्कारना,[५] मृत रोहिताश्व के अंग से लिपटे कफन में से ही आधा फाड़ कर देते समय पुष्पवर्षा के साथ देवताओं का प्रकट

---

१. मार्कण्डेय पुराण, ७।१-८

२. मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है कि विश्वामित्र ने रानी पर डण्डे से प्रहार किया, अत: विश्वदेवा (दयावश) परस्पर विश्वामित्र की निन्दा करते हैं और शाप के भागी बनते हैं।

—मार्कण्डेयपुराण ८।६१-६५

३. हरिश्चन्द्र नाटक, भा०ग्र०, पृ० २६०

४. वही, पृ० २६७

५. वही, पृ० ३१२

होना आदि मुख्य प्रसंग हैं— जो नाटक की अनुकृति मात्र हैं। कथा के अन्त की योजना भी नाटक के अनुसार है। यहाँ भी हरिश्चन्द्र देवताओं से अयोध्यावासियों के वैकुण्ठगमन के वरदान के अतिरिक्त देश कल्याण का वरदान भी माँगते हैं —

सज्जन कौ सुख होइ सदा हरिपद रति पावै।
छूटैं सब उपधर्म सत्य निज भारत पावै ।।
मत्सरता और फूट रञ्च इहिं ठाँम न पावै।
कुकविनि की विसराइ सुकवि-बानी जग गावै ।।[१]

हरिभक्त प्रह्लाद को आधार बनाकर लिखी गई श्री देवी प्रसाद `प्रीतम` की रचना `प्रह्लाद-चरित्र`[२] में कथा का वर्णन नहीं है। कवि ने अत्यन्त भक्तिभाव से प्रह्लाद के गुणों की प्रशंसा की है। श्री दुर्गा सिंह जूदेव के `प्रह्लाद चरित्र`[३] में धार्मिक दृष्टि से कथा वर्णन भी प्राप्त है। नृसिंह अवतार तथा हिरण्यकशिपुवध प्रसंग में प्रह्लाद की कथा का वर्णन अनेक पुराणों में प्राप्त है किन्तु `प्रह्लादचरित्र` में पुराणों के विविध प्रसंगों के निर्वाह की सूक्ष्म दृष्टि के दर्शन नहीं होते हैं। कवि ने इस कथा से सम्बन्धित अति प्रचलित प्रसंगों (हिरण्यकशिपु की हरिविरोधी दृष्टि, प्रह्लाद पर किए गए विविध अत्याचार, प्रह्लाद की दृढ़ हरिभक्ति, नृसिंह अवतार, हिरण्यकशिपुवध, तथा प्रह्लाद की राजगद्दी) का वर्णन चलताऊ ढंग से कर दिया है।

सावित्री का उपाख्यान श्री देवीभागवत पुराण [४] में प्राप्त है

---

१. हरिश्चन्द्र नाटक की पंक्तियाँ भी लगभग यही हैं —

सकल जनन सों सज्जन दुखमत होइ हरिपद रति रहै।
उपधर्म छूटै सत्य निज भारत गहै कर दु:ख बहै।
बुध तजहिं मत्सर नारि एक होहिं सब गुरु सुख लहैं।
तजि नाम कविता सुकवि जन की अमृत बानी सबकहै। भा०ग्रं०,पृ०३१८

२. समय सन् १९०० ई०

३. समय संवत्१९७०वि०   ४. देवी भागवत १०।२६ - ३१

किन्तु श्री प्रसिद्ध नारायण रचित `सावित्री`[१] की कथा का आधार महाभारत[२] है। देवी भागवत में `देवी सावित्री` के महात्म्य वर्णन के संदर्भ में अश्वपति की कन्या सावित्री के रूप में उनके अवतरण एवं उनसे सम्बन्धित कथा का वर्णन प्राप्त है। महाभारत में यह उपाख्यान `पातिव्रत्य` के उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत है। `सावित्री` में भी सावित्री के देवत्व का निरूपण न होकर उनके पातिव्रत्य[३] का वर्णन किया गया है। देवीभागवत में सावित्री एवं यमराज के संवाद के माध्यम से कर्म के विविध रूपों का तात्त्विक विवेचन हुआ है। महाभारत के उपाख्यान में लौकिकता तथा कथात्मकता है। कवि द्वारा स्वीकृत कथा प्रसंग महाभारत के अधिक निकट है।

पुराणों में विष्णु के अवतारों के वर्णन के अन्तर्गत वामन-अवतार का उल्लेख भी हुआ है। श्री दुनियापति सिंह की रचना `वामन-चरित्र`[४] में कथा वर्णन अत्यन्त संक्षेप में है। कथा में किसी प्रकार की नवीनता एवं प्रौढ़ता नहीं है।

इस तरह पुराणों के विविध कथाओं को स्वीकार करके विपुल काव्य-सृजन हुआ है किन्तु पुराणों की कथा के परम्परागत रूप को लेकर भी जगन्नाथदास `रत्नाकर` के `गंगावतरण` तथा `हरिश्चन्द्र` जैसी प्रौढ़ कृतियों का निर्माण कम ही हुआ है — जिसमें आद्योपान्त पौराणिक कथा का निर्वाह हुआ हो। भक्तिभावना अथवा धार्मिक उद्देश्य से लिखी गई इन

---

१. समय सन् १६०३ ई०

२. महाभारत, वनपर्व, अ २६३- २६६

३. स्त्रियों के सच्चरित्र होने में भी प्रधान साधन उनका निज धर्म पालन ही है। उनके निज धर्म का मुख्य अंग पतिव्रत है जिस व्रत में इस ग्रन्थ की नायिका सावित्री दीक्षित है। —— सावित्री : कवि की भूमिका से ।

४. समय सम्वत् १६६७ वि०

पुस्तकों में कथा के अति प्रचलित प्रसंगों का वर्णन मात्र कर दिया गया है।

पौराणिक पात्रों का परम्परागत रूप——

विभिन्न पौराणिक कथाओं के साथ पौराणिक पात्रों का ग्रहण या तो चरित्र के परम्परावादी आदर्शों के रूप में हुआ है अथवा अनेक पौराणिक पात्रों के दिव्य रूप की अवतारणा हुई है। किन्तु पौराणिक पात्रों के चरित्र-निरूपण में विशेष दृष्टि रीतिकालीन श्रृंगारिकता की है --जो इस युग के कवियों को उत्तराधिकार रूप में प्राप्त थी। वस्तुत: मुक्तक काव्य में चरित्र-वर्णन का निर्वाह नहीं पाता है किन्तु इस युग में रचित प्रबन्धकाव्यों में भी स्थूल वर्णनात्मकता तथा घटनाओं की बहुलता के कारण चरित्र-निरूपण के लिए स्थान रह जाता ही नहीं। यद्यपि वामन चरित्र, प्रह्लाद चरित्र, कृष्ण-चरित्र, उषा चरित्र, सुदामा चरित्र जैसी रचनाओं में चरित्र वर्णन के उद्देश्य की झलक मिलती है किन्तु चरित्र-वर्णन के अन्तर्गत कुछ सर्वमान्य गुणों का उल्लेख मात्र हुआ है। इन रचनाओं में चरित्र वर्णन से उनका तात्पर्य पुराणों में वर्णित उनके विविध कृत्यों को वर्णन मात्र कर देना है। प्रह्लाद की अनन्त ईश्वरभक्ति, राजा भगीरथ की तपस्विता, राजा हरिश्चन्द्र का संकटों के मध्य अपनी सत्यवादिता पर स्थैर्य, सावित्री की अनन्य पतिनिष्ठा आदि उन प्राचीन चारित्रिक आदर्शों की पुनर्स्थापना है।

आधुनिक हिन्दी-काव्य के प्रारम्भिक युग में लिखी गई विविध पौराणिक रचनाओं में पौराणिक पात्रों के निरूपित स्वरूप को रीतिकालीन परम्पराओं के विकास के रूप में समझ सकते हैं। कथाओं के दो परम्परावादी रूपों के समानान्तर पौराणिक पात्रों का भी दो रूप दृष्टिगत होता है। एक ओर रामकृष्ण का ब्रह्मत्व है तो दूसरी ओर उनका विलासिताप्रिय रसिक रूप। बहुधा एक ही कवि ने एक स्थल पर इनके ब्रह्मत्व का स्मरण कराया है, किन्तु अन्यत्र वह उन्हें श्रृंगार-रस-शिरोमणि विविध कामकलाओं में निपुण सामान्य नायक के रूप में प्रस्तुत करता है। अत: कोई भी पौराणिक

चरित्र विशेष वर्ग (देवत्व अथवा नरत्व) का बनकर नहीं उभरपाया है।

रामायण के पुरुषोत्तम, नर-केसरी राम, मानस में सर्वज्ञ कालातीत, परमानन्दस्वरूप अजर अमर ब्रह्म थे , जो नर रूप धारण करके विभिन्न मानुषी कृत्यों के कर्ता बनते हैं किन्तु जैसा कि पहले भी निर्देश किया गया है कि मानस के मर्यादाशील-पुरुषोत्तम राम का रसिक शिरोमणि रूप में विकास रीतिकाल में ही हो गया था, जिसका अवशिष्ट प्रभाव हिन्दी काव्य साहित्य के प्रारम्भ के युग में भी प्राप्त होता है। इस युग में महाराज रघुराज-सिंह जैसे रसिक सम्प्रदाय के कवियों ने राम का इसी रूप में चित्रण किया है।

राम के चरित्र का विकास सामान्य-पुरुष के रूप में न होकर राजाधिराज राजपुत्र के रूप में हुआ था जबकि कृष्ण का विकास सामान्य अहीर बालक के रूप में। (यद्यपि मथुरा गमन के पश्चात् कुंज गलियों में विचरण करने वाले कृष्ण भी राजाधिराज द्वारिकाधीश हो जाते हैं) अत: कृष्ण के ब्रजवासी अहीर-पुत्र के रूप में रीतिकालीन सामान्य-जीवन में विकसित रस लोलुपता एवम् मर्यादाहीन काम सम्बन्धों का आरोपण सहज हो गया था। किन्तु राम का अयोध्या नृप के रूप में वर्णन करते समय तत्कालीन विलासप्रिय नरेशों, बादशाहों और सामंतों के जीवन का आरोपण सामान्य तत्व था। महाराजारघुराज सिंह मध्यकालीन नरेशों केअन्तिम पीढ़ी के नरेश थे अत: उनके `रामस्वयंबर` तथा ` रुक्मिणीमंगल` में राम तथा द्वारिकाधीश कृष्ण तत्कालीन सामंतों की भांति प्रतीत होते हैं तथा सीता और रुक्मिणी विलासप्रिय सामंत-नारियों के सदृश।

राम एक ओर अप्सराओं का नृत्य देखते हुए (आधुनिक अर्थ में वेश्याओं के मुजरा सुनने के समान) अपना मनोरंजन करते हुए दृष्टि-

गोचर होते हैं।[१] दूसरी ओर अपने नर्मसखाओं को साथ लेकर सीता की सखियों के साथ होली खेलते हैं। राम ऐसे बनमाली हैं जिसको देखते ही "लोक लाज, कुललाज बिसरिगो आजहु होनी होई सो होना" की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।[२] इतना ही नहीं दर्शाया है वरन् राम के गुणों का वर्णन करते समय कवि ने राम को शीलवान् तथा गुणवान ही नहीं वरन् सर्वगुण सम्पन्न दिखाने के मोह में तत्कालीन नरेशों के कला-प्रेम का आरोपण करके उन्हें संगीत-विशारद तथा रास-निपुण भी बताया है —

तालभेद जानत सकल साढ़ि कोटि श्रुति साख।
राग भेद सब जानतो, वे चौरासी लाख ।।

सखी सखन संग रासनमाहीं। गाय बजाय दिखावत जाहीं ।।
ले विलम्ब द्रुत मध्यमरीती। अनुदात्तहु उदात्त स्वर नीती ।।
वादी सप्त स्वरन की वाली। दीन मुख्य स्वर सम अरु खाली ।।
रागमेल अरु राजविभागा। मृदु मूर्च्छना तान की जागा ।।
दनुज मनुज सुर पन्नग गाना। जानत राम यथा ईशाना ।।
शिल्प कर्म जानत रघुराई। शिल्पिनि दरशावत निपुणाई ।।[३]

---

१. देवसम पासन में करें कुलिशासन ते, बीते घरी हांसन में सखी आसपासे हैं।
रघुराज राजसिंह आसन में राजै राम करन हुलासन में विविध तमासे हैं।
अप्सरा अपारा जटलारा को पसारा कियो, रूप की अगारा केशभारालखे लंक है।
केती देवदारा सजी सकल शृंगारा तान, लेती मनोहारा मुख पूरण मयंक है।।
बाजे अगारा बीन बांसुरी सितारा वारि तारा त्यों तितारा मुख लावती निशंक है।
रघुराज रीझ सरदार पै इनाम धारा अवध कुमारा कहै महिमा उतंक है।
—रामस्वयंबर, २३।७०५

२. रामस्वयंबर १८।३६५

३. वही, २३।७२७

इसी तरह कवि ने रुक्मिणी-परिणय में कृष्ण को द्वारिकाधीश के रूप में प्रस्तुत किया है किन्तु उनमें इस स्वरूप की गरिमा का निर्वाह नहीं हुआ है। एक ओर उनके इस रूप के साथ ही 'रासरसिक' रूप को समाहित कर दिया गया है दूसरी ओर उस युग की सामान्य वृत्ति के अनुसार उनके इस रूप पर तत्कालीन ऐयाशप्रिय विलासी सामंतों के जीवन का आरोपण हुआ है। सीता और रुक्मिणी भी पानदान, पीकदान के बीच रहने वाली मध्ययुगीन नारी हैं। रास की आज्ञा देते समय रुक्मिणी का यह चित्रण पूर्णत: रीतिकालीन नायिका के समान प्रतीत होता है —

सुन्दर श्याम के बैन सबैन रँगी सुनि नैनन नीचे नवाइके।
प्रीतम के कर को हलर गहि ठाढ़ी भई तिरछी मुसकाइ के।
घुंघट के पट ओट लिए पिय को निरखे मुख दीठि बचाइ के।
रास के आयुस देति लगी लाज मनोज को दूत पढाइ के। [1]

धार्मिकता तथा शृंगारिकता से परिपूर्ण इस प्रकार के चरित्र-चित्रण की प्रवृत्ति भारतेन्दु, प्रेमघन, शंकर, तथा 'रत्नाकर' आदि की रचनाओं में भी प्राप्त होती है। भारतेन्दु ने एक ओर कृष्ण की 'ब्रह्म' रूप में बन्दना की है[2] तथा राधा के दिव्य अलौकिक सौन्दर्य की सुकुमारता का वर्णन किया है —

साँचहि दीपशिखा सी प्यारी।
धूमकेश तन जगमगात धुति दीपति भई दिवारी।।
स्वयं प्रकाश अकुंठ सुहाई बिनु असार छवि छाई।
सदा एक रस नित्य अधिक यह वासों चाल लखाई।।

---

१. रुक्मिणी परिणय, पृ० २०६

२. जय जय हरिश्चंद-नन्द पूर्ण ब्रह्म दुख निकंद
परमानन्द जगत बंद सेवक सुखदाई।
— कार्तिक स्नान, भा०ग्र०, पृ० ७६

भरत सुगंधन ब्रज कुंजन मग शीतल तन कर वारी
प्रीतम-तन को विरह मिटावत हरीचंद दृग जारी ।[१]

पर दूसरी ओर भारतेन्दु के ही इन पंक्तियों में कृष्ण के नायक-परक रूप का वर्णन हुआ है --

सोई तिया अलसाय के सेज पै सो छबि लाल विचारत ही रहै ।
पोंछि रुमाल सों श्रमसीकर भौंरन को निरुवारत ही रहै ।
त्यों छबि वै को मुख ते अलकैं हरिचंद जु टारत ही रहै ।
द्वै घरी लौं जके से खरे वृषभानु कुमार निहारत ही रहै ।[२]

इस धारा के एक अन्य कवि श्रीजगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ने कृष्ण तथा राधा के ब्रह्मत्व का स्मरण किया है किन्तु कदाचित् कृष्ण राधा का सामान्य नायक-नायिका के रूप में उपयोग सबसे अधिक उनके ही द्वारा हुआ है । राधा के सौन्दर्य वर्णन में उनकी मंजुलता दिव्यता के स्थान पर मांसल चित्रण अधिक है तो कृष्ण भी अपेक्षाकृत अधिक रसिक प्रतीत होते हैं । उनके 'उद्धवशतक' के कृष्ण तथा गोपियां भी भागवत और सूर से भिन्न हैं । ब्रजवासियों के प्रेम में भागवत के कृष्ण के अन्तर्तम में कोमल भावों की सृष्टि न हुई हो --ऐसा नहीं है, किन्तु पद्मपुष्प के सुगन्धमात्र से राधा के शरीर की सुगन्ध का आभास पाकर मुच्छित होने वाले तथा उद्धव के समक्ष विसूरने वाले कृष्ण नि:सन्देह भिन्न हैं जिसमें सामान्य नायक के रूप का आरोपण स्पष्ट ही प्रतीत होता है, दूसरी ओर उद्धव के उपदेश को तिनके की तरह उड़ा देने वाली गोपियां अधिक भावविह्वल किन्तु अधिक चतुर भी हैं ।

---

१. कार्तिक स्नान, भा०ग्रं०, पृ० ८६

२. भा०ग्रं०, पृ० १६८

खण्ड — दो

(आधुनिक हिन्दी काव्य में पुराणकथाओं के नवीन प्रयोग)

अध्याय– द्वितीय

प्रथम सोपान

नव चेतना और पुराणकथाओं के नवीन प्रयोग

आधुनिक हिन्दी काव्य में पुराणकथाओं के प्रयोग के संदर्भ में 'नवीन प्रयोग' से आशय उन कथाओं का सामयिक तत्वों से संयुक्त होकर व्यक्त होना है। नवीनता कथा संयोजन, प्रसंग चयन, कथा के प्रस्तुतीकरण में नहीं है, वरन् कथाओं की मूल आत्मा में भी है। परिवर्तित संदर्भ में प्रयुक्त यह प्राचीन कथाएं नवीन विचारों तथा भावों की वाहक बनी हैं। इस नवीन भावधारा का सम्बन्ध तत्कालीन परिस्थितियों एवं विचार पद्धतियों से है। वस्तुत: इस नवीन चेतना के मूल में उन्नीसवीं शताब्दी में उद्भूत तथा बीसवीं शताब्दी में पल्लवित होने वाले नव जागरण सम्बन्धी आन्दोलनों का बहुत बड़ा प्रभाव है, जिससे प्रेरणा ग्रहण करके तत्कालीन भारतीय जन-जीवन में नवीन चेतना का संचार होता है। इस नवीन चेतना की सापेक्षता में हिन्दी काव्य में प्रयुक्त पुराणकथाएं और पौराणिक पात्र किस प्रकार नूतन अभिव्यक्ति के माध्यम बनते हैं —— इस पर बाद में विचार होगा। उसके पूर्व उस नवचेतना तथा उसके मूल में निहित तत्कालीन परिस्थितियों पर प्रकाश डालना समीचीन होगा।

परिस्थितियां—

राजनीतिक— अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय जीवन को हम अंग्रेजों के सम्पर्क के विशिष्ट संदर्भ में ही समझ सकते हैं। क्योंकि कहीं क्रियात्मक रूप में और कहीं प्रतिक्रियात्मक रूप में इसने हमारे जीवन को गति प्रदान किया है—इसमें सन्देह नहीं।

अंग्रेजों द्वारा भारत में 'ईस्टइण्डिया' कम्पनी की स्थापना ३१ दिसम्बर १६०० ई० में हुई थी। यदि उस समय के इतिहास का सर्वेक्षण करें तो स्पष्ट होगा कि कम्पनी की स्थापना से लेकर १८५७ ई० तक का समय कम्पनी के क्रमश: जाल फैलाने तथा भारतीय राजनीति, धर्म और जनजीवन में जड़ जमाने का इतिहास है। दूसरी ओर भारतीय जीवन में यहां के छोटे-मोटे नरेशों, बादशाहों, ताल्लुकेदारों (क्योंकि एक संगठित राज्य न था) के क्रमश: पतन और अन्तत: उनकी समाप्ति का समय भी यही है। प्रथमत: व्यापारिक रूप में आने वाली इस कम्पनी ने तत्कालीन पतनोन्मुख भारतीय जनता की दुरवस्था का पूरा लाभ उठाया। धीरे-धीरे वे भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करते गए और क्रमश: यहां के राज्यों पर अधिकार जमाते गए। सन् १७५७ ई० के पलासी-युद्ध के पश्चात् अंग्रेजों की उत्तरी भारत में भी धाक जमने लगी और सन् १७६४ ई० के बक्सर युद्ध में अंग्रेजों की विजय से उनकी जड़ें और भी गहरी पहुंच गई थी। सन् १८४६ ई० में द्वितीय सिक्खयुद्ध तथा सन् १८५७ के सिपाही विद्रोह के उपरान्त अंग्रेजों ने शासकीय दृष्टि से अपना प्रभुत्व पूर्णरूप से जमा लिया था।

आर्थिक— अंग्रेजों के आगमन का सबसे अधिक प्रभाव यहां की पड़ता है। ईस्टइण्डिया कम्पनी की स्थापना मुख्यत: व्यापारिक दृष्टि से हुई थी। इस कम्पनी के व्यापारिक नीति के कारण

यहाँ के ग्रामीण उद्योग नष्टभ्रष्ट हो गये और देश आर्थिक दृष्टि से बहुत विपन्न हो गया था । भुखमरी, गरीबी, अकाल इस समय के जीवन की सामान्य घटनाएं थीं । १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लगभग २४ अकाल पड़े थे..... और इन चौबीस अकालों में १८ अकाल १६ वीं सदी के अन्तिम पच्चीस वर्षों में पड़े थे ।"[1] अंग्रेजों द्वारा यहाँ की जनता का आर्थिक शोषण भी इस विषमता को बढ़ाने में बहुत सहायक होता है ।

<u>सामाजिक और धार्मिक</u> — तत्कालीन भारतीय समाज अनेक प्रकार की कुरीतियों एवं अन्धविश्वासों से बद्ध था । दृढ़ सामाजिक नियमों छुआछूत, भेद भाव की ऊंची दीवारें, अनेक सामाजिक कुप्रथाएं— कन्यावध, सतीप्रथा, बालविवाह, बहुविवाह आदि तत्व उस समय के जीवन में घुन के सदृश लगा हुआ था । वस्तुत: उस समय की जनता की सामाजिक चेतना अत्यन्त रूढ़ और कुंठित हो गई थी । अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् विदेशी सत्ता के भार ने उन्हें और भी निराश बना दिया था ।

धार्मिक क्षेत्र में शुद्ध धर्मानुभूति का पूर्ण अभाव था । धर्म के नाम पर मठाधीशों, पण्डितों, पुरोहितों तथा पुजारियों की निरंकुशता से तत्कालीन धार्मिक जीवन त्रस्त था । विभिन्न अवैज्ञानिक धार्मिक कृत्य ही उस समय की धार्मिकता के अंग बन गये थे । वस्तुत: परतंत्रता की भावना ने जहाँ एक ओर उन्हें निराश किया था वहाँ दूसरी ओर स्वयं उनकी सामाजिक स्थिति धार्मिक अन्धविश्वासों ने भी उन्हें अत्यन्त विवेकहीन और प्रज्ञाशून्य बना दिया था ।

<u>प्रतिक्रिया: परिस्थितियों से उत्पन्न चेतना का स्वरूप</u>— अंग्रेजों से सम्पर्क का एक दूसरा पहलू भी है । भारत में अंग्रेजी-शासन की स्थापना

---

१. भारत: वर्तमान और भावी, ले० रजनीपामदत्त, पृ० १२२

के पश्चात् ही भारतवासियों के लिए ज्ञान-विज्ञान का नया अध्याय खुल गया। यूरोप में १६ वीं शताब्दी तक विज्ञान की उन्नति हो चुकी थी। अंग्रेज अपने साथ इस वैज्ञानिक विचारधारा को भी साथ लाए थे। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार तथा प्रसार से यहां के शिक्षित वर्ग पर दो प्रतिक्रिया होती है। एक तो ऐसा वर्ग था जो इस विदेशी शिक्षा के प्रभाव में अपनी संस्कृति से भी घृणा करने लगा तथा नवीन अंग्रेजी सभ्यता का कायल हो गया था। किन्तु दूसरा वर्ग ऐसा भी था जिसने इस नवीन वैज्ञानिक शिक्षा से प्राप्त नवीन दृष्टि से अपने देश की दशा का ही परीक्षण करने लगा था। वे अपने देश की सामाजिक, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, को दूर करना चाहते थे और ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध भी इस वर्ग ने आवाज उठाई थी। इतना ही नहीं इनका विरोध उन पढ़े लिखे लोगों के प्रति भी था जो पाश्चात्य सभ्यता के दास हो गए थे। इस नवजागरण के प्रेरक अनेक मनीषियों ने कहीं व्यक्तिगत रूप में और कहीं संयोजित संस्था के रूप में भारतीय समाज में बहुमुखी जागरण का कार्य किया था।

१. सांस्कृतिक जागरण—

<u>नवजागरण के आदि प्रवर्तक राम मोहनराय</u>— १६ वीं शताब्दी के नवोत्थान के जनक राजा राममोहन राय थे जिन्होंने सर्वप्रथम ईसाई धर्म के बढ़ते प्रभाव एवं तत्कालीन जन जीवन में व्याप्त धार्मिक-अन्धविश्वास, बाह्या-डम्बर, पूजापाठ, तंत्र-मंत्र का प्रभाव, अनेक सामाजिक क्रूर कर्म (सती प्रथा, कन्या बध) पुरोहितवाद आदि कुरीतियों से मुक्ति प्रदान करने के लिए सन् १८२८ ई० में 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की थी। उनका दृष्टिकोण मुख्यत: धार्मिक था और वह धार्मिक सुधार पहले चाहते थे —"जो व्यक्ति की है वही देश की है। वास्तविक उन्नति के लिए पहले उन्नत धर्म प्रचार होना चाहिए, राजनैतिक पदाधिकार प्राप्त करने के लिए चाहे राष्ट्री सभा कीजिए, चाहे प्रान्तिक सभा अथवा सामाजिक सुधार करने के लिए सामाजिक परिषद् कीजिए

परन्तु जब तक जागृति नहीं होगी तब तक देश को इसमें वास्तविक सफलता नहीं मिल सकती है। सबसे पहले आत्मा की उन्नति होनी चाहिए। वे भारतीय समाज में एक सर्वांगीण क्रान्ति करना चाहते थे और इसके लिए हमारे धार्मिक-विचार में पहले क्रान्ति होनी चाहिए थी यह उनका विश्वास था। पहला धार्मिक सुधार, दूसरा सामाजिक सुधार और फिर तीसरा राजनैतिक सुधार यह क्रम उन्होंने अपने मन में निश्चित कर रखा था।"[१]

इस दृष्टिकोण को सामने रख कर राजा राममोहन राय ने अवतारवाद पर आधारित तत्कालीन प्रचलित पौराणिक धर्म का निषेध करके एकेश्वरवाद की स्थापना की थी जिसमें विभिन्न देवी-देवताओं के स्थान पर एक अनादि निर्विकार ब्रह्म को स्वीकार किया गया था। सामाजिक क्षेत्र में सती प्रथा का निवारण और कन्यावध बन्द करना उनके दो बहुत बड़े सामाजिक कृत्य थे।

आर्य समाज— जिन परिस्थितियों और कारणों के परिणाम-स्वरूप 'ब्रह्मसमाज' की स्थापना हुई थी 'आर्य-समाज' के जन्म के मूल में भी लगभग वही कारण थे। इसके संस्थापक स्वामी दयानन्द ने भी ब्रह्म-समाजियों की भाँति परम्परागत पौराणिक देवी-देवता तथा अवतारवाद पर आधृत धर्म का खण्डन किया तथा वेद को आधार बनाकर शुद्ध वेदान्ती अथवा 'आर्यधर्म' की स्थापना की थी। यह आर्य धर्म कोई नवीन धर्म नहीं था वरन् तत्कालीन पतनशील तत्वों से मुक्त प्राचीनतम वैदिक संस्कृति पर आधारित भारतीय धर्म का पुनर्संस्कार था, जिसमें अपने 'उच्च' होने की गरिमा का बोध भी था। "वे आर्यसमाज को समानता के आधार पर स्वीकार करते थे। आर्य कोई वर्ण नहीं श्रेष्ठ सिद्धान्तों के सभी व्यक्ति 'आर्य' हैं और दस्यु वह है जो दुराचार और पाप का जीवन व्यतीत करता है।"[२]

---

१. शंकर दत्तात्रेय जावडेकर : आधुनिक भारत (अनु० हरिभाऊ उपाध्याय) पृ० ५२

२ They were admitted to the Arys Samaj on a basis of equality; for the Aryas are not a caste. "The Aryas are all men of superior principles; and the Dasyus are they who lead a life of wickedness and sin. "
— The Life of Ramakrishna ; Romain Rolland.
Page 162-163.

इस आदर्श को दृष्टि में रखकर हिन्दू समाज में घुन के सदृश लगी अनेक धार्मिक-सामाजिक कुरीतियों के मूलोच्छेदन का कार्य दयानन्द तथा उनके अनुयायियों ने किया । सामाजिक क्षेत्र में नारी की उन्नति के लिए नारी स्वतंत्रता, नारी शिक्षा का प्रचार, पर्दा प्रथा का उन्मूलन, विधवा-विवाह का समर्थन आदि वे विशेष कृत्य थे जिसने हिन्दी नारी को पुरुष के समकक्ष स्थापित करने में सहायक हुआ ।

थियोसोफिकल सोसायटी— उपर्युक्त नवजागरणमूलक आन्दोलनों के अतिरिक्त अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण संस्था थियोसोफिकल सोसायटी की उपेक्षा नहीं की जा सकती । इसकी स्थापना विदेश में हुई थी, परन्तु पल्लवित भारत में हुई । यह समकालीन अन्य संस्थाओं— आर्य समाज, ब्रह्म समाज, से भिन्न थी । इस संस्था ने इनकी तरह हिन्दू धर्म के केवल संशोधित रूप को ही मान्यता न प्रदान करके तत्कालीन पौराणिक-धर्म को भी रक्षणीय मानकर उसका समर्थन किया है । उन्होंने केवल वेद, उपनिषद् और गीता का हवाला ही नहीं दिया प्रत्युत स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र, महाकाव्य जब जहां जो बात मिली सबके द्वारा हिन्दुत्व के प्रचलित समग्र रूप का समर्थन करना प्रारम्भ कर दिया था ।'[१] एनी बेसेन्ट की अध्यक्षता में इस संस्था ने समाज के हित में बहुत काम किया ।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द— हिन्दू धर्म के समग्ररूप को तथा सर्वधर्म समन्वय की भावना को लेकर रामकृष्ण परमहंस की अवतारणा हुई थी जिन्होंने अपने सिद्धान्तों को अनुभूति के स्तर पर व्यक्त करके उसके प्रयोगात्मकता का प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया । वे प्रचारक नहीं साधक थे और उनकी इस साधना की व्याख्या उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने प्रस्तुत की । उन्होंने अपने गुरु के नाम पर रामकृष्ण मिशन की

---

१. संस्कृति के चार अध्याय, ले० डा० रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ० ४४६

स्थापना की, जिसका उद्देश्य धार्मिक और सामाजिक उन्नति था। धर्म के नाम पर व्याप्त तत्कालीन पुरोहितवाद तथा निवृत्तिमूलक धारणा के विरुद्ध सबसे तीव्रता से स्वामी विवेकानन्द ही टूटे थे। आर्य समाज, की भाँति उनके धार्मिक विचारों का आधार भी वेदान्त था, किन्तु उन्होंने वेदान्त-धर्म को युगानुरूप नवीन पृष्ठभूमि पर स्थापित किया और धर्म की ऐसी व्यवहारिक व्याख्या प्रस्तुत की जो उन्नीसवी बीसवीं शताब्दी के विज्ञान से उद्भूत बौद्धिक-दृष्टि को ग्राह्य भी सके। अपने अद्भुत विवेचन, बुद्धि एवं मेधा के द्वारा विदेशों में हिन्दू धर्म की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की और ब्रह्मसमाज तथा आर्य समाज द्वारा आलोचित हीनताग्रस्त भारतीयों के मन में सर्वप्रथम स्वाभिमान की भावना जागृत हुई। १६ वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में सर्वप्रथम उन्होंने ही मानवतावादी लोकोपयोगी, धर्म की प्रतिष्ठा की। धर्म-मन्दिर में ईश्वर के स्थान पर 'मानव' की स्थापना की तथा ईश्वराधना के स्थान पर 'मानवसेवा एवं लोकसेवा को अधिक महत्व प्रदान किया। उनके प्रभु मठाधीशों एवं पुरोहितों के भगवान् न होकर दरिद्रनारायण थे।———

" उन्होंने वेदान्त दर्शन के अद्वैतवाद का प्रचार किया और उन्हें इस बात का पक्का यकीन था कि विचारशील मानव जाति के लिए आगे चल कर सिर्फ वेदान्त धर्म ही हो सकता है। वजह यह था कि वेदान्त धर्म का आध्यात्मिक ही नहीं तर्क संगत था और साथ ही उसका बाहरी दुनियां के वैज्ञानिक खोजों से भी सामंजस्य था।" इस विश्व का सृजन किसी-विश्वोपरि ईश्वर से नहीं किया और न वह किसी बाहरी दिमाग की कृति है। वह स्वयंभु, स्वयं-संहारक, स्वयं पोषक, एवं अनन्त अस्तित्व ब्रह्म है। वेदान्त का आदर्श, आदमी, भी एक और उसकी सहज दैवी प्रकृति का था, मानव में ईश्वर दर्शन ही सच्चा ईश्वर दर्शन है, प्राणियों में मनुष्य सबसे बड़ा है।" सजीव लेकिन अदृश्य वेदान्त को दैनिक जीवन में सजीव काव्यमय हो जाना चाहिए, बेहद उलझी हुई पौराणिक गाथाओं में से निकल कर उसका साफ नैतिक स्वरूप सामने आना चाहिए और रहस्यपूर्ण योगीपने के भीतर से एक वैज्ञानिक और अमली मनोविज्ञान सामने आना चाहिए।"[१]

---

१. श्री जवाहरलाल नेहरू—हिन्दुस्तान की खोज, पृ० ४१७

वस्तुत: स्वामी विवेकानन्द की आध्यात्मिक विचारधारा तत्कालीन भारत की बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करता है । उन्होंने स्वस्थ जीवन तथा आर्थिक समानता को उतना ही महत्व दिया है जितना कि मानसिक उन्नयन को । उनका धर्म जीवन की पूर्णता में विश्वास करता है । उनके विचारानुसार स्वस्थ मन के लिए शरीर का स्वस्थ होना भी आवश्यक है । सन्यासी होते हुए भी उन्होंने भौतिक उन्नति को त्याज्य नहीं समझा यद्यपि भौतिकता की उपासना उनका मूल ध्येय नहीं था ।

विवेकानन्द के समकालीन तिलक ने भी धर्म के अन्तर्गत कर्म का सन्देश दिया और भगवद्गीता की युगानुरूप कर्मवादी नवीन व्याख्या प्रस्तुत की । यद्यपि वह राजनीति के नेता अधिक थे और उनका यह कार्य भी उनके राजनैतिक प्रयत्नों का ही अंग था । वस्तुत: १६ वीं शताब्दी में उद्भूत इन विभिन्न सांस्कृतिक आन्दोलनों का उस समय के राजनैतिक हलचलों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था परन्तु उनके इन सांस्कृतिक कार्यों को तत्कालीन राजनीति से अलग करके नहीं देखा जा सकता है क्योंकि सामाजिक एवम् धार्मिक परिवर्तन के उद्देश्य को लेकर चलने वाले इन नेताओं का यह विश्वास था कि परतंत्रता से मुक्ति प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने धर्म एवम् समाज में व्याप्त बुराइयों से मुक्त होकर नवयुग की वैज्ञानिक सत्ता के समक्ष खड़े होने योग्य बन सकें । राजा राममोहनराय एवं दयानन्द के द्वारा हिन्दू धर्म के शुद्ध तात्विक रूप की स्थापना, स्वामी विवेकानन्द एवं थियोसोफिकल सोसाइटी द्वारा हिन्दू धर्म का विदेशों में प्रचार और अभ्यर्थना के कारण भारतीय जनता ~~अन्तर्मे~~ जिस आत्म-विश्वास तथा स्वाभिमान की भावना का जन्म हुआ था उसका तत्कालीन देशभक्ति की भावना अर्थात् राष्ट्रीयता से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है । स्वामी विवेकानन्द ने स्पष्ट रूप में देशभक्ति को सबसे बड़ा धर्म कहा था । तिलक ने महाराष्ट्र के धार्मिक पर्व 'गणपति महोत्सव' को (सन् १८९३ ई० में) नया राष्ट्रीय रूप देने का प्रयास किया और 'शिवाजी जन्मोत्सव' मनाने का प्रयास भी सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का एक रूप था ।

२. राजनीतिक जागरण—

इस प्रकार ~~एक ओर~~ भावनात्मक क्षेत्र में १६ वीं शताब्दी के नवजागरण के विभिन्न नेताओं ने अपने सांस्कृतिक प्रयास द्वारा जिस देशाभिमान की भावना का बीजारोपण किया था उसका ही प्रतिफलन २० वीं शताब्दी की जन चेतना पर प्रकट होता है। इन नेताओं का कार्य मानसिक संस्कार का कार्य था और राजनैतिक स्तर पर यह 'राष्ट्रीय-भावना' स्वतंत्रता-संग्राम के रूप में व्यक्त हो रही थी। सन् १८८५ ई० में 'नेशनल कांग्रेस' की स्थापना इसी प्रकार का प्रयास था। कांग्रेस के अतिरिक्त राष्ट्रीय स्वातंत्र्य आन्दोलन को गति देने वाले और से बहुत तत्व थे जिसने तत्कालीन जनजीवन में नवचेतना का संचार किया था। सन् १६०४ ई० में पूर्वी जापान का पाश्चात्य रूस को पराजित करना ऐसी ही घटना थी जिसके परिणामस्वरूप भारतीय जनता के मन की कायरता आत्मविश्वास में परिणत हो गई थी। सन् १६०५ में बंगाल में स्वदेशी-आन्दोलनों का श्रीगणेश हो गया था। इसी प्रकार लोकमान्य तिलक एवं एनी बेसेन्ट के सहयोग से 'होमरूल आन्दोलन' का प्रचार हुआ।

<u>भारतीय राजनीति में गांधी का प्रवेश</u>— २० वीं शताब्दी में राजनैतिक संघर्ष को मोड़ देने वाला सबसे आवश्यक तत्व था भारतीय राजनीति में गांधी का प्रवेश। गांधी का प्रयास भी केवल राजनीति तक ही सीमित नहीं था। स्वतंत्रता को वह जीवन का आवश्यक तत्व मानते थे अत: एक ओर अहिंसात्मक आन्दोलन— सत्याग्रह और असहयोग— द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सन्नद्ध होते हैं वहां दूसरी ओर नैतिक उन्नति तथा आत्मशुद्धि के लिए सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि चारित्रिक गुणों

के ग्रहण पर भी बल दिया । उनकी दृष्टि सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति की ओर भी गई थी । सामाजिक क्षेत्र में अछूतोद्धार, मद्यनिषेध तथा आर्थिक क्षेत्र में ग्राम सुधार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, कुटीर उद्योग की उन्नति आदि उनकी कार्य योजनाएं थीं । महात्मागांधी द्वारा निरूपित इन राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, नैतिक उन्नति के विभिन्न कार्यक्रमों का प्रभाव तत्कालीन चेतना पर विशेष रूप से पड़ता है, सन् १९४७ ई० अर्थात् स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक चलता रहा है और अब तक किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

नवचेतना का स्वरूप—

उपर्युक्त विभिन्न सांस्कृतिक राष्ट्रीय आन्दोलनों, अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार, अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से यूरोप के नवीन-ज्ञान-विज्ञान से परिचय आदि अनेक ऐसे विघटनकारी तत्व थे जिसने १९ वीं शताब्दी के अन्तिम दशक, एवं २० वीं शताब्दी के भारतीय जनचेतना पर विशेष प्रभाव डाला है । इसके संघटित प्रभाव से उत्पन्न नवीन चेतना को हम मुख्यत: इन रूपों में समझ सकते हैं —

१. बुद्धिवाद—

१९ वीं शताब्दी के वैज्ञानिक उन्नति से जिस वैज्ञानिक अथवा तार्किक दृष्टि का विकास हुआ उसको बुद्धिवाद के नाम से अभिहित किया जाता है । भारत में इस प्रवृत्ति के विकास के मूल में पश्चिम के विज्ञान का प्रभाव है ही, किन्तु उन राष्ट्रीय सांस्कृतिक आन्दोलनों के प्रभाव को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है । रूढ़ परम्पराओं का त्याग तथा कल्याणकारी प्राचीन सत्यों की तार्किक दृष्टि से पुनर्स्थापना, असत्य का ज्ञान तथा सत्य की स्वीकृति के मूल में बुद्धिवादी दृष्टि ही है । धर्म क्षेत्र में बुद्धिवाद का प्रतिफलन ईश्वर की निरपेक्ष सत्ता में अविश्वास तथा धर्म के नाम पर प्रचलित अन्धविश्वासों तथा कर्मकाण्डों के खंडन के रूप में प्रकट होता है ।

२. मानवतावाद—

मानवतावाद समानता की भावना पर आधारित वह विचार -

धारा है जिसमें मानवमात्र में एक ही आत्मतत्व के अस्तित्व में विश्वास होने के कारण किसी प्रकार के भेदभाव को स्वीकार नहीं किया जाता है । यह मानवतावादी नवीन दृष्टि शताब्दियों से प्रचलित उस निरपेक्ष ईश्वरवाद का भी खंडन करता है जिसके समक्ष मनुष्य अत्यन्त नगण्य और दोषयुक्त है। मानवतावाद मनुष्य की सम्भावनाओं, उसकी तुच्छता में निहित उनकी महानता का दिग्दर्शन कराता है। मानवमात्र के सुख दुःख की सह-अनुभूति और मानवसेवा भी उतना ही महत्वशाली है जितना कि ईश्वर के दिव्य विभूति का आस्वादन। इतना ही नहीं मानवतावाद के प्रमुख प्रेरक नेता स्वामी विवेकानन्द तथा बंगाल के मानवतावादी कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस मानवसेवा को ईश्वरानुभूति से अधिक महत्व ही नहीं प्रदान किया प्रत्युत उसको ईश्वराधन का एक मार्ग भी स्वीकार किया है। `मानव में ईश्वर का दर्शन ही सच्चा ईश्वर दर्शन है`—यह विवेकानन्द का ही स्वर है।

समतापूर्ण दृष्टि के कारण नारी को रूढ़ परम्पराओं से मुक्त करके पुरुष के समकक्ष समानता के धरातल पर स्थापित करना भी मानवतावाद का ही एक रूप है। गांधी का अछूतोद्धार आन्दोलन इस मानवतावाद का ही एकरूप था जिसमें दलित वर्ग को भी मानवमात्र के रूप में स्वीकृति प्रदान की गई है।

३. आदर्शवाद—

२० वीं शताब्दी में विभिन्न राष्ट्रीय-सांस्कृतिक आंदोलनों ने जहां एक ओर गतानुगतिक रूढ़ आदर्शों का खंडन किया है वहां उसका रचनात्मक-पक्ष विभिन्न, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक एवं राष्ट्रीय आदर्शों के स्थापनाओं का भी रहा है। किसी भी राष्ट्र समाज और धर्म के नवनिर्माण के समय किसी `आदर्श` विशेष की अनुभूति अथवा उसकी स्थापना विशेष महत्व रखती है। २० वीं शताब्दी में जिस मानवतावाद की स्थापना की गई

थी वह भी `आदर्श मानवता` के रूप में व्यक्त होती है। इस आदर्शवादी दृष्टिकोण के विकास के मूल में सांस्कृतिक आन्दोलनों का योग रहा ही है किन्तु गांधी के विचारधारा ने इसे विशेष गति प्रदान की। व्यक्तिगत स्तर पर विभिन्न मानवी गुणों --सत्य, अहिंसा, सेवा, प्रेम, अपरिग्रह; सामाजिक स्तर पर मानवप्रेम, समाजसेवा; राष्ट्रीय स्तर पर देशप्रेम, देश के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना आदि विभिन्न तत्व तत्कालीन आदर्शवाद की रूपरेखा बनाते थे।

४. कर्मवाद--

सांस्कृतिक आन्दोलनों के विवेचन के समय इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि इनका उद्देश्य निवृत्ति के प्रति प्रवृत्ति का विद्रोह, वैराग्यवाद का निषेध और कर्मवाद की स्थापना भी था। संसार की नश्वरता तथा असारता में विश्वास करने के कारण शताब्दियों से भारतीय जनता में निष्क्रियतामूलक आत्मसन्तोष ने जन्म ले लिया था और कर्म के नाम पर धार्मिक पूजापाठ, व्रत, उपवास और टोना, टोटका का विशेष प्रचलन था। इन आन्दोलनों या सांस्कृतिक नायकों ने एक ओर उस समय की जनता को कर्म का सन्देश दिया, दूसरी ओर इन धार्मिक कृत्यों से देशसेवा, समाज सेवा तथा मानवसेवा को अधिक महत्व प्रदान किया। विवेकानन्द ने वेदान्त दर्शन की प्रवृत्तिमूलक व्याख्या की तथा तिलक ने अपने `गीतारहस्य` में कर्मवाद की स्थापना की। जीवन के विविध कर्मों को महत्त्व प्रदान करने की तत्कालीन मूल प्रवृत्ति का ही परिणाम है कि तिलक की टीका के साथ गीता को जितनी लोकप्रियता इस युग में मिली उतनी फिर कभी नहीं।

नवजागरण और हिन्दी साहित्य ---

इस नवजागरण से जनमानस में जिन नवीन तत्वों का संचार

होता है उसके प्रभावस्वरूप हिन्दी साहित्य में भी नवीन परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। इस नवीन साहित्यिक रूप को ही 'आधुनिक युग' के नाम से अभिहित किया गया है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारम्भ मोटे तौर पर सन् १८५० ई० से माना जाता है जबकि जनजीवन में उद्भुत होने वाली नवीन चेतना का स्वर साहित्य में भी फूट पड़ा था। गद्य का विकास इसी समय से होता है। इसके पूर्व ही सन् १८३७ में सर्वप्रथम लिथोग्रैफिक प्रेस की स्थापना होती है, जिसके पश्चात् ही अनेक प्रेस स्थापित होते हैं। गद्य के विकास से नवीन वैज्ञानिक विषयों पर साहित्य की रचना होती है। समाचार पत्रों का प्रकाशन भी इसी समय के लगभग से होता है। साहित्य के क्षेत्र में नवीन वैज्ञानिक साधन नवयुग के निर्माण में सहायक रहा है प्रेस के माध्यम से अन्य भाषाओं के साहित्य से भी सम्पर्क स्थापित होने के कारण हिन्दी में अनेक नवीन साहित्यिक-विधाओं का विकास होता है। सबसे प्रमुख बात यह है कि हिन्दी साहित्य सर्वप्रथम दरबारी संस्कृति के संकुचित सीमाओं से अपने को मुक्त करके जन-जीवन से सम्बन्ध स्थापित करता है। इस समय का साहित्य जनता का साहित्य है, उसमें जनता का स्वर बोलता है और अन्तिम दो दशकों में यह स्वर और भी प्रबल हो जाता है।

हिन्दी साहित्य में इस नवीनता के आदि प्रवर्तक भारतेन्दु को ही माना जाता है। भारतेन्दु ने जहां एक ओर प्राचीनता की रक्षा की है,[१] वहां दूसरी ओर साहित्य को नवीन विषय भी दिया है। इस एक व्यक्तित्व ने ही हिन्दी साहित्य को प्राचीन परम्पराओं से लेकर नवीन भाव-

---

१. जैसा कि पूर्ववर्ती अध्याय में विवेचन किया गया है कि भारतेन्दु के साहित्य में तथा उनके समसामयिक अन्य कवियों के साहित्य में मध्यकालीन परम्पराओं का पोषण भी हुआ है।

धारा तक पहुंचाया है। — "अपने सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो पद्माकर और द्विजदेव की परम्परा में दिखाई देते हैं दूसरी ओर बंगदेश के माइकेल तथा हेमचन्द्र की श्रेणी में। एक ओर वह राधाकृष्ण की भक्ति की नई भक्तमाल गूंथते दिखाई देते थे, दूसरी ओर मन्दिरों के अधिकारियों तथा टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हंसी उड़ाते और स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते हैं।"[1] भारतेन्दु के प्रयास से तत्कालीन अनेक समस्याओं--सामाजिक कुरीतियों, राजनैतिक परवशता, धार्मिक रूढ़ियों एवं तज्जनित दुरवस्था आदि--का चित्रण साहित्य में होने लगा था। डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के मतानुसार तत्कालीन साहित्य में जहां नव-जागरण के चिह्न प्रकट होने लगे ~~चिह्न दिखाई देने लगे~~ थे वहां इनका इन आन्दोलनों से विशेष सम्बन्ध नहीं है। "वे न दयानन्दी बन जाना चाहते थे और न क्रिस्तान। उनका मार्ग मध्यम मार्ग था, परम्परागत सनातन धर्म में देशकाल परिस्थिति के अनुसार आवश्यक सुधार प्रस्तुत करना उनका ध्येय था।..... भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीनिवासदास, श्री राधाकृष्णदास आदि के जो नारी-शिक्षा तथा विविध सुधारों से सम्बन्धित विचार थे, हिन्दी प्रदेश में प्रचलित पाश्चात्य शिक्षा आदि के फलस्वरूप स्वतंत्ररूप से उत्पन्न हुए थे और वे उनके अपने विचार थे।[2] यद्यपि इस युग के कवियों का इन आन्दोलनों से किसी प्रकार का गठबन्धन न रहा हो, किन्तु इतना तो सच है कि इसने उस समय जिस प्रकार के वातावरण की सृष्टि की थी उसका संश्लिष्ट प्रभाव उस समय की काव्य चेतना पर अवश्य पड़ा है। उस युग के कवि श्री नाथूराम -शम्पशंकर आर्यसमाजी थे। वस्तुत: १९ वीं शताब्दी में आविर्भूत होने वाले इन

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, ले० पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५१४

२. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० ५९९

नवोत्थान मूलक आन्दोलनों का प्रभाव २० वीं शताब्दी के साहित्य पर (जिसे द्विवेदीयुग कहा जाता है) विशेष रूप से प्रतिभासित होता है और इसका प्रभाव इतना गहरा है कि २० शताब्दी के दो-तीन दशकों के हिन्दी साहित्य की मूलचेतना ही इससे अनुप्राणित है।

नवीन चेतना के संदर्भ में पुराणकथाओं के प्रयोग की नवीन दिशा——

क. पौराणिक कथाओं पर आधारित काव्य रचनाओं की बहुलता—— हिन्दी काव्य में पुराण कथाओं के ग्रहण के विशिष्ट संदर्भ में नवजागरण सम्बन्धी विभिन्न तत्वों का प्रभाव मुख्यत: तीन रूपों में पड़ता है। एक ओर उसके प्रभावस्वरूप कथा की मूल अभिव्यक्ति में अन्तर उपस्थित होता है, दूसरी ओर कथा का स्वरूप ही परिवर्तित होता है। किन्तु एक बात उल्लेखनीय है कि हिन्दी काव्य में जहां इस नवजागरण के परिचायक विभिन्न विचार पद्धतियों ने भारतेन्दुयुगीन पौराणिकता का निषेध किया वहां दूसरी ओर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही पुराण कथाओं पर आधारित लघु तथा वृहद् प्रबन्धकाव्यों की रचना भी खूब होने लगी थी। कथा प्रसंगों के स्फुट वर्णनों से लेकर वृहद् प्रबन्धकाव्यों की बहुलता के बावजूद भी इस युग को पौराणिक काव्य सृजन का काल (भारतेन्दु युग) नहीं कहा जा सकता है —— इसके भी कारण हैं। वस्तुत: इन प्रयुक्त कथाओं की मूलचेतना धार्मिक नहीं है और पुराण कथाओं का वर्णन कवि का लक्ष्य न होकर, लक्ष्यपूर्ति का साधन है। पुराण कथाओं के प्रयोग की यह नवीन दिशा है। वस्तुत: कथाओं की मूल भावना तो तत्कालीन राष्ट्रीयता है। द्विवेदी युग के काव्य साहित्य में पौराणिक कथाओं के सन्निवेश का बहुत बड़ा कारण यह राष्ट्रीयता ही है। वस्तुत: पौराणिक कथाओं ने एक ओर अपनी दार्शनिकता और धार्मिकता के कारण जनमानस की श्रद्धा का संचयन किया है दूसरी ओर अपनी कथात्मकता के कारण मनोरंजन के रूप में शताब्दियों से जनमानस को अनुप्राणित करती रही हैं। अत: हिन्दू मस्तिष्क इन कथाओं के प्रति विशेष

निकटता की अनुभूति करता है। उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के नव-जागरण को कविता के धरातल पर अवतरित करते समय तत्कालीन कवियों ने पौराणिक उपाख्यानों (ऐतिहासिक उपकरणों के लिए भी ऐसा ही कहा जा सकता है) का सहारा लेकर उसे अधिक लोकग्राह्य बनाना चाहा। इसके अतिरिक्त पुराण तथा महाभारत जैसे ग्रन्थ हिन्दू संस्कृति के प्राचीन गौरव की आधारशिला भी हैं। अत: हिन्दी काव्य में इन चरित्रों तथा उनसे सम्बद्ध विभिन्न कथाओं की अवतारणा तत्कालीन राष्ट्रीयता की प्रेरक भी रही है जिसमें प्राचीन वीरत्व व्यंजक आदर्श चरित्रों का उदाहरण प्रस्तुत करके उस समय के कवियों ने राष्ट्रीय गौरव की भावना जागृत की है। वर्तमान पराभव के समय प्राचीन गौरव की पुनर्स्थापना अन्तप्रेरणा का बहुत बड़ा कारण होता है। एतदर्थ तत्कालीन कवियों ने पुराण तथा महाभारत के वीर चरित्रों का वर्णन करके स्वतंत्रता-संग्राम में जूझते देशभक्तों को बहुत बड़ी प्रेरणा प्रदान की है और आगे हम देखेंगे कि इस प्रवृत्ति ने पुराण कथाओं के स्वरूप तथा अभिव्यक्ति में भी कितना अन्तर उपस्थित कर दिया है।

हिन्दी काव्य में पुराणकथाओं के प्रयोगाधिक्य की दिशा में एक अन्य कारण हिन्दी काव्य क्षेत्र में 'नवजागरण' से सम्बद्ध है, जिसके सबसे बड़े उद्घोषक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी थे। यद्यपि (जैसाकि कहा गया है) आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु के प्रयास से इस नवीनता का समारम्भ हुआ था; किन्तु इस नवीनता का सम्बन्ध गद्य से अधिक था। भारतेन्दु युग का अधिकांश काव्य मध्ययुगीन क्षयशील विलासिता से उत्पन्न शृंगारिक वर्णनों से परिपूर्ण है। २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी काव्य में विषय तथा भाषा के परम्परागत रूप में जिस परिवर्तन का उद्घोष किया था उसका इस विवेचन की दृष्टि से विशेष महत्व है। उन्होंने भारतेन्दु युग के कवियों की परम्परावादी दृष्टि के विरुद्ध अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था- ' यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयों पर प्रबन्ध की कोई आवश्यकता है न स्वीकाओं की गतागत की पहेली बुझाने का।' उन्होंने सर्वप्रथम तत्कालीन कवियों को प्राचीन पुराण, महाभारत तथा महाकाव्य का आधार बनाकर काव्य

प्रणयन की प्रेरणा दी । काव्यगत नवीन विषयों की ओर संकेत करते हुए कहा था— "भारत में अनन्त आदर्श— नरेश, देशभक्त, वीर शिरोमणि और महात्मा हो गए हैं। हिन्दी के सुकवि यदि उन पर काव्य रचना करें तो बहुत लाभ हो । पलाशी का युद्ध, वृत्रसंहार, मेघनाद बध और यशवन्तराव महाकाव्य की बराबरी का एक भी काव्य हिन्दी में नहीं है । वर्तमान कवियों को इस तरह के काव्य लिखकर हिन्दी की श्रीवृद्धि करनी चाहिए ।"[१] नवीन विषयों की खोज में सन्नद्ध तत्कालीन कवियों ने पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण किया था ।

वस्तुत: द्विवेदी जी हिन्दी में भी मेघनादवध, वृत्रसंहार और पलाशी युद्ध जैसे काव्य रचनाओं की पूर्ति करना चाहते थे । इसके अतिरिक्त २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में काव्य के क्षेत्र में व्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली के प्रयोग का प्रारम्भ भी हुआ था—वह भी इस प्रकार के प्रबन्ध रचना का कारण था । भाषा अपने प्रारम्भिक रूप में किसी कथा का आधार ग्रहण करके अधिक सुगमता से चलसकती है । अत: भाषागत विवशता के कारण अथवा भाषा के परिमार्जन की दृष्टि से भी जिन प्रबन्ध काव्यों की रचना हुई——वे अधिकतर पौराणिक ही थे ।

इन विभिन्न कारणों के परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य में जिस प्रबन्ध काव्य रचना का समारम्भ हुआ उसके एक मात्र प्रेरक द्विवेदी जी ही थे और उसका प्रारम्भिक रूप 'सरस्वती' के प्रकाशन से सम्बद्ध है ।[२] इसके अतिरिक्त पौराणिक आख्यानकमूलक साहित्य प्रणयन के मूल में उसयुग के प्रसिद्ध चित्रकार रविवर्मा के पौराणिक चित्रों का विशेषयोगदान रहा है।

---

१. हिन्दी की वर्तमान अवस्था, सरस्वती, अक्टूबर १९११, पृ० ४७०

२. प्रकाशन का प्रारम्भ, सन् १९०० ई०

'सरस्वती' के प्रकाशन के समय से श्री श्री रवि वर्मा के चित्र प्रकाशित होने लगे थे और आगे चलकर श्री ब्रजभूषण राय चौधरी, वामापाद बन्दोपाध्याय एवं राजा वर्मा के चित्र भी प्रकाशित होने लगे थे। डा० श्यामसुन्दर दास के सम्पादकत्व में इन चित्रों के आधार पर छोटे छोटे आख्यानक कविताओं के प्रणयन का प्रारम्भ हो गया था। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती का सम्पादन भार ग्रहण करने के पश्चात्[१] इस परम्परा को पुन: आरम्भ किया। इन चित्रों के आधार पर छोटे छोटे वर्णनात्मक अथवा परिचयात्मक लघु-प्रबन्ध काव्य लिखने का प्रारम्भ वह स्वयं अपनी लेखनी से करते हैं। रम्भा,[२] उषास्वप्न,[३] गौरी,[४] गंगाभीष्म,[५] उनके द्वारा रचित पौराणिक कविताएं थीं। उनकी प्रेरणा से उस समय के अन्य कवि श्री नाथूराम शर्मा, श्रीदेवीप्रसाद पूर्ण, श्री मैथिलीशरण गुप्त तथा श्री कामताप्रसाद 'गुरु' ने भी इस प्रकार के चित्रों को आधार बनाकर कविता लिखना प्रारम्भ किया था। इनमें से मैथिलीशरण गुप्त ने, परिमाण की दृष्टि से, सबसे अधिक कविताएं लिखी हैं। उनके द्वारा वर्णित कथा प्रसंग महाभारत के इतिवृत्त से अधिक सम्बन्धित है। उत्तरा से अभिमन्यु की विदा,[६] अर्जुन और उर्वशी,[७] भीष्म प्रतिज्ञा,[८] द्रौपदी दुकूल,[९] राधाकृष्ण की आंख मिचौनी,[१०] व्यास स्तवन,[११]

---

१. समय सन् १९०४ ई०

२. कविता कलाप, पृ० ६९, प्रकाशन समय, १९२१ ई०

३. कविता कलाप, पृ० ७१

४. सरस्वती, मार्च, १९०६, पृ० १०३

५. कविता कलाप, पृ० ६६

६. सरस्वती, जनवरी, १९०८, पृ० ४४

७. वही, अप्रैल, १९०८, पृ० १५८

८. वही, जुलाई, १९०८, पृ० २८७

९. वही, फरवरी, १९०९, पृ० ६७

१०. कविता कलाप, पृ० ३९

११. सरस्वती, अक्टूबर, १९०८, पृ० ४६१

शकुन्तला का पत्रलेखन,[१] कुन्ती और कर्ण,[२] केशो की कथा,[३] उत्तरा का उत्ताप,[४] सीताजी का पृथ्वी प्रवेश,[५] कीचक की नीचकता,[६] अर्जुन और सुभद्रा,[७] अशोकवनवासिनी सीता,[८] रुक्मांगद और मोहिनी,[९] रामचन्द्र जी का गंगावतरण,[१०] रणनिमंत्रण[११] आदि उनके द्वारा रचित आख्यानक काव्य हैं। रायदेवीप्रसाद पूर्ण ने वामन,[१२] राम का धनुर्विद्याशिक्षण,[१३] जैसे आख्यानक काव्यों की रचना की है। श्री कामताप्रसाद द्वारा वर्णित पौराणिक प्रसंग परशुराम[१४] है।

चित्रों के आधार पर छोटे-छोटे कथाकाव्य लिखने की प्रथा उस समय इतनी प्रचलित हो गई थी कि उस समय के अन्य पत्रिकाओं इन्दु,मर्यादा ने भी इसका अनुसरण किया।

इतना ही नहीं बाद में प्रकाशित होने वाली पत्रिका चांद में भी इस प्रकार की रचनाएं प्रकाशित होने लगी थीं। श्री शोभाराम जी धेनु-सेवक की विधुरा शकुन्तला[१५] प्रो० 'नयन' का मुरलीमनोहर,[१६] श्री रामचरित

---

१. सरस्वती, नवम्बर, १९०८, पृ० ४६१
२. कविता कलाप, पृ० ७२
३. सरस्वती, दिसम्बर १९०८, पृ० ५४८
४. वही, सितम्बर, १९०९ ई०
५. वही, ,, , पृ० ४१३
६. वही, फरवरी, सन् १९०९, पृ० ११८
७. वही, मार्च, १९०८ ई०, पृ० ११६
८. कविता कलाप, पृ० ३२
९. वही, पृ० ४०
१०. वही, पृ० ६४
११. वही, पृ० ५४
१२. वही, पृ० ४
१३. सरस्वती, अक्टूबर, १९०८, पृ० ४३२। १४. वही, नवम्बर, पृ० ४६७
१५. चांद, मार्च सन् १९२८, पृ० ५४५। १६. चांद, १९२६, पृ० ६३२

उपाध्याय का `शकुन्तला पत्र लेखन[१] आदि चांद में ही प्रकाशित आख्यानक कविताएं हैं। श्री भगवानदीन `दीन` के काव्य संग्रह ` नदी में दीन`[२] में भी चित्रों पर आधारित पौराणिक आख्यानक काव्य संगृहीत हैं।

चित्रों पर आधारित इन कथाकाव्यों के अतिरिक्त स्वतंत्ररूप से भी लघुकथाओं के काव्य सृजन की प्रवृत्ति प्राप्त होती है। सरस्वती, मर्यादा तथा इन्दु के अतिरिक्त `चांद` एवं `माधुरी` में भी इस प्रकार के आख्यानक-काव्य प्रकाशित होते थे। श्री नाथूराम शर्मा का `रामलीला`,[३] श्री गिरिधर शर्मा की ` राजकुमारी सावित्री`[४] च्यवन पत्नी सुकन्या,[५] देवशरण शर्मा काव्यतीर्थ का धृतराष्ट्र का खेद,[६] महन्त लक्ष्मण दास की विदुषी-सुमित्रा,[७] श्री मैथिलीशरण गुप्त का आत्मोत्सर्ग,[८] सुलोचना का चितारोहण,[९] प्रह्लाद,[१०] श्री रामनरेश त्रिपाठी का श्री राम,[११] श्री शोभाराम धेनुसेवक का शैव्या का विलाप[१२] तथा श्री सीताहरण,[१३] श्री कामताप्रसाद

---

१. चांद, मई, १९२८, पृ० ८३-८५
२. प्रकाशन समय, सन् १९२६ ई०
३. सरस्वती, नवम्बर, सन् १९०७ ई०
४. वही, जून, १९०८ ई०
५. वही, जुलाई, १९११ ई०
६. मर्यादा, फरवरी, १९१३ ई०
७. वही, ,, , १९१३ ई०
८. सरस्वती, सितम्बर, १९०९ ई०
९. वही, अप्रैल, १९११ ई०
१०. वही, जनवरी, १९११ ई०
११. वही, अक्टूबर, १९१७ ई०
१२. वही, जनवरी, १९२० ई०
१३. चांद, जुलाई, १९२४ ई०

`गुरु` का सागर मंथन,[१] श्री शम्भुदयाल जी सक्सेना का दमयन्ती विलाप,[२] `स्नेही` जी का दुर्योधन विलाप[३] आदि इसी प्रकार की पौराणिक रचनाएं हैं। श्री जयशंकरप्रसाद के चित्राधार[४] में संगृहीत पद्यकथाएं-अयोध्याउद्धार, वनमिलन आदि-पौराणिक आख्यानकों को लेकर चलने वाली कविताएं हैं।

इस प्रकार के लघु कथाओं से प्रारम्भ करके आगे के युगों में पौराणिक खंडकाव्य तथा महाकाव्य जैसे वृहद् प्रबन्धकाव्यों की रचना होती है जिसके लिए ये लघु पौराणिक आख्यानक-काव्य भूमिका स्वरूप हैं। इस युग में प्रकाशित मिश्रबन्धु का लवकुश चरित्र, श्री सत्यनारायण `कविरत्न` का अधूरा ग्रंथ `भ्रमरगीत` तथा श्री रामचरित उपाध्याय का `रामचरित-चिन्तामणि` है जिसको पुराण कथाओं के प्रयोग की दिशा में नवीनता की प्रारम्भिक भूमिका कह सकते हैं।

ख. कथाओं की अभिव्यक्ति के नूतन तत्व —

युगों से धार्मिक भावना की वाहक ये पौराणिक कथाएं सर्वप्रथम धर्म के परम्परागत रूप से मुक्त होकर युगानुकूल कर्म की वाहक बनी थीं। अत: इन कथाओं की मूल अभिव्यक्ति में ही अन्तर उपस्थित होता है जिसके मूल में उस युग की वह चेतना है जिसका विवेचन विभिन्न सांस्कृतिक-राष्ट्रीय आन्दोलनों की पृष्ठभूमि के रूप में किया गया है। वैज्ञानिक दृष्टि से विकसित विवेचन बुद्धि तथा उपर्युक्त आन्दोलनों ने इन प्रयुक्त पौराणिक कथाओं के आकार-प्रकार को किस प्रकार परिवर्तित किया इस पर बाद में विवे-

---

१. माधुरी, नवम्बर, १९२७ ई०

२. चांद, जुलाई, १९२४ ई०

३. सुधा, अगस्त, १९२७ ई०

४. प्रकाशन समय सन् १९२८ ई०

चन होगा, किन्तु राष्ट्रीयता अथवा सामाजिकता की भावना ने कथाओं के मूल उद्देश्य में किस प्रकार अन्तर उपस्थित किया है इस पर दृष्टिपात कर लेना समीचीन होगा। इन प्रयुक्त पुराणकथाओं का रूप चाहे जो भी रहा है, किन्तु राष्ट्रप्रेम , समाजकल्याण, नैतिक आध्यात्मिक शिक्षा आदि अनेक ऐसे पुराणेत्तर तत्व उनके साथ सम्बद्ध होकर व्यक्त होते हैं। इस परिवर्तित होती हुई दृष्टि के उदाहरण के लिए `मर्यादा` में प्रकाशित इन पंक्तियों को प्रस्तुत किया जा सकता है जिसमें ईश्वर प्रेम के स्थान पर राष्ट्रप्रेम की प्रतिष्ठा अथवा भगवद्भक्त के स्थान पर राष्ट्र-भक्त की श्रेष्ठता स्थापित की गई है —

" भगवद्भक्तों की बड़ाई चाहे जितनी भी की जाए वह देशभक्तों की योग्यता कदापि नहीं प्राप्त कर सकते हैं। भगवद्भक्त अपने देशबन्धुओं को सदुपदेश करते हैं, उन्हें सदाचार से रहने के लिए जप-तप करते हैं और ईश्वर भक्ति के द्वारा अपने देह का उद्धार करने के लिए उपदेश देते हैं।××× परन्तु वे इष्टदेव से अपने देशबन्धुओं को, आपही मिला नहीं देते हैं । वह केवल ईशभक्ति का मार्ग अंगुली से दिखा देते हैं, पर इससे अधिक वह कुछ नहीं करते।×××××× किन्तु देशभक्तों की बात इससे भिन्न है। ××× राष्ट्रदेव की अनन्य भाव से सक्रिय सेवा करके देह की मुक्ति अर्थात् स्वतंत्रता की प्राप्ति कर लीजिए ऐसा सर्वांग सुन्दर उपदेश देशभक्त अपने बन्धुओं को देकर चुप नहीं बैठते वरन् इस उपदेश का अतिक्रमण करके अपने धैर्यहीन, शीलहीन बन्धुओं के लिए लड़कर उनकी देहमुक्ति (स्वतंत्रता की) अपने पराक्रम से करा देते हैं।× × ××× आजतक ऐसा एक भी भगवद्भक्त नहीं हुआ जिसने अपनी भक्ति के जोर से अपने सर्वराष्ट्र को मोक्ष पद की प्राप्ति कराई हो। किन्तु आजतक इस भूतल पर ऐसे सैकड़ों देशभक्त उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने अपनी आयु में अपने स्वदेश के बन्धुओं के पैरों की दास्यवृत्ति की बेड़ियों को अपने पराक्रम और धैर्य से तोड़कर उनके बदले स्वतंत्रता के तोड़े उनको पहिनाये हैं।"[१]

---

१. मर्यादा, अप्रैल, १९११, सम्पादकीय लेख, सं०, पृ० २२२

उपरोक्त पंक्तियां उन बदलती हुई मान्यताओं की स्पष्ट उदाहरण हैं जिनके अनुसार परम्परागत धर्म के स्थान पर युगानुकूल कर्म ने अधिकार जमा लिया था। उस समय का कर्म था समष्टिगत कल्याण के लिए `स्व` का समर्पण और उस समय का समष्टि था `देश` और `समाज`।

इस प्रकार की भावधारा के मूल में विवेकानन्द की प्रतिस्थापनाएं रवीन्द्रनाथ का विश्ववाद, गांधी की सेवावृत्ति, और इन समस्त भावधाराओं के ऊपर प्रवहमान एक मुख्य धारा राष्ट्रीयता की भी हैजिसने सबको आप्लावित किया था, अपने अन्तर्गत सबको समाहित कर लिया था।

इस युग में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में होती है ---कहीं राष्ट्रीय उद्बोध के रूप में जहां राष्ट्रीय जागरण का प्रत्यक्ष संदेश दिया गया है। कहीं अप्रत्यक्ष रूप में प्राचीन गौरव का गान तथा देश की तत्कालीन हीनावस्था की ओर संकेत किया गया है तथा कहीं प्राचीन आदर्श चरित्रों की अवतारणा के द्वारा देशप्रेम, समाजसेवा, और चारित्रिक उन्नयन की प्रेरणा दी गई है। इन विभिन्न रूपों के अन्तर्गत पौराणिक उपकरणों (कथा तथा चरित्र) का प्रयोग होता रहा है।

जहां राष्ट्रीय भावधारा की अभिव्यक्ति पौराणिक तत्वों के माध्यम से हुई है उसका एक रूप विनय सम्बन्धी उन पदों में मिलता है, जहां देवी-देवताओं की वन्दना में भारत की दशा सुधारने की प्रार्थना की गई है। ये काव्य रचनाएं उस मूल भावना के परिवर्तन की ओर संकेत करती हैं, जिसके अनुसार धर्म की एकान्तिक अनुभूति ने किस प्रकार सामाजिकता का रूप ग्रहण कर लिया और व्यक्तिगत मुक्ति के स्थान पर देश मुक्ति को (अर्थात् राष्ट्रीय भावना) अधिक श्रेयस्कर समझा गया। इस प्रवृत्ति का प्रारम्भ भारतेन्दु के उत्तरकालीन काव्य रचनाओं से होता है जबकि व्यक्तिगत मुक्ति के स्थान पर वे देश-मुक्ति की प्रार्थना करते हैं। इस दृष्टि से उनकी `प्रबोधिनी` नामक कविता उल्लेखनीय है जिसमें कवि कृष्ण के प्रात: जागरण की प्रार्थना करता है और

यह जागरण देश के उद्धार के लिए है —

डूबत भारत नाथ वेगि जागो अब जागो ।
आलस दव एहि दहन हेतु चहुं दिसि से लागो ।[1]

< < < <

जागो हो बलिगई विलंब न तनिक लगावहु
चक्र सुदरसन हाथ धारि रिपु मारि गिरावहु ।[2]

इस प्रकार के जागरण के गीत उस समय के अनेक कवियों ने गाया है। श्री राधाकृष्ण दास ने 'विनय' नामक कविता में तत्कालीन दुरवस्था की ओर (हीनावस्था) संकेत करते हुए देशमुक्ति की प्रार्थना की है—

प्रभु हो पुनि भूतल अवतरिए ।
अपुने या प्यारे भारत को पुनि दुख दारिद हरिए ।।
धरम गिलानि होति जबही तब तब तुम वपु धारत ।
दुष्टन हरि साधुन निर्भय करि तबही धरम उबारत ।।
महा अविद्या राक्षस ने या देसहि बहुत सतायो ।
साहस पुरुषारथ, उद्यम धन, सबही निर्धन गवांयो ।।[3]

इसी प्रकार प्राचीन महापुरुषों पौराणिक नायकों, राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, भीष्म पितामह के अद्भुत शौर्य साहस और सच्चाई का स्मरण उस समय के पराधीन भारत के लिए विशेष अर्थ रखता है —

---

१. प्रबोधिनी पद, २७, भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ६८३
२. वही, पद २४, भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ६८५
३. राधाकृष्ण ग्रन्थावली, पृ० ६१

कहं गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर ।
चन्द्रगुप्त चाणाक्य कहां नास करिकै थिर । [१]

< < < <

अवधेश धनुर्धर राम नहीं, ब्रजनायक श्री घनश्याम नहीं.
अबकौन पुकार सुने इसकी, परमाकुल गैल गहे किसकी । [२]

ग. कथा का परिवर्तित स्वरूप—

विज्ञान-समुद्भूत बौद्धिकता एवं १६ वीं शताब्दी की विभिन्न परिस्थितियों तथा तज्जनित विचार पद्धतियों के प्रभावस्वरूप पुराण कथाओं की नवीन तार्किक व्याख्या, अलौकिकता—चमत्कारिकता का ह्रास तथा कथा के साथ अनेक पुराणेतर सामयिक तत्वों का समावेश कथा के परिवर्तित स्वरूप का परिचायक है । जैसा कि पहले संकेत किया गया है कि १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ की 'सामयिकता' तत्कालीन परिस्थितियों एवं नवजागरण मूलक सांस्कृतिक राष्ट्रीय आन्दोलनों से सम्बद्ध है । अत: तदनुरूप एक ओर उस समय की राजनैतिक परवशता, आर्थिक विषमता, धार्मिक तथा सामाजिक दुरवस्था के अनेक चित्र पुराणकथाओं के माध्यम से व्यक्त होने लगे थे, दूसरी ओर नवजागरण मूलक आन्दोलनों की विविध कार्य प्रणालियों— स्त्री शिक्षा, समानता की भावना , प्राचीन कुरीतियों का खण्डन, देश प्रेम की भावना, विदेशी शासन की निन्दा, प्राचीन गौरव का स्मरण, वर्तमान दुर्व्यवस्था की ओर संकेत तथा विदेशी शासन से संघर्ष की विभिन्न घटनाएं आदि-का ग्रहण भी पुराण कथाओं के साथ होने लगा था । वस्तुत: जैसा कि हम आगे देखेंगे कि पुराणों से भिन्न ये सामयिक तत्व इतने प्रमुख हो जाते हैं कि इन कथाओं का पुराणों से नाममात्र का सम्बन्ध रह जाता है ।

पौराणिक कथाओं की नवीन व्याख्या की दृष्टि से एक ओर ऐसे कवि हैं जिनने उन प्राचीन कथाओं का तर्क के आलोक में परीक्षण करके

१- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र: भारतेन्दुग्रन्थावली पृ० १६   २- शंकर: शंकर सर्वस्व पृ० ६१

पुनर्स्थापित किया है, किन्तु कुछ कवि ऐसे भी हुए हैं जो इन असंगतियों को स्पष्टत: उभार कर सामने रख देते हैं। प्रथम रूप का विकास इन प्रारंभिक रचनाओं में प्राप्त होता है, द्वितीय का विशेष विकास आगे के युगों में हुआ है।

प्रथम प्रयास के रूप में हम मिश्रबन्धु के `लवकुश चरित्र`[१] को प्रस्तुत कर सकते हैं जिसमें कवि ने रामायण के कुछ प्रसंगों की नवीन व्याख्या प्रस्तुत करके औचित्य की स्थापना की है। अपनी उद्भावना के सम्बन्ध में कवि ने स्वयं ही निर्देश किया है ---` जहां हमें किसी बात में मानुषीय प्रकृति का विरोध जान पड़ता है वहां हमने `वर्तमान पुस्तकों' के मत पर न चलकर जो योग्य और उस प्रकृति के अनुसार ज्ञात हुआ है लिखा है।`

सीता निर्वासन के समय कवि ने लक्ष्मण के मुख से सीता परित्याग की बात नहीं कहलाई है वरन् उद्भावना करता है कि लक्ष्मण का विषण्ण मुख देख कर स्वयं सीता ही पूछती हैं कि क्या बात है? राम ने उन्हें त्याग दिया है? लक्ष्मण का निरुत्तर रहना ही सीता से सब बात कह जाता है।[२] इसी प्रकार लक्ष्मण द्वारा सीता को एकान्त बन में छोड़ जाने की घटना भी अनुचित प्रतीत होती है, अत: कवि ने नवीन प्रसंग-योजना की है कि वाल्मीकि ऋषि को सीता की ओर आते देखकर लक्ष्मण आश्वस्त होकर सीता को छोड़ते हैं। सीता जैसी पतिपरायणा के द्वारा अपने ही पति से पुत्रों को युद्ध करने की अनुमति देने के कृत्य को भी कवि नवीन रूप से स्थापित करता है---सीता राम की अपराजेयता को समझती थी, दूसरी ओर वह यह भी चाहती थी कि उनके पुत्र संसार में कायर न कहे जाएं।[३] कवि तीसरा कारण

---

१. समय सम्वत् १९५६ वि०

२. लवकुश चरित्र, पृ० १५

३. सुन सुत गिरा वीररस सानी। गुणान भई मन में सियरानी।
 पुनि है विदित बौंश दोउ भाई। कादरता नहीं किए भलाई।
 ---लवकुश चरित्र, पृ० ५१

भी प्रस्तुत करता है कि सीता के मन में यह आशा भी थी कि उनके पुत्रों को विकराल समर करते देख कर शायद राम उन्हें पहचान लें ।

पौराणिक कथाओं के ~~आधुनिक-सांचे में ढालने~~ आधुनिकीकरण के प्रारम्भिक प्रयास के रूप में विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित वे लघु कथा-काव्य भी हैं जो चित्रों के आधार पर तथा स्वतंत्र रूप में लिखी गई हैं । चित्र के आधार पर लिखित आख्यानक काव्यों में चित्र के सम्पूर्ण पक्षों का वर्णन मात्र होता है । ये पौराणिक चित्र भी प्राय: दो प्रकार के होते थे । पहला किसी पौराणिक देवी-देवता का चित्र, दूसरा किसी पौराणिक घटना-प्रसंग का चित्रण । केवल देवी-देवता से सम्बन्धित चित्रों के काव्यात्मक वर्णन के समय उनके सौन्दर्य अथवा चरित्र पर प्रकाश डाला गया है यथा `परशुराम` के चित्र पर आधारित श्री कामताप्रसाद `गुरु` की कविता में पहले परशुराम की मुद्रा पुन: उनके चरित्र का वर्णन है । श्री मैथिलीशरण गुप्त ने `कृष्ण की आंख मिचौनी` में राधा के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य का वर्णन किया है।किन्तु किसी पौराणिक घटना से सम्बन्धित चित्रों पर आधारित कविताओं में कथात्मक अंश भी प्राप्त है।यद्यपि इस प्रकार के चित्रों से सम्बन्धित कथा प्रसंगों का स्वरूप परम्परागत तथा इतिवृत्तात्मक है तथा चित्र के सीमित फलक के कारण कथा वर्णन में पूर्णता भी नहीं है,किन्तु तत्कालीन नवजागरण से सम्बद्ध (देश के प्राचीन गौरव की पुनर्स्थापना तथा साहित्य में नवीन विषय और शैली के समारम्भ के रूप में) होने के कारण इस प्रकार का प्रयास `नवीन-प्रसंग` की प्रारम्भिक भूमिका है । पं० महावीर-प्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा ग्रहण करके इस प्रकार की रचनाएं करने वाले इन कवियों (श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय) ने ही आगे चलकर प्रौढ़ पौराणिक प्रबन्ध-काव्यों की रचना की है ।

यदि कथा वर्णन की दृष्टि से देखा जाए तो श्री मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में कथात्मक विस्तार और पूर्णता अधिक है । इसके अतिरिक्त पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के गंगा-भीष्म, उषास्वप्न, राय देवीप्रसाद के पूर्ण वामन, पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय के `रुक्मिणी सन्देश ,

श्री किशोरीलाल गोस्वामी के गंगावतरण आदि आख्यानक काव्यों में भी कथात्मक अंश अपेक्षाकृत अधिक और पूर्ण हैं। इनके कथा का रूप स्थूल तथा वर्णनात्मक है पर कथा के साथ ही (कहीं प्रसंगों की व्याख्या के रूप में तथा कहीं अन्तिम निष्कर्ष के रूप में) नैतिक-चारित्रिक शिक्षा, देश-प्रेम का सन्देश, आदि सामयिक तत्वों को भी संयुक्त किया गया है। यथा: किशोरीलाल गोस्वामी के गंगावतरण में गंगा के आविर्भाव का वर्णन पूर्णत: पुराणानुसार है किन्तु कवि उस कथा का पर्यवसान तत्कालीन राष्ट्रीय भावना के रूप में करता है। प्राचीन गौरव का वर्णन करके (प्राचीन विभूतियों के विभिन्न आदर्श कृत्यों के पुनर्स्मरण के रूप में) कवि समकालीन भारत की हीनावस्था की ओर संकेत करता है —

> रहे न अब राजर्षि भगीरथ राम न राजा।
> नहिं ब्रह्मर्षि जह्नु कुल गुरु वशिष्ट महाराजा।।
> त्रैता द्वापर बीति अमल कलजुग को आयो।
> हाय! पराधीनता पाश भारतहि बंधायो।
> विचरे जहं ब्रह्मर्षि कोटि राजर्षि राजगन।
> वह भारत पददलित भयो म्लेच्छन के धनधन।।[१]

और कवि भगवान् से भारत को तत्कालीन हीनावस्था से मुक्त करने की प्रार्थना भी करता है —

> कब लैहैं अवतार कल्कि भगवान बतावहु?
> छोटि आपनी नींद मात! गंगे इत आवहु।।
> कुल बल के कल करि भारत जाग्र बेगि जगावहु।
> समल अमल करि हृदय निजल तिनहु समझावहु
> धन बल विद्या विनय नीति वाणिज्य शिल्पवहु
> सीखहिं भारतवासी जन जानहिं निजत्व वहु।[२]

---

१. गंगावतरण, किशोरीलाल गोस्वामी, सरस्वती, मई-जून, १६०२ ई०,पृ०१५८

२. वही

विविध पौराणिक (ऐतिहासिक भी) कथा-प्रसंगों अथवा पात्रों के विभिन्न कृत्यों का अभिधात्मक शैली में वर्णन करके उसका पर्यवसान तत्कालीन परिस्थिति के संकेत, नैतिक-चारित्रिक शिक्षा और आत्म-गौरव की भावना के उद्घोष के रूप में — करने की सामान्य प्रवृत्ति उस युग में प्राप्त होती है। वस्तुत: ये सामयिक तत्व ही उन कथाओं की मूल भावना है जिसके लिए कथा तथा चरित्र-वर्णन पृष्ठभूमि का कार्य करता है।

पुराण-कथा अथवा प्रसंगों की नवीन सामयिक व्याख्या के रूप में श्रीरामचरित उपाध्याय के 'रावण की विचार सभा'[१] को प्रस्तुत किया जा सकता है। यहां कथा नहीं कथा का एक अति लघु-प्रसंग का वर्णन है। लंकादहन के पश्चात् रावण अपनी राज्य सभा में राम को पराजित करने के कारणों एवं उपायों पर विचार-विमर्श कर रहा है। राम का पक्ष ग्रहण करने के कारण रावण द्वारा अपमानित होकर विभीषण राम से मिल जाता है। तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में कवि इस प्रसंग की नवीन व्याख्या करके भारत में परिव्याप्त पारस्परिक वैमनस्य की ओर संकेत करता है —

जो आपस की फूट का फल वह मिलने लगा—
लंकेश्वर को, राम का मनोनुकूल खिलने लगा।[२]

दो प्रमुख रचनाएं—

१. <u>भ्रमरदूत</u>[३]— यह रचना श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत प्रकरण के आधार पर विकसित हिन्दी के भ्रमरगीत काव्य-परम्परा के अन्तर्गत नवीन

---

१. रावण की विचार सभा, रामचरित उपाध्याय, सरस्वती, अक्टू०१९१४
२. वही, पृ० ५६७
३. ~~वही, पृ० ५६७~~, अक्टू० १९२१ ई०

प्रयोगों की श्रेणी में आती है । इसमें कृष्ण के मथुरागमन के पश्चात् यशोदा के दु:ख का वर्णन किया गया है । ब्रज की गोपियों के सदृश ही मां यशोदा प्रकृति की सुषमा को देखकर कृष्ण की स्मृति में अत्यन्त विह्वल हो उठती हैं ।[१] किन्तु यहां दूत कृष्ण की ओर से नहीं भेजा गया है (उद्धव के रूप में) वरन् दुखित यशोदा ही 'भ्रमर' को (भ्रमर तथा कृष्ण के रूप तथा गुण में साम्य होने के कारण) दूत बनाकर कृष्ण के पास भेजती हैं ---

तेरो तन घनश्याम श्याम घनश्याम उतै सुनि ।
तेरी गुंजन सुरलि मधुप, उन मुरलि धुनि ।
पीत रेख तव कटि बसत, उत पीताम्बर चारु ।
बिपिन बिहारी दोऊ लसत, एक रूप सिंगारु
जुगल रस के बसा ।

याही कारन निज प्यारे ढिंग तोहि पठाऊं ।
कहियो वासों बिथा सबै जो अबै सुनाऊं ।[२]

प्रसंगों की नवीन अभिव्यंजना---

'भ्रमरदूत' के प्रणयन के मूल में कवि का उद्देश्य न धार्मिक है और न रीतिकालीन कवियों के सदृश गोपी विरह वर्णन के बहाने (यहां गोपियों का विरह भी नहीं वर्णित है) काव्य चमत्कार का प्रदर्शन ही। वस्तुत: तत्कालीन भावधारा के अनुसार 'देश प्रेम' की अभिव्यंजना के लिए कवि ने परम्परागत कथा के साथ अनेक सामयिक तत्वों की संयोजना की है ।

---

१. लखि यह सुखमा जाल-निज बिन नंदरानी ।
हरि सुधि उमड़ी घुमड़ी तन उर अति अकुलानी ।
---भ्रमरदूत, हृदय तरंग, पृ० १०३

२. भ्रमर दूत, हृदय तरंग, पृ० १०३

कृष्ण के व्रजभूमि को त्यागकर मथुरागमन को कवि स्वदेश-त्याग अथवा जन्म-भूमि के त्याग के रूप में देखता है —

जननी जन्मभूमि सुनियत स्वर्गहु सों प्यारी ।
सो तजि सब्री मोह सांवरे तुमनि बिसारी ।
का तुम्हरी गति मति भई जो ऐसो बरताव
किधों नीति बदली गई ताको पर्यो प्रभाव
—कुटिल विष को भर्यो ।[1]

कृष्ण विहीन व्रज की दुरवस्था के वर्णन के बहाने तत्कालीन विदेशी शासनाधीन भारतवर्ष की दशा का चित्रण किया गया है । कृष्ण की अनुपस्थिति में व्रज की गायें भी दु:खी हैं किन्तु यहां कवि ने इस दु:ख के माध्यम से `गोरक्षा` की आधुनिक समस्या की ओर संकेत किया है —

बछनहीन ये दीन गऊ दुख सों दिन वितावत ।
दरस-लालसा लगी चकित-चित इत उत चितवत
एक संग तिनको तजत, अलि कछियो ए लाल ।
क्यों न होय निज तुम लजत जग कहाय गोपाल ।
— मोह ऐसो तज्यो ।[2]

इसी तरह नारी अशिक्षा,[3] विज्ञान के बढ़ते प्रभाव से उत्पन्न गांवों की दुर्दशा,[4]

---

१. भ्रमरदूत, हृदयतरंग, पृ० १०३
२. वही, पृ० १०५
३. नारी-शिक्षा निदारत जे लोग अनारी ।
   ते स्वदेश-अवनति प्रचंड-पातक अधिकारी ।
      निरखि हाल मेरो प्रथम लेउ समुझि सब कोइ ।
       विद्या बल लहि मति परम अबला सबला होइ
                                   — लखो अजमाइ के), पृ० १०२
४. भ्रमरदूत, हृदयतरंग, पद १६, पृ० १०७

देश में परिव्याप्त पारस्परिक फूट और वैमनस्य का भाव,[1] अंग्रेजों द्वारा उत्पन्न काले-गोरे का भेदभाव,[2] प्रवासी भारतवासियों के प्रति अंग्रेजों का अत्याचार आदि[२क] अनेक सामयिक तत्व हैं जिसकी अभिव्यक्ति प्राचीन कथा के माध्यम से हुई है ।

२. रामचरित-चिन्तामणि[3]—

कथा का स्वरूप—

कथा का आधार वाल्मीकि रामायण है । कवि वाल्मीकि रामायण के सदृश ही अयोध्यानगरी वर्णन से ग्रंथ का प्रारम्भ करके अनेक प्रसंगों का विस्तार रामायण के अनुकरण पर करता है —

१. वाल्मीकि रामायण में पुत्र प्राप्ति के लिए दशरथ द्वारा किए गए अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है ।[4] मानस में पुत्रेष्टि यज्ञ कराया गया है ।[5] रामचरित चिन्तामणि में भी अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है ।[6]

---

१. भये संकुचित हृदय भीरु अब ऐसे भय में
कोउ को विश्वास न निज-जातीय उदय में ।
लखपत कोउ रीति न भली, नहि पूर्व अनुराग ।
अपनी अपनी ढापुली अपनो अपनो राग ।
— अलापै जोर सों । भ्रमरदूत, हृदयतरंग, पृ० १०६

२. गोरी कों गोरे लागत जग अति ही प्यारे
मों कारो कों कारे तुम नयनतु के तारे । वही, पृ० १०७

२क. ज तजि मातृभूमि सों ममता, होत प्रवासी
तिन्हें विदेशी तंग करत हैं विपदा त्रासी । वही, पृ० १०८

३. रामचरित मानस चिन्तामणि : रामचरित उपाध्याय, प्रका० समय,१६२०ई०

४. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, अध्याय ८

५. रामचरित मानस, बालकाण्ड, ६ ठां विश्राम

६. रामचरित चिन्तामणि, सर्ग १, पृ० ८-६

२. विश्वामित्र द्वारा दशरथ से राम लक्ष्मण को मांगने पर रामचरितचिन्तामणि में वाल्मीकि रामायण के सदृश[१] पहले दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं और बाद में विश्वामित्र के क्रोध से भयभीत होकर उन्हें दे देते हैं। मानस में दशरथ यद्यपि दुःखी हैं किन्तु ~~विश्वामित्र के क्रोध से भयभीत होकर उन्हें दे देते हैं मानस में~~ विश्वामित्र के समझाने पर वे सहर्ष तैयार हो जाते हैं।[२]

३. वाल्मीकि रामायण की ही भांति[३] यहां भी सीताराम को धमकी देती हैं कि यदि राम उनको अपने साथ वन नहीं ले जाएंगे तो वह विषपान कर लेंगी।[४] मानस में ऐसा नहीं है।

४. रामायण[५] के अनुकरण पर यहां[६] भी अशोकवन स्थित सीता वृक्ष की डाल में वेणी उलझाकर आत्महत्या करने को उद्यत होती हैं कि सहसा हनुमान वहां प्रकट हो जाते हैं।

५. रावण के मृत्यु प्रसंग का वर्णन भी वाल्मीकि रामायण की तरह है।[७] यहां भी पारस्परिक युद्ध में राम के ब्रह्मास्त्र से रावण की मृत्यु होती है।

---

१. रामायण बालकाण्ड, अ० २०।२८-३०

२. मानस बालकाण्ड, ६ ठां विश्राम

३. रामायण अयोध्याकाण्ड ३१।१-७८

४. रामचरित चिन्तामणि, सर्ग ६, पृ० ७६

५. रामायण, सुन्दर काण्ड, २८।१७-१८

६. रामचरित चिन्तामणि, पृ० २१७

७. रामायण, युद्धकाण्ड, १०५।१५

६. रामायण[1] की तरह यहां[2] भी राम सीता के प्रति अविश्वास-पूर्ण कटु शब्दों का प्रयोग करते हैं जिससे दुखित होकर सीता अपनी अग्नि परीक्षा देती हैं। मानस में भी अग्नि परीक्षा वर्णित है किन्तु तुलसी ने राम की क्रूरता का वर्णन नहीं किया है।

७. उत्तर काण्ड के विविध प्रसंगों का वर्णन भी — सीता-परित्याग, लवकुश जन्म, अश्वमेध यज्ञ के समय लवकुश द्वारा रामायण का गायन, राम का अपने पुत्रों को पहचानना, सीता का पृथ्वी प्रवेश — रामायण की भांति है।

उपर्युक्त प्रसंगों के तुलनात्मक अध्ययन से एक बात स्पष्ट होती है कि राम को मनुष्य रूप में चित्रित करने के कारण रामायण में अनेक स्थलों पर राम की मानवोचित दुर्बलता प्रकट होती है। तुलसी ने राम के ब्रह्मत्व को स्वीकार किया है अतएव उनके चरित्र के आदर्शीकरण के लिए इन विभिन्न स्थलों को संशोधित कर दिया है। किन्तु पं० रामचरित उपाध्याय ने वाल्मीकि रामायण का ही आधारग्रहण किया है। इसके मूल में कदाचित् विज्ञान-उद्भूत विवेचन बुद्धि तथा आधुनिक युग के मानवतावाद का प्रभाव है, जिसके परिणामस्वरूप कवि ने एक ओर अलौकिकता के निषेध के लिए रामायण की चमत्कार रहित स्वाभाविक घटनाओं का अनुकरण अपने काव्य ग्रन्थों में किया है, दूसरी ओर राम कथा के विविध पात्रों को मानवी स्तर पर अवतारणा करने के उद्देश्य से भी ~~समन्वयक~~ (पात्रों के मानवी रूप के कारण) रामायण के अनुकरण को अधिक श्रेयस्कर समझा है।

प्रसंगों की नवीन अभिव्यंजना—

रामचरित-चिन्तामणि की कथा का स्वरूप परम्परा-

---

१. रामायण युद्ध काण्ड, पृ ११२।१५-१८

२. रामचरित चिन्तामणि— १२। पृ० ३२२

गत है किन्तु इस ग्रन्थ में अन्तर्निहित कवि के राजनीतिक दृष्टिकोण के कारण ही इसे नवीन प्रयोगों की श्रेणी में रखा जा सकता है। वस्तुत: कवि ने राक्षसों एवं उनके शासक रावण को अंग्रेजों तथा अंग्रेज शासकों के प्रतीक के रूप में देखा है। अत: राम एवं रावण पारस्परिक संघर्ष भी तत्कालीन विदेशीसत्ता के प्रति भारतीयों के स्वतंत्रता-संग्राम का प्रतीक है —

घर जा बैठो, कभी राम का रावण ! लेना नाम नहीं,
मन को सदा बढ़ाते जाना, अच्छा होता काम नहीं।
लंकावासी असुर ! करो मत भारत में उत्पात वृथा,
टिक न सकोगे, यहां तुम्हारी रह जाएगी अयश-कथा।[१]

कथा के प्राचीन रूप के साथ राष्ट्रीयता की नवीन भावना की अभिव्यक्ति भी अनेक रूपों में हुई है। दशरथ के राजकाल की समृद्धि के चित्रण की सापेक्षता में कवि एक ओर प्राचीन गौरव को पुनर्स्मरण करता है दूसरी ओर समकालीन भारत की दुरवस्था की ओर भी संकेत करता है।

एक ओर विदेशी-शासन कालीन भारत की आर्थिक विपन्नता है दूसरी ओर दशरथ राज्य की सम्पन्नता —

रत्न, सोना, वस्त्र, शस्त्रादिक पटा था हाट में,
भीड़ के मारे, समर था शीघ्र चलना बाट में।
किन्तु मादक-द्रव्य बिकता देख पड़ता था नहीं,
मत्त हो मद से कोई न गिरता था कहीं।[२]

कवि कर-भार से ग्रसित तत्कालीन जनता का चित्रण अप्रत्यक्ष-रूप से दशरथ-राज्य के वर्णन से करता है —

---

१. रामचरित चिन्तामणि, सर्ग ११।१४८
२. वही, १।५

पर न उनसे एक पैसा कर लिया जाता रहा;
    भूप का उनसे सदा निःस्वार्थ का नाता रहा ।
किन्तु आकर वे कभी कुछ भेंट जो देते रहे;
    प्रेम उनका देख उसको भूप ले लेते रहे ।[१]

इसी प्रकार अहिल्या-उद्धार प्रसंग में अहिल्या द्वारा मांगा गया वर व्यक्तिगत स्वार्थ से सम्बन्धित न होकर राष्ट्रीय भावना का द्योतक है । ये पंक्तियां द्विवेदी के उस लोकोपयोगी धर्म (देशप्रेम) की ओर संकेत करती हैं, जिसके अनुसार व्यक्तिगत मुक्ति के स्थान पर सम्पूर्ण देश अथवा समाज की मुक्ति को अधिक वरेण्य समझा गया है —

प्रभु भारतीयों में सदा सद्बुद्धि का संचार हो;
    उनके कलह-अविवेक का भय भेद का संहार हो ।
ऐसी कृपा कर दीजिए, वर दीजिए दुःख दूर हो;
    हों शूर सब भरपूर सुख से, क्रूर का मुख दूर हो ।[२]

किन्तु इन सामाजिक तत्वों की संयोजना में एक तथ्य विशेष रूप से परिलक्षित होता है कि इन तत्वों की अभिव्यक्ति अत्यन्त अभिधात्मक रूप में हुई है । वस्तुतः सामयिकता एवं प्राचीनता के सन्तुलित समन्वय के लिए जिस कौशल की आवश्यकता होती है (साकेतकार अथवा प्रियप्रवास के रचयिता के सदृश) वह भी रामचरित उपाध्याय की इस रचना में नहीं प्राप्त है ।

पौराणिक पात्रों के प्रस्तुतीकरण में नूतन तत्व— पौराणिक चरित्रों को रीतिकालीन शृंगारिकता के पंक से बाहर निकाल कर उनके परि-

---

१. रामचरित चिन्तामणि, १।२

२. वही, ३।२८

स्करण तथा उदात्तीकरण का रूप इन प्रारम्भिक रचनाओं में प्राप्त होता है, किन्तु वह नर से नारायण नहीं बनते वरन् नारायण होने के मिथ्या आवरण से मुक्त होकर देवत्वयुक्त मनुष्य हो जाते हैं। रामकृष्ण आदि विभिन्न दिव्य शक्ति सम्पन्न पात्रों को देवत्व के निष्क्रिय, निर्विकार आसन से विस्थापित करके मानवता की ओर अवरोहण के मूल में १६ वीं शताब्दी के विविध राष्ट्रीय-सांस्कृतिक आन्दोलनों एवं तज्जनित वैचारिक प्रवृत्तियों—मानवतावाद, कर्मवाद, बौद्धिकता आदि का हाथ रहा है जो विश्लेषण के द्वारा सत्य को तर्क की तुला पर तौल कर ही स्वीकार करता था। अत: अलौकिकता, दिव्यता अथवाअग्राह्य चमत्कारिकता का निषेध तो स्वयं हो जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक परम्परागत महान् तथा दिव्य से प्रतीत होने वाले चरित्रों के अनेकअसंगत कृत्यों के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण तथा पतित एवं कलुषित चरित्र में अन्तर्मन के मानवीगुणों के अन्तःसलिल की खोज भी तथाकथित मानवतावाद और बौद्धिक दृष्टि का प्रतिफलन है। इस दृष्टि से उस समय 'सरस्वती' में प्रकाशित महाभारत के उन महापुरुषों के विभिन्न गुणों के वर्णन से सम्बन्धित लेखों को प्रस्तुत कर सकते हैं जिसमें इन पात्रों के परम्परागत रूप तथा कृत्यों को नवीन तर्क के आलोक में विश्लेषित किया गया है। यथा ' महावली कर्ण ' के लेखक बदरीदत्त पाण्डे ने कर्ण के चरित्र के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है — " हम लोगों की आदत ही पड़ गई है कि महाभारत और रामायण पढ़ते ही हम पाण्डवों और राम की बड़ाई करने लगते हैं और विपक्षी दुर्योधन और रावण की निन्दा। यह न्याय नहीं।......... सिर्फ रावण ने ही अन्याय नहीं किया। राम ने भी रावण की बहन सूपर्णखा का नासिका-छेदन करके अभिमानी रावण का अपमान किया। यद्यपि सूपर्णखा ने अत्याचरण किया था तथापि वह स्त्री थी और रावण की प्रजा थी, न की राम की। अन्य राजा की प्रजा ने ~~राम के राज्य में~~ (यद्यपि राम उस समय राजा न थे) राम के राज्य में ऊधम मचाया होता तो राम को रावण के पास इस बात की सूचना भेजनी थी। सूपर्णखा को कुरूप न करके उसे कैद कर लेना चाहिए था।

इसी विचार से आजकल International Law और हेग-न्यायालय की स्थापना हुई है।"[१]

इन पंक्तियों में व्यक्त विचारों से यदि न भी सहमत हुआ जाए, पर, यह उस युग में प्रस्फुटित होने वाली तार्किक दृष्टि तथा पुराण, महाभारत और रामायण जैसे धर्मग्रंथों और राम, कृष्ण, अर्जुन जैसे पात्रों के परम्परा निर्धारित महानता के प्रति तटस्थ दृष्टि के विकास की ओर संकेत अवश्य करता है।

इस दृष्टि से भी रामचरित उपाध्याय की 'रामचरित-चन्द्रिका'[२] विशेष महत्वपूर्ण कृति है जिसमें कवि ने रामायण के विविध पात्रों के देवत्व से विमोहित न होकर सामान्य मानवीयता के धरातल पर उनका आलोचनात्मक दृष्टि से विवेचन किया है। अपने वधू के सदृश (उम्र के कारण) कैकेयी पर आसक्त होने के लिए दशरथ की निन्दा की है।[३] रामभक्त विभीषण[४] तथा मारीच[५] को देशद्रोही तथा सुग्रीव को भ्रातृद्रोही के रूप में देखा है। कुम्भकर्ण,

---

१. महावलीकर्ण : बदरीदत्त पाण्डे, सरस्वती, नवम्बर, १९११, पृ० ५१८

२. प्रकाशित, सन् १९१६

३. जो होगा आसक्त वधू के धूप रूप में,
क्यों न गिरेगा वही अन्ध हो कामकूप में।
धिग् जीवन है घोर कलंकी, का इस जग में,
कौन गिरेगा नहीं, खोद अन्दक निज मग में।
— रामचरित चन्द्रिका, पृ० २

४. हा! क्यों विदेशी के लिए रघुनाथ के प्रतिकूल
दुष्कर्म कर मारीच: तू ने की वृथा ही भूल

५. हा! जिसे निजदेश का कुछ भी नहीं अभिमान है,
और अपने धर्म का जिसको नहीं कुछ ध्यान है।
या स्वकुल का नाम रखना भी जिसे आता नहीं,
सुन विभीषण! नरक में भी ठौर वह पाता नहीं। रामचरित चं०, पृ० ७५

बाली, कैकेयी जैसे युगों से निन्दित और उपेक्षित पात्रों की प्रशंसा की है। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या, सुमित्रा तथा उर्मिला आदि के चरित्र में नवीन भावों की प्रतिष्ठा की है।

इस बौद्धिक विश्लेषणात्मक दृष्टि का ही रचनात्मक पक्ष तत्कालीन 'मानवतावाद' है जिसके अनुसार मानव के आसन पर स्थापित होकर ही ये देवी-देवता गौरवान्वित होते हैं। नर ही अपने कर्म के बलसेनारायण के रूप में हो जाता है,—

नर आखिर नर है और भाग्यस्वामी है,
ईश्वर ने निज प शक्ति उसी को दी है।
इच्छा बल भी बहुतेरा प्राप्त उसे है
कहिए इसका सा कवि-बल और किसे है।

< < < <

नर नारायण हो जाय कर्म के बल पर
अतिकठिन कार्य हो जाय अतीव सुगमतर।[१]

एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि देवत्व के स्थान मानवता की स्थापना के मूल में उपरोक्त मानवतावादी दृष्टि के अतिरिक्त एक बहुत बड़ा कारण तत्कालीन परिस्थितियों में अन्तर्निहित था। राष्ट्रीय उन्नति के लिए भारतीय जनता की नैतिक तथा चारित्रिक उन्नति भी उस समय की आवश्यकता थी। नैतिक दृष्टि से त्रस्त जनता के चारित्रिक उन्नयन के लिए अनुकरणीय आदर्श चरित्र की स्थापना, ईश्वर को मानवीय धरातल पर स्थापित करना उस युग में विशेष अर्थ रखता था। ईश्वर को मनुष्य रूप में देखकर हम निकटता का अनुभव करते हैं। इसलिए ही ये चरित्र हमारे आदर्श बन सकेंगे, अन्यथा ईश्वरत्व के आसन पर अधिष्ठित देवता हमारी प्रार्थना का

---

१. श्री हरिभाऊ उपाध्याय, मनुष्य महात्म्य, मर्यादा, जुलाई, १९१६ ई०

पात्र बन सकते हैं -- अनुकरण के आदर्श नहीं । तत्कालीन राष्ट्रीय आवश्यकता का ही परिणाम था कि विविध पौराणिक पात्रों के चारित्रिक-गुणों पर प्रकाश डालते हुए उस समय के कवि उनका अनुकरण करने का उपदेश देते हैं । अपने प्रारम्भिक रूप में ये उपदेश अभिधात्मक शैली में बाहर से ही संयुक्त कर दिए गए हैं किन्तु आगे के युगों में देखेंगे कि उन चारित्रिक गुणों को पौराणिक पात्रों के जीवन में उतार कर नवीन व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की गई है ।

इस प्रकार की `आदर्श साधना` के प्रथम उदाहरण के आख्यानक काव्य थे जो किसी चित्र को आधार बनाकर लिखे गए थे । श्री नाथूराम शर्मा 'शंकर' की `राम लीला`[१] तथा `प्रशस्तपंचक`[२], श्री रामनरेश त्रिपाठी का `श्रीराम`[3], तथा श्री कामताप्रसाद 'गुरु' का `परशुराम`[४], आदि रचनाएं इसी प्रकार के उदाहरण हैं, जिसमें इन कवियों ने पौराणिक चरित्र के गुणों पर प्रकाश डालते हुए उपदेश दिया है । 'शंकर' ने `रामलीला` में राम को लौकिक कर्मों के आदर्श के रूप में चित्रित किया है और उनके विविध गुणों पर प्रकाश डालते हुए प्रत्यक्ष उपदेश दिया है ---

मिलकर जननी से मांग असीस बिदाई ,
बुध जनक सुता की मांग भरी मनभाई ।
सुनलक्ष्मण का प्रण-पाठ कहा चल भाई ।
बरतज सानुज सपत्नीक चले रघुराई ।
निज नारि सतीप्रिय बन्धु न वीर विसारो ।
पढ़ रामचरित पवित्र मित्र उर धारो ।[५]

---

१. सरस्वती, नवम्बर, १६०७, पृ० ४३३ से ४३७ तक
२. शंकर सर्वस्व
३. सरस्वती, १ अक्टूबर, १६१७
४. सरस्वती, नवम्बर, १६०८ , पृ० ४६७-४६८
५. शंकर सर्वस्व, पृ ६८

इसी प्रकार रामनरेश त्रिपाठी ने राम के विविध आदर्श गुणों का वर्णन किया है —

सत्पुरुष-पुंगव, सत्यवादी, संयमी श्री राम थे।
प्रतिभानिधान, पराक्रमी, धृतिशील, सद्गुण धाम थे।
परमप्रतापी, प्रभारंजन, शत्रु विजयी वीर थे।
ज्ञानी सदाचारी, सुधी, धर्मज्ञ दानी धीर थे।
कल्याणाकर उनके सभी शुभ लक्षणों को धार लो।
पढ़ मित्र पूर्ण पवित्र रामचरित्र जन्म सुधार लो।[१]

< < < <

क्योंकि इन गुणों के अनुकरण के द्वारा ही देश का कल्याण संभव है —

होगा इसी से देश का कल्याण, सम्मति सार लो
पढ़ मित्र पूर्ण पवित्र रामचरित्र जन्म सुधार लो।[२]

भगवान् दीन 'दीन' के 'नदी में दीन'[३] काव्य संग्रह में भी विभिन्न पौराणिक पात्रों के गुणों पर प्रकाश डाल कर उपदेश दिया गया है।

इन चरित्रों के आदर्श का रूप भी तत्कालीन राष्ट्रीयता से संयुक्त है। मानव चरित्र का सबसे उज्ज्वल रूप 'राष्ट्र' के लिए अपने को समर्पित करने में था। नैतिक, चारित्रिक, उन्नति के लिए किया गया प्रयास, समाजसेवा और

---

१. सरस्वती अक्टूबर १९१७, पृ० ५७३
२. वही, पृ० ५७३
३. सन् १९२८ में प्रकाशित

मानव सेवा भी प्रकारान्तर से राष्ट्रीय भावना का ही एक रूप था । यही कारण है कि जब पौराणिक चरित्रों को युगानुकूल आदर्श के स्तर पर स्थापित किया गया तो उनके चरित्र में सेवाभाव का समाहार स्वभावत: हो जाता है । राष्ट्रसेवा और लोकसेवा की भावना विशेष प्रवृत्ति की द्योतक थी जिसकी भावभूमि पर विविध पौराणिक चरित्रों के अवतारण का प्रयास हुआ है । यद्यपि ये कवि इन पौराणिक देवी-देवताओं के दिव्य सत्ता के प्रति श्रद्धावान् नहीं थे, विशेषत: विनयसम्बन्धी पदों में देश-उद्धार की प्रार्थना करते समय उनके देवत्व को स्पष्टत: स्वीकार किया है, किन्तु चित्रण के स्तर पर उनको (परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप) धर्मवीर के स्थान पर कर्मवीर तथा देशवीर (अथवा राष्ट्रवीर) के रूप में देखने की प्रवृत्ति प्राप्त होती है । प्रमरदूत के `कृष्ण` का व्यक्तित्व लोकसेवी रूप में ही चित्रित है और यही कारण है कि उनके अभाव में यशोदा ब्रज को (प्रतीकात्मक रूप में भारतवर्ष का) नितान्त अरक्षित अनुभव करती हैं —

वा बिनु गो ग्वालनु को हित की बात सुझावै ।
अरु स्वतंत्रता, समता, सभ्रातृता सिखावै ।
यदपि सकल विधि ये सहत, दारुण अत्याचार ।
पै न कहू सों कहत कोऊ बने गंवार ।
कोउ अगुआ नहीं ।[१]

श्री रामचरित उपाध्याय के ` रामचरित चिन्तामणि` में यद्यपि वाल्मीकि रामायण के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति के कारण राम के चरित्र में असन्तुलित भाव से कहीं महानता तथा कहीं मानवी दुर्बलता के दर्शन हो जाते हैं किन्तु `रामचरित चिन्तामणि ` में राम का चित्रण आदर्श मानव के रूप में चित्रित किया गया है —जो अपने कर्मों के कारण ईश्वर समझे गए हैं —

ईश्वर का अवतार वही जो तारे जग को,
विस्तृत जो कर सके परिष्कृत वैदिक मग को ।

---

१. प्रमरदूत, हृदयतरंग, पृ० १०५

राम ! आपके काम सदा ऐसे होते थे,
ईश आपको समझ सभी सुख से सोते थे ।[१]

जिनके जीवन का लक्ष्य लोकसेवा है,जो कष्ट को गले लगाकर अस्पृश्यता दूर करते हैं,[२] असुरों के देश में जाकर भी अपना देश नहीं भूलते और न वहां का दोष ही ग्रहण करते हैं — राम के माध्यम से कवि उस समय के उन भारतवासियों की ओर संकेत करता है जो विदेश जाकर विदेशी संस्कृति के प्रभाव में अपने देश को भूल जाते हैं ।[३] इसी प्रकार सीता उर्मिला और कैकेयी के चरित्र में परम्परागत रूप से भिन्न देश प्रेम की भावना का सन्धान किया गया है । सीता देश कल्याण की भावना से ही वनवास का कष्ट सहर्ष स्वीकार करती हैं[४] (मात्र राम के प्रेम से नहीं)।उर्मिला भी देश के लिए ही अयोध्या में रह कर चौदह वर्षों तक वियोगिनी का जीवन व्यतीत करती हैं तथा लक्ष्मण के कृत्यों में भी भ्रातृ प्रेम के साथ ही देशप्रेम की भावना निहित है । यहां तक कि कवि ने कैकेयी जैसे युगों से उपेक्षित पात्रों को भी नवीन आदर्श के धरातल पर स्थापित किया है जो परहित के लिए लोकापवाद का गरल

---

१. रामचरित चन्द्रिका, पृ० १६

२. राम आपने केवट को भी कण्ठ लगाया
पलभर में अस्पृश्य जाति को स्पृश्य बनाया ।
—रामचरित चन्द्रिका, पृ० १७

३. असुरों के देश मे गए तदपि निज देश न भूले,
और वहां के दोष ग्रहण कर आप न फूले ।
— रामचरित चन्द्रिका, पृ० १८

४. निज जीवन कर दिया देश को अर्पण जिसने,
अश्रुपात से किया देश का तर्पण जिसने ,
—रामचरित चन्द्रिका, पृ० २४

५. देश धर्म के लिए आपने कर्म किए हैं जैसे,
लक्ष्मण तुम्हें छोड़ कर जग में और करेगा कैसे ।
—रामचरित चन्द्रिका , पृ० ३२

पीने को तत्पर हो जाती हैं ---

राजपुत्र है वही करे जो देश भलाई,
　　　　यही बात कैकेयी ! तुम्हारे मन में आई ।
तभी राम को तनिक न जीने दिया विलासी,
　　　　राज्य प्राप्ति के प्रथम उन्हें कर दिया प्रवासी ।[१]

श्री भगवान दीन 'दीन' के 'वीर पंचरत्न'[२] में पौराणिक तथा ऐतिहासिक पात्रों के 'वीरत्व' का विशेष चित्रण हुआ है ।[३] तत्कालीन स्वतंत्रता संग्राम के उस युग में इन वीरत्व-व्यंजक चरित्रों की अवतारणा विशेष अर्थ रखती है ।[४] इसीलिए उस समय के अनेक कवियों ने वीरतापूर्ण काव्य रचना की है तथा ऐतिहासिक-पौराणिक वीरों की काव्य-जगत में पुनर्प्रतिष्ठा हुई है । श्री वियोगी हरि के 'वीर-सतसई'[५] में भी पौराणिक वीरों का आह्वान हुआ है ---

जित देखो तित बढ़ि रहे कुल कुठार भुविभार ।
क्यों न होत पुनि आजु वह परसुराम अवतार ।
देखि देखि मद-चूर ए कादर कूर कुराज ।
जामदग्न्य के परसु की आवति सुधि पुनि आज ।[६]

---

१. रामचरित चन्द्रिका, पृ० १४

२. प्रकाशन समय सन् १९२१ ई०

३. ये वीर हैं वीर प्रताप, वीर बालक
　वीरक्षत्राणी, वीरमाता, वीरपत्नी

४. कवि ने अपनी पुस्तक में कहा है ---

　　दुनिया में सुकवि ना सदा उसका रहेगा
　　जो काव्य में वीरों की सुगम कीर्ति कहेगा ।
　　　　　　---वीरपंचरत्न, पृ० २६४

५. वीर सतसई, प्रकाशन समय सम्वत् १९८४ वि०

६. वीर सतसई, पृ० ८७

अध्याय — तृतीय

द्वितीय सोपान

नवीन मूल्य और नूतन शिल्प : कुछ पौराणिक प्रबन्धकाव्य —

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के नवजागरण मूलक विभिन्न सांस्कृतिक-राष्ट्रीय आन्दोलनों, विज्ञान के प्रभाव तथा पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा के परिणामस्वरूप हिन्दी काव्य-जगत में पुराणकथाओं के जिन नवीन प्रयोगों का समारम्भ हुआ था, उसका विकास आगे के युगों में भी होता है। अर्थ पूर्वकालीन परम्पराओं के अक्षुण्ण रहते हुए भी विकसित होने के कारण अनेक नवीन तत्वों का जन्म होता है। हिन्दी-काव्य में पुराण कथाओं के प्रयोग के विशिष्ट संदर्भ में नवीन मूल्य वही हैं जिनकी स्थापना उत्तर भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग में हुआ है।[1] किन्तु अपने विकास की प्रगति में प्रौढ़ होकर नूतन-कथा-शिल्प के माध्यम से व्यक्त होता है। अत: पूर्वकालीन प्रवृत्तियों पर (जिसका विवेचन पूर्ववर्ती अध्याय में हुआ है) आधारित होते हुए भी अपने इस विकसित स्वरूप के कारण पुराणकथाओं के प्रयोग की दिशा में ` द्वितीय सोपान ` का द्योतक है।

नवचेतना से उत्पन्न नवीन भावधारा एवं नूतन शिल्प की द्योतक प्रथम प्रौढ़ कृति `हरिऔध` का `प्रियप्रवास` है। विशेष योगदान श्री मैथिलीशरण गुप्त का है, जिन्होंने हिन्दी-साहित्य में कदाचित् सबसे अधिक पौराणिक प्रबन्धकाव्यों की रचना की है। इन दो कवियों ने पुराणकथाओं के प्रयोग की दृष्टि से जिस नवीन भावभूमि तथा कथास्वरूप के आदर्श की स्थापना

---

१. इसका विवेचन पूर्ववर्ती अध्याय में हुआ है।

की है उनसे प्रेरणाग्रहण कर उनके ही अनुकरण पर आगे के युगों में अनेक पौराणिक प्रबन्धकाव्यों की रचना होती है, जिसे नि:संकोच भाव से `प्रियप्रवास` एवं साकेत की श्रेणी में रखा जा सकता है। श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय की अन्य रचना वैदेही वनवास, श्री मैथिलीशरण गुप्त का साकेत, द्वापर, नहुष, दिवोदास, पंचवटी, शक्ति, श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र का `कृष्णायन `, श्री बलदेवप्रसाद मिश्र का कौशलकिशोर, साकेतसन्त, रामराज्य, श्री हरिदयालु सिंह का दैत्यवंश, रावण महाकाव्य इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

सामान्य प्रवृत्तियां—

क. नवीन मूल्यों की स्थापना—

१. लोकादर्श की स्थापना— व्यक्तिगत मुक्ति के स्थान पर देशमुक्ति, आत्मतत्व की स्थापना के स्थान पर मानवसेवा, समाज-सेवा और राष्ट्रसेवा आदि लोकादर्शों के विभिन्न रूप हैं जो इन रचनाओं के सृजन के मूल में सन्निहित है। इन लोकादर्श के भावों की स्थापना के लिए प्रयुक्त पौराणिक कथा के साथ अनेक पुराणेतर तत्वों का भी समावेश होता है तथा पौराणिक पात्रों की नवीन भावभूमि पर सृजना होती है। अत: पुराणों की कथा से सम्बद्ध धार्मिक भूमिका यहाँ संस्कृति का रूप धारण कर लेती है और पुराणों की अवतारवादी धारणा को भी नवीन अर्थ मिलता है। कभी जिन पौराणिक देवताओं का अवतरण धर्म के उद्धार अथवा दुष्टों के विनाश के लिए हुआ था, वे देश-उद्धार अथवा संस्कृति की रक्षा के लिए जन्म लेते हैं। `प्रिय प्रवास` से लेकर ` राम राज्य ` तक यही प्रवृत्ति दृष्टि-गत होती है।

देशभक्ति अथवा `देशमुक्ति ` की यह भावना पूर्ववर्ती रचनाओं में भी प्राप्त होती है किन्तु स्वतंत्रता-संग्राम के प्रारम्भिक प्रभाव के रूप में पराधीनता से मुक्ति एवं प्राचीन धार्मिक,सामाजिक,कुरीतियों के विध्वंस की

आवेशपूर्ण अभिव्यक्ति ही मुख्य थी । इस वर्ग की रचनाओं में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी स्वतंत्र भारत, स्वराज के स्वरूप, तथा आदर्शसमाज की भावी कल्पना अपने ढंग से अभिव्यक्त हुई है । कौशल-किशोर, साकेत सन्त, रामराज्य, कृष्णायन आदि प्रबन्धकाव्यों में आदर्श समाज का चित्र प्रस्तुत है । लोक-आदर्श की स्थापना में इन समस्त कवियों पर अपने समानान्तर विकसित होने वाली गांधी की विचारधारा एवं व्यवहारिक दर्शन का विशेष प्रभाव है । वस्तुत: देशसेवा, मानवसेवा, समाज-सेवा से सम्बन्धित गांधी की विविध कार्य प्रणालियाँ इन रचनाओं में विशेष मुखरित होकर व्यक्त हुई हैं ।

२. मानव का प्रशस्तिगान — विवेकानन्द के मानवतावादी दृष्टि के प्रभावस्वरूप मानव के महत्व स्थापन की जो प्रवृत्ति पूर्वयुग में प्राप्त होती है वह विशेष मुखर होकर इन रचनाओं में व्यक्त होती है । इस मानवतावादी दृष्टि के प्रभावस्वरूप पुराणों के दिव्य अलौकिक पात्रों को भी मानवीय धरातल पर अवतरित करके स्वीकार किया गया है । `प्रिय प्रवास` की भूमिका में `हरिऔध` ने कहा है — ` मैंने श्रीकृष्ण को इस ग्रन्थ में महापुरुष की तरह अंकित किया है ब्रह्म करके नहीं । अवतारवाद की जड़ में मैं श्री मद्भागवत का वह श्लोक मानता हूं कि ` यद् यद् विभूतिमत्सत्वं श्री मदर्जितमेव वा । ततदेवावगच्छत्वं ममतेजोंशसंभवत् ` अतएव जो महापुरुष है उसका अवतार होना निश्चित है । यह प्रवृत्ति सबसे अधिक मुखर होकर श्री मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में व्यक्त होती है जिसका स्पष्ट उदाहरण साकेत है, जिसमें कवि ने राम को मानव रूप में देखा है । यह दृष्टि कदाचित् `नहुष ` तथा `दिवोदास` में चरमसीमा पर पहुंच जाती है । पुराणों में नहुष की कथा नर के कालिमापूर्ण इतिहास का उदाहरण प्रस्तुत करती है, जिससे यही प्रकट होता है कि नर को देव सिंहासन पर स्थापित करके वही होता है जो `नहुष ` ने किया । मानव की `उच्चता` में सहज विश्वास होने के कारण आधुनिक कवि नर के इस अधो-

ग्यतापूर्ण उदाहरण को भिन्न अर्थ में प्रस्तुत करता है तथा नर के उस प्रगतिशील गति की ओर संकेत करता है जो कि उसे पतन के गर्त से उठाकर आत्मपरिष्करण की ओर प्रेरित करती है। कवि स्पष्टतः मानव का प्रशस्तिगान कर उठता है —

नारायण! नारायण! धन्य नर साधना।
इन्द्रपद ने भी की उसी की शुभाराधना।

'दिवोदास' की कथा पुराणों में एक मात्र अकेली कथा है जिसमें नर ने देववर्ग को चुनौती है और देवविहीन ऐसे राज्य की स्थापना की है जिसमें ईश्वरी कृपा नहीं वरन् मनुष्य का पुरुषार्थ ही उसे सर्वसुख प्रदान करता है। इस नर श्रेष्ठ की पुराणकारों ने प्रशंसा की है, पर उसके इस देवविरोधी कृत्य की निन्दा न की हो ऐसा भी नहीं है।[१] ईश्वरीय कृपा के विश्वास के विरुद्ध कर्मठता का यह सन्देश उस समय के इतिहास में एक अकेली और विचित्र घटना हो सकती है किन्तु इस युग के लिए नवीन न होते हुए भी महत्वशाली है।'[२]

३. उपेक्षित पात्रों का उद्धार— मानवतावाद तथा बुद्धिवाद के प्रभावस्वरूप पुराणों के अनेक उपेक्षित पात्रों के प्रति सहज मानवीय सहानुभूति की प्रवृत्ति प्राप्त होती है जिसके परिणामस्वरूप पुराणों के अनेक

---

१. जब दिवोदास मुक्ति प्राप्ति के लिए ब्राह्मण वेशधारी विष्णु के पास जाते हैं तब वह कहते हैं कि तुमसे बहुत बड़ा अपराध हुआ है जो तुमने शिव को काशी से दूर कर दिया। इस अपराध के प्रायश्चित स्वरूप वह काशी में शिवलिंग की स्थापना करते हैं।

—स्कन्धपुराण, काशी खंड, उत्तरार्द्ध, अध्याय ५८

२. नहुष —कवि की भूमिका से।

उपेक्षित पात्रों का उद्धार हुआ है। इसके मूल कारणों के रूप में पं०महावीरप्रसाद द्विवेदी के उस लेख का उल्लेख भी आवश्यक है जिसमें कवि ने रामकथा की उपेक्षिता उर्मिला की ओर तत्कालीन कवियों का ध्यान आकर्षित किया है। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने एक लेख में भारतीय साहित्य की `उपेक्षिताओं` के प्रति सहानुभूति प्रकट की थी। इस निबन्ध से प्रभावित होकर पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भुजंगभूषण भट्टाचार्य के छद्म नाम से `सरस्वती` में प्रकाशित लेख 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता' में अपना विचार प्रकट करते समय लिखा है —

"क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक पक्षी को निषाद द्वारा बध किया गया देख कवि शिरोमणि का हृदय दु:ख से विदीर्ण हो गया और उसके मुख से `मा निषाद` इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी। वही पर दु:ख ~~परिशीलित~~ कातर मुनि रामायण निर्माण करते समय एक नव परिणीता दु:खिनी बधू को बिलकुल ही भूलगया। विपत्ति विधुरा होने पर उसके साथ अत्यादल्पतारा समवेदना तक उसने न प्रकट की उसकी खबर तक न ली।..... सीता की बात तो जाने दीजिए उनके और उनके जीवनाधार रामचन्द्र के चरित्रचित्रण के लिए रामायण की रचना हुई है। माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के विषय में कोई विशेषता नहीं है। क्योंकि आग से भी अधिक सन्ताप पैदा करने वाला पति वियोग उनको हुआ ही नहीं। रही बालदेवी उर्मिला जो उसका चरित सर्वथा गेय और आलेख्य होने पर भी, कवि ने उसके साथ अन्याय किया। मुने! इस देवी की इतनी उपेक्षा क्यों? इस सर्वसुख वंचिता के विषय में इतना पक्षपात कार्पण्य क्यों?"

द्विवेदी जी के शिष्यत्व में अपनी काव्यकला को विकसित करने वाले कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने उर्मिला के व्यक्तित्व को ही प्रधानता देकर साकेत की रचना की है, जिसमें मानवी करुणा के आधार पर पति-वियोगिनी उर्मिला के दु:ख को चित्रित किया है। `उर्मिला` के साथ रामकथा की एक

अन्य उपेक्षिता तथा निन्दनीय पात्र कैकेयी के चरित्र का भी उन्नयन किया है। भावुक कवि ने अपनी अन्य रचना 'द्वापर' में कृष्ण कथा की उपेक्षिता विधृता के चरित्र के वैशिष्ट्य को उद्घाटित किया है। श्रीमद्भागवत में विधृता के आत्मबलिदान का केवल दो पंक्तियों में उल्लेख मात्र कर दिया गया है [1] किन्तु कवि ने इसके अन्तर्मन में झांक कर इस आत्मबलिदान के अन्दर निहित उसकी आत्मवेदना का चित्रण किया है। श्री मैथिलीशरण गुप्त से एक चरण आगे श्री बलदेवप्रसाद मिश्र ने 'साकेत सन्त' में रामकथा के अन्य त्यागी युगल भरत-माण्डवी के त्याग की गरिमा का चित्रण किया है। राम की अनन्यप्रिया सीता राम के निकट थीं। अत: उनका दु:ख उर्मिला से कम था, किन्तु तर्कशील कवि माण्डवी के दु:ख को उर्मिला से भी बड़ा मानता है क्योंकि यहां निकटता होने पर भी दूरी है जैसे तृषित के निकट जल होने पर भी अपेय होने के कारण वह उसे ग्रहण न कर सके —

> दूर उर्मिला का सागर था।
> देह महल में रुद्ध हुई थी पर न निरुद्ध विरह निर्झर था।
> भरी दृगों ने जलधाराएं शब्द शब्द करुणा कातर था।
> किन्तु माण्डवी को आहों पर मरना भी वर्जिततर था।
> सम्मुख है राकेश चकोरी पर न उधर निज नयन उठाये।
> विकसी प्रभा प्रभाकर की है, पर न कमलिनी मोद मनाये।
> था बसन्त आंखों के आगे पर कीलित ही पिक का स्वर था। [2]

मेघनाद की प्रेरणा ग्रहण करके श्री हरदयालु सिंह ने अपने 'दैत्यवंश' तथा 'रावण महाकाव्य' में 'असुर' कह कर उपेक्षित एक सम्पूर्ण वर्ग के प्रति सहानुभूतिकण का वितरण किया है तथा उन्हें अपने

---

१. श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, अध्याय २३, श्लोक

२. साकेत सन्त, पृ० १६१

काव्यग्रंथ का नायक बनाया है। उन्होंने युगानुकूल विश्लेषण बुद्धि एवं मानवी दृष्टि के विशेष योग से युगों से स्थापित परम्पराओं का विश्लेषण करके यह सिद्ध कर दिया है कि `दानव` के नाम से निन्दनीय पात्र उतने ही उच्च हैं, जितने कि देवत्व के अधिकारी देवतागण। पुराणों के इन विविध उपेक्षित पात्रों के प्रति सहानुभूति कण का वितरण श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी किया है किन्तु श्री हरिदयालु सिंह ने उन्हें पर्याप्त सहानुभूति ही नहीं दी है वरन् ऐतिहासिक आधार भी प्रदान करने का यत्न किया है।

ब. नूतन शिल्प--

१. कथा का संक्षिप्तीकरण--

शिक्षा के प्रसार ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के विकास एवं वैज्ञानिक दृष्टि से विकसित नवीन लोकरुचि के कारण आधुनिक युग के पाठक के पास न इतना धैर्य है और न समय ही कि वह पुराणों के विस्तारों के प्रति रुचि दिखा सके। परिणामस्वरूप आधुनिक युग के पौराणिक प्रबन्धकाव्य के रचयिताओं का विशेषप्रयास कथासंक्षिप्ति का रहा है। अतएव `प्रियप्रवास` से लेकर रामराज्य तक की रचनाओं में कथा-संक्षेप का विशेष प्रयास दृष्टिगत होता है। अनेक अनावश्यक प्रसंगों का त्याग तथा मुख्य प्रसंगों के चयन की प्रवृत्ति प्राप्त होती है। वस्तुत: इन कवियों का उद्देश्य कथा वर्णन नहीं है वरन् वे उद्देश्य विशेष को दृष्टि में रख कर कुछ प्रसंगों को चुन कर उनके चित्रण द्वारा सम्पूर्ण कथा का भावन कराते हैं। कथा-संक्षेप की इस प्रवृत्ति के कारण इन रचनाओं में पौराणिक तत्वों का निरन्तर ह्रास

होता जा रहा है। प्रियप्रवास से लेकर रामराज्य तक की विविध रचनाओं में केवल 'कृष्णायन' ही एक मात्र ग्रन्थ है जिसमें कृष्ण जीवन की सम्पूर्ण घटनाओं का आद्योपान्त निर्वाह हुआ है।

वस्तुत: यहां कवि 'रामचरितमानस' के सदृश ऐसे ग्रन्थ का निर्माण करना चाहता है जिसमें कृष्ण के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक की विविध घटनाओं का वर्णन हो । किन्तु इस रचना को छोड़कर प्रियप्रवास तथा साकेत आदि रचनाओं की कथा संक्षिप्त है जिसमें कवि महाकाव्य की परम्पराओं के निर्वाह के लिए यत्रतत्र सम्पूर्ण कथा की झलक दे जाता है परन्तु कथा का विस्तृत वर्णन नहीं किया है।

२. स्वाभाविक तथा तर्कपूर्ण घटना प्रसंगों की योजना—

पुराणों की अलौकिक तथा चमत्कारिक घटनाओं को आधुनिक बुद्धिवादी मानव के लिए ग्राह्य बनाने की दृष्टि से इन कवियों ने अस्वाभाविक घटनाओं को या तो छोड़ दिया है या उनकी युगानुकूल नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है। बौद्धिकता को ही दृष्टि में रखकर पुराणों के अनेक असंगत कथा प्रसंगों का नवीन तर्क के आलोक में परीक्षण किया गया है। अथवा उनके अनौचित्य को स्पष्टत: उभाकर रख दिया गया है। प्रियप्रवास, साकेत, वैदेही वनवास, आदि रचनाओं में चमत्कारिकता के निषेध की विशेष प्रवृत्ति प्राप्त होती है। किन्तु एक बात उल्लेखनीय है कि आगे चलकर पौराणिक कथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त पुराणेतर तत्वों पर इन कवियों का ध्यान इतना अधिक केन्द्रीभूत हो जाता है कि वे घटनाओं की स्वाभाविकता की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सके हैं। कदाचित् यही कारण है कि साकेत के बाद की रचनाएं कौशलकिशोर, साकेत सन्त, दैत्यवंश, रावण महाकाव्य आदि में अलौकिक घटनाओं का वर्णन भी प्राप्त होता है किन्तु सम्पूर्ण कथा वर्णन में नि:सन्देह इनका प्रयास स्वाभाविक घटना-योजना की ओर रहा है।

कुछ पौराणिक प्रबन्ध काव्य

प्रिय प्रवास—

कथा-संक्षिप्ति, अलौकिकता का खंडन, चरित्र का नवीन विकास, प्रियप्रवास की कथा की विशेषता है। कथा आदि, मध्य, अवसान या कार्य कारण श्रृंखला के रूप में पूर्वापर क्रम से वर्णित नहीं है। कृष्ण-जन्म से लेकर मथुरागमन, तथा उद्धव के ब्रजागमन एवं मथुरा प्रत्यागमन के सम्पूर्ण वृत्त का वर्णन और संकेत इस ग्रन्थ में मिलता है किन्तु प्रसंग नियोजन में कवि ने मौलिकता से काम लिया है।

पौराणिक प्रसंग-चयन एवं कथा-नियोजन की नवीनता—

कथा का आधार श्रीमद्भागवतपुराण है। राधा द्वारा पवन-दूत प्रेषण के अतिरिक्त किसी मौलिक घटना की योजना नहीं है। कृष्ण की लीलाएं वही हैं जो श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध में वर्णित हैं किन्तु उनका निरूपण कवि की मौलिक सृष्टि है। कृष्ण कथा की दो ही मुख्य घटनाओं—अक्रूर का ब्रजागमन, उनके साथ कृष्ण, बलराम, नन्द तथा गोपों का मथुरा-गमन, उद्धव-आगमन और प्रत्यागमन— का वर्णन मुख्य रूप में हुआ है — जिसका आधार श्रीमद्भागवत के दो अध्याय हैं।[2] कृष्ण की लीलाओं का वर्णन स्मृति 'संचारी भाव' के माध्यम से हुआ है। कृष्ण के जन्मोत्सव, उनकी शिशु क्रीड़ाओं का वर्णन अष्टम सर्ग में आभीरों के पारस्परिक गुण कथन के माध्यम से हुआ है। कृष्ण की बाललीलाओं में पूतनाबध,[3] तृणावर्त बध,[4]

---

१. लेखक—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' रचना समय, सन् १९१४ ई०

२. अक्रूर का ब्रजागमन—श्रीमद्भागवत १०।३८, उद्धव का ब्रजागमन—श्रीमद्भागवत १०।४७

३. श्रीमद्भागवत दशम स्कंध, अ० ६

४. वही, अध्याय ७

शकटभंजन,[१] यमलार्जुनोद्धार,[२] बकासुरवध,[३] आदि का वर्णन वृजवासीगण अक्रूर के समक्ष करते हैं जिनको वे कृष्ण के ऊपर आई हुई विपत्ति के रूप में समझते हैं। अधिकांश घटनाओं का वर्णन उद्धव के समक्ष होता है। उद्धव के वृजागमन पर नन्द और यशोदा उनके समक्ष अपना दु:ख निवेदन करते हुए — नन्द का यमुना में बह जाने[४] तथा सर्प द्वारा अपनी रक्षा होने[५] की घटना का उल्लेख करते हैं। उसके बाद की कथा का विकास कवि की मौलिक सृष्टि है। उद्धव वृज से ६ मास तक निवास करते हैं। इधर-उधर विचरण करते हुए गोपों या आभीरों की मण्डली के बीच या कभी वृजवासिनियों के निकट पहुंचते हैं। (कृष्ण के साथ निकट का सम्बन्ध होने के कारण) कृष्ण की चर्चा शुरू हो जाती है। वृजवासीगण कृष्ण के विविध लोकसेवी कृत्यों का स्मरण करते हुए उनकी बाल लीलाओं का वर्णन करते हैं। उद्धव के सम्मुख वृजवासियों की दु:ख गाथा का एक एक पृष्ठ खुलता है और साथ ही कृष्ण की विविध असुर संहारक लीलाओं — यमुना के विषाक्त जल,[६] दावानल,[७] अमोघ वर्षा,[८] अघोप नामक भीषण सर्प,[९] विशाल अश्व[१०] एवं व्योमासुर नामक पशु[११] से वृजवासियों

---

१. श्रीमद्भागवत, दशम स्कंध, अध्याय ७
२. वही, अध्याय, १०
३. वही, ,, ११
४. वही, ,, २८
५. वही, ,, ३४
६. कालियदमन, श्रीमद्भागवत, १०।१६
७. दावानल ,, १०।१९
८. गोवर्धनधारण ,, १०।२५
९. अघासुरवध, ,, १०।१२
१०. केशीवध ,, १०।३७
११. व्योमासुर वध ,, १०।३७

की रक्षा का वर्णन भी हो जाता है। एक दिवस उद्धव कालिन्दी तट पर बैठकर लहरों का अवलोकन कर रहे थे कि वहां ब्रज ललनाएं भी आकर उद्धव के समक्ष अपना दु:ख-निवेदन करती हैं। उद्धव को कृष्ण का सन्देश सुनाने का अवसर यहां ही मिलता है। कृष्ण के विरह में व्याकुल गोपियां 'रास'[१] के अपने अद्भुत अनुभवों का वर्णन भी उद्धव के समक्ष करती हैं।

इस प्रकार कृष्ण कथा के बहुविध प्रसंगों को कवि ने अत्यन्त कुशलता से उन दो मुख्य कथाओं के साथ संयुक्त कर दिया है किन्तु यहां एक बात विशेष रूप से स्पष्ट होती है कि घटनाओं का वर्णन कथाओं का मुख्य प्रतिपाद्य नहीं है वरन् वे मनोगत भावों के आधार मात्र हैं। मुख्य कथा-वस्तु तो भावों का वर्णन है और वे भाव सामाजिक कल्याण और व्यक्तिगत अनुभूतियों के हैं।

प्रसंगों एवं घटनाओं की नूतन व्याख्या—

आधुनिक कवि या लेखक से पुराणकथाओं को परम्परागत रूप में वर्णन करने की आशा भी नहीं की जा सकती है। प्रियप्रवास की भूमिका मे भी कवि ने कह दिया है कि " मैंने तो कृष्ण को इस ग्रन्थ में महापुरुष की तरह अंकित किया है ब्रह्म करके नहीं।"

अवतारवाद की भावना के खण्डन और कृष्ण के इस मानवीकरण तथा तत्कालीन विज्ञान से उद्भूत बौद्धिक दृष्टि के विकास के कारण, कवि ने पुराण की अलौकिक एवं चमत्कारपूर्ण घटनाओं की युगानुकूल नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है। अत: अनेक कथा-प्रसंगों के स्वरूप में परिवर्तन हो गया है। कृष्ण की बालक्रीड़ाएं, यहां अलौकिक कृत्य न होकर, मानव-सेवा की

---

१. रास वर्णन, श्रीमद्भागवत, १०।२६-३३

अदम्य भावना से प्रेरित कल्याणकारी कर्म हैं जो उनके साहस, शौर्य, चातुरी एवं अद्भुत वेणुनाद का परिचायक हैं।

१. तृणावर्त, शकटासुर, बकासुर आदि राक्षसों का बध एवं यमलार्जुन-उद्धार प्रसंग का वर्णन कृष्ण के दैनिक क्रिया-कलाप के रूप में प्रस्तुत न होकर सुसंयोग एवं पुण्य-प्रताप का फल है जिससे कृष्ण की रक्षा होती है —

परम-पातक की प्रतिमूर्ति सी ।
अति अपावनतामय-पूतना ।
पय-अपेय पिला कर श्याम को ।
कर चुकी व्रज-भूमि विनाश थी ।
पर किसी चिर-संचित-पुण्य से ।
गरल अमृत अर्भक को हुआ
विषमयी वह होकर आप ही
कवल काल-भुजंगम का हुई । [१]

२. कृष्ण अघोप नामक व्याल, केशी नामक विशाल अश्व, पशुपाल रूप धारी व्योमासुर आदि पशुओं का बध अपने अद्भुत कौशल से करते हैं।

३. श्रीमद्भागवत में कालियदमन प्रसंग का वर्णन भी कृष्ण के अलौकिक कृत्य के रूप में वर्णित है। परन्तु अलौकिकता को बचाते हुए कवि ने कृष्ण के अद्भुत वेणुनाद से ही समस्त सर्पों को वश में करने का वर्णन किया है ——

---

१. प्रियप्रवास, सर्ग २, पृ० १६

ब्रजेन्द्र के अद्भुत-वेणु-नाद से ।
सतर्क संचालन से सु-युक्ति से ।
हुए वशीभूत समस्त सर्प थे
न अल्प होते प्रतिकूल थे कभी ।[१]

४. दावाग्नि प्रसंग का वर्णन कृष्ण के अद्भुत साहस का परिचायक है जबकि कृष्ण उस भीषण अग्नि में एक सुरक्षित मार्ग से प्रवेश करके गोप-मंडली को लेकर बाहर आ जाते हैं ।

५. गोवर्द्धन-धारण प्रसंग को, कवि, स्वाभाविक एवं बुद्धि-सम्मत बनाने के लिए उद्भावना करता है कि— घोर वर्षा में कृष्ण ब्रजवासियों को गोवर्द्धन पर्वत की शरण में निवास करके आत्मरक्षा की सलाह देते हैं । गिरिराज तक ब्रजवासियों को पहुंचाने एवं उनकी सुख सुविधा के लिए कृष्ण की सेवाओं एवं पराक्रम को देखकर ब्रजवासी कहते हैं कि उन्होंने गिरि को ही अंगुली पर धारण कर लिया है ——

लख अपार प्रसार-गिरीन्द्र में ।
ब्रज-धराधिप ब्रज के प्रिय-पुत्र का ।
सकल लोग लगे कहने उसे
रख लिया उंगली पर स्याम ने ।[२]

६. 'रास-प्रसंग' यहाँ कृष्ण एवं ब्रजवासियों के पारस्परिक आमोद-प्रमोद के रूप में (लौकिक कृत्य के रूप में) वर्णित है । कवि 'रास प्रसंग' में कृष्ण के अनेक रूप धारण करने के बदले नवीन स्थापना करता है —

---

१. प्रियप्रवास, सर्ग ११, पृ० १४३
२. वही, सर्ग १२, पृ० १६४

कीसों विभिन्न-दल केवल नारिका था ।
यों ही अनेक दल केवल थे नरों के ।
नारी तथा नर मिले दल थे सहस्रों
उत्कण्ठ हो सब उठे सुन श्याम बातें ।[१]

७. श्रीमद्भागवत के उद्धव ब्रजागमन प्रसंग का वर्णन 'भ्रमरगीत' के रूप में यहां नहीं प्रस्तुत है। यहां भी उद्धव कृष्ण का सन्देश लेकर आते हैं किन्तु उद्धव परम्परागत रूप में योग अथवा ज्ञान का सन्देश नहीं देते। वे गोपियों को अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को त्यागने का सन्देश देते हैं तथा उनसे कृष्ण की मानव-कल्याण की भावना को समझने का आग्रह करते हैं।

८. श्रीमद् भागवत में मथुरा एवं ब्रज के तीन कोस के फासले का उल्लेख है किन्तु इतनी कम दूरी होने पर भी कृष्ण के एक बार आकर ब्रजवासियों को दर्शन न देने के कारण पर प्रकाश नहीं डाला है। उस युग का सहज-विश्वासी और कृष्ण के कर्मों के प्रति आस्थावान् भक्त-मन इसे स्वीकार कर सकता है किन्तु आधुनिक युग का प्रबुद्ध पाठक बिना तार्किक आधार के इसे अंगीकार नहीं कर सकता। अत: कवि लोकसेवा के आदर्श की उद्भावना के द्वारा इस प्रसंग को विश्वसनीय और सम्भाव्य बनाता है ——

अच्छे-अच्छे बहु-फलद औ सर्व लोकोपकारी ।
कार्यों की है अवलि अधुना सामने लोचनों के ।
पूरे पूरे निरत उनमें सर्वथा हैं बिहारी ।
जी से प्यारी ब्रज-अवनि में हैं इसी से न आते ।[२]

---

१. प्रियप्रवास, सर्ग १४, पृ० २१०

२. वही, सर्ग १४, पृ० १६५

६. उद्धव के प्रत्यागमन के पश्चात् व्रजवासीगण कृष्ण के पुनरागमन की आशा छोड़कर निराशा की गर्त में नहीं गिरते हैं वरन् कृष्ण का वियोग यहाँ आत्मिक विश्वास के रूप में प्रकट होता है —

गोपी गोपों जनक-जननी बालिका-बालकों की
चिन्तोन्मादी प्रबल-दु:ख का वेग भी काल पा के ।
धीरे धीरे बहुत बदला हो गया न्यून प्राय: ।
तो भी व्यापी हृदय-तल में श्यामली मूर्ति ही थी ।
वे गाते तो मधुर-स्वर से श्याम की कीर्ति गाते
प्राय: सारा समय चलती बात थी श्याम ही की ।
मानी जाती सुतिथि वह थी पर्व औ उत्सवों की ।
थी लीलाएं ललित जिनमें राधिकाकान्त ने की ।[१]

<u>साकेत</u>[२] —

कथा का स्वरूप—

साकेत की कथा का आधार तुलसीकृत रामचरितमानस है । रामकथा की विविध घटनाओं का वाल्मीकि ने 'प्रकृत' रूप में वर्णन किया है । तुलसी ने अपने आराध्यदेव का जीवनवृत्त होने के कारण राम को देवोचित गरिमा प्रदान करने के लिए उन कथाओं में अनेक परिवर्तन और परिवर्द्धन किया है ।' सिया राम मय सब जग जानी ' के विश्वासी तुलसी ने राम से सम्बद्ध पात्रों के वृत्तों का ही परिष्कार किया है इसीलिए तुलसी ने

---

१. प्रियप्रवास, सर्ग १७, पृ० २८३
२. लेखक—श्री मैथिलीशरण गुप्त : समय सम्वत् १९८८ वि०

उर्मिला तथा कैकेयी के हृदयगत भावों की ओर ध्यान भी नहीं दिया है। किन्तु नवयुग के मानवतावादी कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने महान् से लेकर साधारण पात्रों के अन्दर भी मानवीयता के दर्शन किए हैं। अत: कवि की इस मानवतावादी दृष्टि के कारण भी कथा प्रसंगों में अनेक परिवर्तन उपस्थित हुए हैं। इसके अतिरिक्त कथा-संकुचन की भावना, घटनाओं की तर्क सम्मत व्याख्या, अलौकिकता का निषेध एवं लोकादर्श की स्थापना के लिए परम्परागत राम कथा में अनेक मौलिक उद्भावनाएं हुई हैं —

कथा-संयोजन की नवीनता —

कवि ने प्राचीन कवियों की भांति इतिवृत्तात्मक ढंग से इक्ष्वाकु वंश के वर्णन से कथा का आरम्भ करके राम के राज्याभिषेक तक का वर्णन नहीं किया और न प्रत्येक प्रसंगों का वर्णन ही विस्तार से किया है। वस्तुत: कुछ विशेष भावपूर्ण मार्मिक स्थलों को अपने दृष्टिपथ पर रख कर उनके माध्यम से सम्पूर्ण कथा प्रसंगों का उल्लेख कर दिया है। साकेत नगरी के वर्णन से कथा का प्रारम्भ होकर उर्मिला तक पहुंचता है। लक्ष्मण और उर्मिला के परिहासिक वार्तालाप के मध्य राम के राज्याभिषेक का संकेत मिल जाता है। उसके उपरान्त कैकेयी मंथरा संवाद, कैकेयी की वरयाचना, राम-लक्ष्मण सीता वन प्रस्थान, निषाद मिलन, दशरथ मृत्यु, भरत आगमन तथा चित्रकूट मिलाप तक के प्रसंगों का वर्णन स्वयं कवि ने अपनी ओर से किया है। इसके पश्चात् विरहिणी उर्मिला को त्याग करके राम के साथ वनमें भटकना कदाचित् कवि को प्रिय नहीं था अत: रामादि को चित्रकूट में छोड़कर ~~उर्मिला की~~ उर्मिला की विरहानुभूतियों का वर्णन किया है। बालकाण्ड का सम्पूर्ण वृत-सीता, उर्मिला आदि बहनों का अपने पितृकुल में निवास, बाल क्रीड़ाओं के मध्य सीता द्वारा पिनाक उठा लेना, राम का बाल्यकाल, कौशिक मुनि के साथ राम लक्ष्मण का प्रस्थान, बहन शान्ता द्वारा राम-लक्ष्मण को राखी

बांधना, सबाहु वध, धनुष यज्ञ, फुलवारी प्रसंग उर्मिला और सीता का पूर्वानुराग, धनुष भंग और परशुराम क्रोध आदि प्रसंगों का वर्णन कवि उर्मिला के द्वारा स्मरण संचारी भाव के माध्यम से व्यक्त कराता है जबकि उर्मिला सरयू को साक्षी करके अपने विरहजनित दु:खों का वर्णन करते समय इन पूर्व-घटनाओं का स्मरण करती है। अनसूया प्रसंग, दण्डकवन में वास, विराधवध, शरभंग, सुतीक्ष्ण प्रसंग, अगस्त्याश्रम में पहुंचना, दिव्य शस्त्र की प्राप्ति, शूर्पणखावध, खरदूषण-वध आदि प्रसंगों की सूचना एक व्यवसायी अयोध्या में शत्रुघ्न को दे जाता है और साथ ही वह संजीवनी-बटी भी देता है। सीताहरण से लेकर लक्ष्मण को शक्तिबाण लगने तक के वृत्तान्त का वर्णन हनुमान भरत से करते हैं जबकि वह संजीवनी के लिए पर्वत की ओर जा रहे थे और भरत के बाण से आहत होकर नीचे आ जाते हैं। इसके पश्चात् की घटनाएं- लक्ष्मण का जीवित होना, राम-रावण युद्ध, हनुमान का मेघनाद की यज्ञशाला में जाना और मेघनाद रावणवध, राम के अयोध्या आगमन की घटनाओं को वशिष्ट मुनि अपने योगदृष्टि के प्रभाव से साकेतवासियों को दिखाते हैं।

इस प्रकार रामकथा में पूर्णता लाने के लिए कवि ने परम्परागत कथा के अधिकांश प्रसंगों का वर्णन किया है। किन्तु कवि के कथा नियोजन के उपर्युक्त पद्धति के कारण कथा में स्वभावत: संक्षेप आ गया है और उसके पास अन्य नवीन प्रसंगों के विकास के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है। वस्तुत: उपर्युक्त विभिन्न प्रसंगों के वर्णन में तुलसीदास ने अन्तिम रूप में सब कुछ कह दिया था। आधुनिक कवि द्वारा उन प्रसंगों का वर्णन पृष्ठपोषण मात्र था अत: कथा को नीरसता से बचाने के लिए भी कवि ने ये उद्भावनाएं कीं।

मौलिक प्रसंग—

१. अपने उद्देश्यानुसार उर्मिला को प्रमुखता प्रदान करने के लिए कवि ने अनेक नवीन प्रसंगों की कल्पना की है। उर्मिला से सम्बन्धित सभी प्रसंग कवि की मौलिक उद्भावना है। कथा का प्रारम्भ ही उर्मिला लक्ष्मण संवाद

से होता है और अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना, राम के 'राज्याभिषेक' की सूचना कवि उर्मिला के द्वारा ही देता है। फुलवारी प्रसंग में सीता के ही साथ उर्मिला के पूर्वानुराग का भी वर्णन है, दशरथ की मृत्यु के समय उर्मिला सबसे अधिक रोती है।[१] वनवास प्रसंग के समय उर्मिला को भी उपस्थित रखना एवं चित्रकूट में सीता की चातुरी से उर्मिला लक्ष्मण के साक्षात्कार की कल्पना के मूल में द्विवेदी जी की ये पंक्तियां रही होंगी --- हाय वाल्मीकि, जनकपुर में तुम उर्मिला को एक बार वैवाहिक बधूवेश में दिखाकर चुप हो बैठे। x x x x अयोध्या आने पर ससुराल में उसकी सुध चाहे आपको न आई तो न सही पर क्या लक्ष्मण के वन प्रयाण के समय भी उसके दुखानुमोचन करना आपको उचित नहीं जंचा। x x x चलते समय लक्ष्मण को उसे एक बार आंख भर देख भी नहीं लेने दिया।

नवम् एवं दशम् सर्ग में उर्मिला का विरह वर्णन, द्वादशसर्ग में नगरवासियों की सैन्य-सज्जा के समय उर्मिला सहसा उपस्थित होकर उद्बोधन करना एवं द्वादश सर्ग में उर्मिला-लक्ष्मण के पुनर्मिलन आदि प्रसंगों का वर्णन कवि की अपनी कल्पना ही है अन्यथा वाल्मीकि ने तो बालकाण्ड में राम-सीता के विवाह प्रसंग में केवल चार स्थलों पर उर्मिला का नाम लिया है।[२] इसके अतिरिक्त ससुराल में चारों बहनों के वधू वेश में गृहप्रवेश के समय एक स्थान पर उर्मिला का भी उल्लेख है।[३]

---

१. मां कहां गये वे पूज्यपिता ?
करके पुकार यों शोक-सिता
उर्मिला सभी सुध बुध त्यागे
जा गिरी कैकेयी के आगे।
---साकेत सर्ग ६। पृ० १७६

२. बालकाण्ड ७१।२०, २१, २२, ७२।३।७३।३७

३. वही, ७७।१४

तुलसी ने भी केवल विवाह प्रसंग पर एक बार उर्मिला का नामोल्लेख किया है।

माण्डवी का वृत्त भी कवि की अपनी उद्‌भावना है। उर्मिला को अपनी सहृदयता का दान करते समय कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों की भाँति अन्य त्यागमयी पात्री माण्डवी को भुलाया नहीं है और एकादश सर्ग में माण्डवी के अन्तर्भावों का भी चित्रण किया है।

२. चित्रकूट सभा में कैकेयी द्वारा आत्मग्लानि के प्रकटीकरण का जो रूप 'साकेत' में वर्णित है वह पूर्ववर्ती किसी भी रामकथा काव्य में उपलब्ध नहीं है। परम्परा से निन्दनीय कैकेयी जैसे पात्र के प्रति सहानुभूति की भावना कवि के मानवतावादी दृष्टिकोण का परिणाम है।

३. व्यवसायी द्वारा संजीवनी देने एवं हनुमान द्वारा मार्ग में ही भरत से प्राप्त करने का वृत्तान्त सर्वथा मौलिक है। कथा संकोच की दृष्टि से ही कवि ने यह उद्‌भावना की है। हनुमान को संजीविनी अयोध्या में दिलवाकर उस समयावकाश में सीताहरण से लेकर लक्ष्मण को शक्ति लगने तक के वृत्त का वर्णन कराकर कथा के रिक्त स्थानों की पूर्ति कर लेता है।

४. राज्याभिषेक के समय भरत की अनुपस्थिति पर कवि ने विशेष रूप से प्रकाश डाला है। बाल्मीकि रामायण में दशरथ ने स्पष्ट रूप में कह दिया कि वह भरत के आगमन के पूर्व ही राम का राज्याभिषेक कर देना चाहते हैं —क्योंकि धर्मात्मा और सज्जनों का चरित्र भी चंचल हो जाता है।[1] तुलसी ने इस प्रसंग को अपनी मौनता द्वारा ढाँकने का प्रयत्न किया है। पर भरत की अनुपस्थिति की ओर संकेत कर देते हैं —

---

१. रामायण अयोध्या काण्ड, ४।२५, २६, २७

भरत आगमनु सकल मनावहिं , आवहुँ वेगि नयन फलुपावहिं ।

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

राम सीय तनु सगुन जनाए । फरकहिं मंगल अंग सुहाए ।
पुलकि सप्रेम परस्पर कहहीं । भरत आगमनु सूचक अहहीं ।[१]

किन्तु गुप्त जी ने इस प्रसंग को नवीन तर्क द्वारा आधुनिक बुद्धिवादीयुग के पाठकों के लिए ग्राह्य बनाने का प्रयास किया है । द्वितीय सर्ग में ही लक्ष्मण इस प्रसंग पर विशेष रूप से प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि दशरथ राम को राज्य देने के लिए आतुर हैं किन्तु अन्य शुभलग्न न होने के कारण भरत की अनुपस्थिति में राज्याभिषेक का आयोजन हो रहा है —

बताते थे लक्ष्मण यह भेद,
कि इसका है हम सबको खेद ।
किन्तु अवसर था इतना अल्प ,
न आ सकते थे शुभ संकल्प ।
परे थी और न ऐसी लग्न,
पिता भी थे आतुरता मग्न ।[२]

दशरथ की आतुरता के कारण पर भी कवि प्रकाश डाल देता है कि मुनि द्वारा दिए गए `शाप ` को वे भरत के वियोग में निष्कृति मान लेते हैं —

अस्तु यह भरत विरह अवशिष्ट
दु:खमय होकर भी था इष्ट ।

---

१. मानस, अयोध्याकाण्ड, १ ला विश्राम
२. साकेत द्वितीय सर्ग, पृ० ५६, संस्करण, २०१४ वि०

इसी मिष पा जाऊं चिर शान्ति
सहज ही समझूं तो निष्क्रान्ति ।[1]

६. कवि मन्थरा की दुर्बुद्धि के मूल में देवताओं द्वारा प्रेरित सरस्वती के प्रभाव को नहीं देखता है वरन् इस प्रसंग को अधिक वैज्ञानिक एवं बुद्धि सम्मत बनाने के लिए मंथरा के मन का मनोवैज्ञानिक चित्रण करता है।

७. दशरथ की मृत्यु के पश्चात् उनकी रानियां पति के साथ सहमरण का प्रस्ताव रखती हैं। कदाचित् राम कथा की परम्परा में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने ही सर्व प्रथम इस प्रसंग की ओर ध्यान दिया है। इसके मूल में कवि की आदर्शवादी दृष्टि है। राम की माताओं की गरिमा के अनुकूल भी यही था।

८. सीता की अग्नि परीक्षा का वर्णन नहीं है किन्तु लंकावास के समय स्वयं सीता ही इस ओर संकेत कर देती हैं —

शुद्ध करूंगी मैं इस तनु को
अग्निताप में अपने आप
भाषण करने में भी मुझको
लग न जाय हा ! मुझको पाप ।[2]

९. द्वादश सर्ग में साकेत वासियों द्वारा राम के सहायतार्थ रणसज्जा का वर्णन सर्वथा नवीन कल्पना है। कवि को सह्य नहीं था कि राम को संकटापन्न अवस्था में देखकर भी भरत आदि मौन होकर बैठे रहें।

युग का प्रभाव—

तत्कालीन राष्ट्रीय भावना की छाप कवि के मन पर कितनी है यह उनके "भारत-भारती" से ही प्रकट होती है। साकेत ग्रन्थ की रचना

के मूल में भी इस राष्ट्रीयता की भावना की प्रेरणा है जिसके अनुसार `प्राचीन गौरव का स्मरण` भी उक्त राष्ट्रीयता का ही अंग है। वस्तुत: राम के सम्पूर्ण वृत्त का पुनरांकन ही अतीत के गौरव की स्थापना के लिए हुआ है। अतीत के गौरवमय रूप की ओर कवि ने अनेक स्थलों पर संकेत किया है। वस्तुत: तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टि में रख कर कवि ने राम-रावण युद्ध की प्रतीकात्मक अभिव्यंजना की है और इसे दो संस्कृतियों ---आर्य संस्कृति एवं कौणप संस्कृति[१]— का संघर्ष माना है ——

> निज संस्कृति समान आर्यों की
> आज रक्षा करते थे।[२]

इसी प्रकार सीता को कवि ने `भारत- लक्ष्मी` के रूप में देखा है —

> भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में,
> सिन्धु पार वह बिलखती है व्याकुल मन से।[३]

राक्षसों के वध के पश्चात् राम द्वारा सभ्यता की स्थापना करते समय[४] अपने `आर्यत्व का अभिमान` भी उस राष्ट्रीय भावना का ही एक रूप है। अयोध्या की सीमा पार करते समय राम द्वारा जन्म भूमि का स्तवन[५] एवं द्वादशसर्ग में साकेतवासियों द्वारा रण-सज्जा के द्वारा आधुनिक `देश-प्रेम` की भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

---

१. कौणप संस्कृति के माध्यम से कवि ने विदेशी संस्कृति की ओर संकेत किया है।

२. साकेत, ११।४१४

३. ,, १२।४५४

४. आर्य सभ्यता हुई प्रतिष्ठित
 आर्यधर्म आश्वस्त हुआ। साकेत ११।४१५

५. जन्म भूमि, ले प्रणति और प्रस्थान दे
 हमको गौरव, गर्व तथा निज मान दे।

—साकेत ५।१३३

परम्परागत पौराणिक कथा के साथ तत्कालीन राष्ट्रीय सांस्कृतिक आन्दोलन की कार्य प्रणालियों की झलक भी मिल जाती है। राम के वनप्रस्थान के समय साकेत वासियों द्वारा राम के रथ के सम्मुख लेट जाने में सत्याग्रह-आन्दोलन, चित्रकूट वास के समय सीता द्वारा कोल, भिल्ल, किरात को सहानुभूति प्रदान करने, समानता की भावना एवं उन्हें स्वावलम्बन की शिक्षा देने में[1] तत्कालीन कुटीर उद्योगों के विकास के लिए गांधी के प्रयासों की झलक मिल जाती है। इसी प्रकार उर्मिला द्वारा लंका से सोना लाने का विरोध करना तत्कालीन विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का परिचायक है —

गरज उठी वह —नहीं नहीं पापी का सोना,
यहां न लाना, भले सिन्धु में वहीं डुबोना।

× × × × × × × ×

सावधान वह अधम धान्य-सा धन मत छूना
तुम्हें तुम्हारी मातृभूमि ही देगी दूना।

(१२।४७४)

कौशल किशोर[2] —

कथा का प्रारम्भ शेषशय्याशायी-विष्णु के समक्ष रावण के अत्याचार से दु:खित पृथ्वी की (भय से अपने उद्धार की) प्रार्थना से होता है।

---

१. तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में।
आओ हम कातें बुनें गान की लय में।
निकले फूलों का रंग, ढंग से ताया।
मेरी कुटिया में राज भवन मनभाया। —साकेत ८, पृ० २२७

२. लेखक—बलदेवप्रसाद मिश्र, समय १९३६ ई०

विष्णु का राम के रूप में अवतरित होने का आश्वासन देना, राम,लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का जन्म, उनका बाल्यकाल, मुनियों के सहायतार्थ विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण का यज्ञ में सम्मिलित होना, ताड़का वध, राक्षसों से युद्ध, जनकपुरी में धनुषयज्ञ, राम-लक्ष्मण का धनुष यज्ञ में सम्मिलित होना, फुलवारी प्रसंग, राम सीता का पूर्वानुराग, विवाह तथा अयोध्या प्रत्यागमन आदि प्रसंगों को कवि ने स्वीकार किया है।

उपर्युक्त विभिन्न प्रसंगों के वर्णन में कवि ने मानस का ही आधार ग्रहण किया है,यहां तक कि कहीं-कहीं मानस के प्रसंगों को यथातथ्य रूप में भिन्न शब्दावली में प्रस्तुत किया है।

प्राचीन कथा की नवीन व्याख्या—

यद्यपि इस रचना में किसी नवीन घटना अथवा प्रसंग का वर्णन नहीं है किन्तु नवीनता का अन्वेषक आधुनिक कवि सम्पूर्ण राम-वृत्त को नवीन दृष्टि से देखता है —

१. वस्तुत: युग की चिन्तन धारा से प्रेरणा ग्रहण करके कवि ने कथा को राजनैतिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इस युग के साम्राज्यवादी अंग्रेजों के सदृश उस युग का रावण भी राम के आविर्भाव के पूर्व भारत के पारस्परिक फूट का लाभ उठाकर भारत को हस्तगत करना चाहता है। रावण द्वारा मुनियों के आश्रम पर किए गए अत्याचार एवं अन्य आतंकवादी कृत्य उसके राक्षसत्व का प्रतीक नहीं वरन् राजनैतिक दांव थे। आधुनिक युग के मैकाले की तरह वह भी सर्वप्रथम शिक्षा संस्थाओं (तत्कालीन मुनि-आश्रम ही शिक्षा संस्थाओं के रूप में थे) पर आक्रमण करके भारतीय संस्कृति को समाप्त करने का आन्तरिक षड्यंत्र करता है। इस तरह एक ओर उस युग के वातावरण पर आधुनिक

भारतीय-राजनीति का प्रतीप है दूसरी ओर गांधी के नेतृत्व के प्रतीक राम हैं जिनके प्रयास से भारत में एकछत्र राज्य की स्थापना होती है ।

२. परशुराम द्वारा क्षत्रिय-विनाश को नवीन दृष्टि से देखा है । रामजन्म के पूर्व के भारतीय राजनीति पर प्रकाश डालते हुए कवि परिकल्पना करता है कि तत्कालीन नरेशों में परस्पर प्रतिस्पर्धा एवं वैमनस्य था। अत: देश को विनाश से बचाने के कारण ही वह क्षत्रियों का विनाश करते हैं ।

३. सीता विवाह-प्रसंग को भी नवीन दृष्टि से देखा गया है । भारत को एक सूत्र में बांधने के लिए विश्वामित्र द्वारा किया गया प्रयत्न है, जिससे विवाह बन्धन द्वारा पश्चिम का सूर्यकुल तथा पूर्व का निमिकुल परस्पर एक हो जाएगा ।

४. राम एवं सीता के पूर्वानुराग को विशेष विस्तार मिला है । बारहवें सर्ग में केवल राम के पूर्वानुरागजन्य अनुभूतियों का वर्णन है । सीता विरह में व्याकुल राम पवन से सन्देश भेजते हैं । यहां तक कि वह स्वप्न में अपने भावी विवाह का संकेत भी पा जाते हैं ।

५. अहिल्या से सम्बन्धित वृत्तान्त का भी नवीन तर्क के आलोक में परीक्षण किया है । कवि के शब्दों में — "विज्ञान की भाषा में हम कह सकते हैं कि प्राकृतिक क्रियाओं की संचालिका विद्युत् शक्ति ही देवता है । ऐसे सब देवों में इन्द्र की ~~प्राकृतिक क्रियाओं की संचालिका~~ के रूप में विद्युत (की संचालिका) शक्ति का महत्व विशेष है । ...... काव्य की भाषा में वह वज्र-धारी और बादलों का देवता है । इधर युवती अहिल्या कठोर तपस्वी गौतम की सती साध्वी पत्नी थी । एक दिन मेघाच्छादित निशा में गौतम ऋषि निशीथ के समय ब्रह्म मुहूर्त भ्रम से स्नान हेतु बाहर चले गए तो बिजली ने अपनी प्रभा दिखाई — इन्द्र ने अपना वैभाव दिखाया । यह देख एकाकिनी बालिका सरल हृदय अहिल्या में स्वाभाविक ही पति साहचर्य की इच्छा हुई ।

लौटते समय गौतम ने उसके उद्गार सुन लिए । निष्ठुर तपस्वी को अहिल्या हृदय की यह उच्छृंखलता बहुत बुरी लगी । मुनि ने पत्नी तथा परिस्थिति दोनों को ही दोषी ठहराकर इधर अहल्या को उधर इन्द्र को शाप दिया ।

इस तरह एक ओर इन्द्र के चरित्र का उद्धार होता है दूसरी ओर अहल्या के मर्यादा की रक्षा भी हो जाती है। अहल्या के पाषाणी होने जैसी असम्भव घटना-प्रसंग को नवीन दृष्टि से देखा है। समाज तिरस्कृत होने के कारण पश्चाताप की दशा में तपस्या के लिए पाषाणी-सी जड़ होकर पड़ी थी । राम ने उसे पाषाणी से `तार` कर मानवी नहीं बनाया वरन् राम जैसे लोक नायक, आदर्श मानव द्वारा प्रश्रय दिए जाने के कारण अहल्या को सामाजिक स्वीकृति मिल गई थी, अत: उनके मन का `पाषाणत्व दूर हो जाता है।

नहुष[१]—

कथा का आधार—

नहुष की कथा विस्तार से देवीभागवत,[२] ब्रह्मवैवर्त पुराण[३] तथा महाभारत[४] में प्राप्त होती है। कुछ एक स्थलों को छोड़कर महाभारत एवं देवी भागवत की कथा में विशेष अन्तर नहीं है किन्तु ब्रह्मवैवर्त-पुराण में यह कथा भिन्न रूप में प्राप्त होती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में इन्द्र के

---

१. मैथिलीशरण गुप्त, समय संवत् १९९७ वि०

२. देवी भागवत, स्कन्ध ६।७—६

३. महाभारत उद्योग पर्व , अध्याय १०-१७

४. श्री ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीकृष्ण जन्मखण्ड, अध्याय ५९-६०

ब्रह्म हत्या का कारण गुरु अपमान था । एक समय दर्प के कारण इन्द्र गुरु के आगमन पर अपने राजसिंहासन से उठे नहीं थे । यद्यपि गुरु ने स्नेहवश शाप नहीं दिया , किन्तु शाप न देने पर भी अपराधी शाप का भागी बनता ही है । अत: गुरु का अपमान करने के कारण ब्रह्महत्या के अपराधी इन्द्र भय से एक पवित्र सरोवर के कमलनाल में छिप जाते हैं । इन्द्र की अनुपस्थिति में नहुष ने बल-पूर्वक इन्द्र के राज्य पर अधिकार कर लिया । ब्रह्मवैवर्त पुराण का नहुष अधिक दुराचारी है । वह रजस्वला शची पर भी बलात्कार करना चाहता है ।

कवि ने इस कृति में महाभारत की कथा का ही आधार ग्रहण किया है । महाभारत के ही अनुसार वृत्रासुरवध, इन्द्र का ब्रह्महत्या के भय से मानसरोवर में जाकर छिपना, नहुष की राज्यप्राप्ति, पुन: शची को ही अपने कामासक्ति का लक्ष्य बनाने के कारण स्वर्ग से पतन आदि प्रसंगों को स्वीकार करके भी इनका पूर्वापर क्रम से वर्णन नहीं किया वरन् शची, उर्वशी, नहुष आदि के माध्यम से कवि गूढ़ रूप में इन घटनाओं का संकेत देता है । वस्तुत: कथा-वर्णन कवि का विशेष उद्देश्य भी नहीं है : उसका ` प्रतिपाद्य` ही इस लघु प्रबन्धकाव्य की मुख्य कथावस्तु है ।

कथागत नवीनताएं —

कवि ने कथा महाभारत से ग्रहण की है किन्तु जिस संदर्भ में इस कथा का प्रयोग किया है वह कवि की मौलिकता है । यहां कुकृत्यों के कारण नहुष को नरक भोगता हुआ दिखाकर किसी प्रकार का नैतिक उपदेश नहीं दिया है । वरन् नरक से भी उठकर देवत्व के आसन तक पहुंचने की मान-वीय चेष्टा पर प्रकाश डालना कवि को विशेष अभिप्रेत था । अतएव कवि ने अनेक प्रसंगों को परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया है —

१. महाभारत तथा पुराणों में नहुष जैसे प्रतापी नृप के पतन का विशेष कारण नहीं दिया गया है । इन्द्र का पद पाकर उसका मोहान्ध या कामासक्त हो जाना स्वाभाविक था, किन्तु आधुनिक युग का

बुद्धिवादी कवि उसके इस आत्मपतन के मूल में मनोवैज्ञानिक आधार की संभावना देखता है। एक ओर देवलोक में नरलोक जैसी परिवर्तनशीलता या नवीनता नहीं, दूसरी ओर उर्वशी द्वारा नहुष पर मोहपाश डालने के प्रयत्न से नहुष का रिक्त मन बार-बार इधर-उधर दौड़ता है —

हम परिवर्तमान, नित्य नये हैं तभी,
ऊब ही उठेंगे कभी एक स्थिति में सभी ।[१]

इसी कारण वह शची की ओर भी झुकता है और सोचता है—

असुर पुलोम-पुत्री इन्द्राणी बने जहां
नर भी क्यों इन्द्र नहीं बन सकता वहां ?[२]

२. कथा संकोच के लिए कवि ने अनेक प्रसंगों को छोड़ भी दिया है। इन्द्राणी का बृहस्पति की शरण में जाना और बृहस्पति की सलाह पर कमलनाल में स्थित इन्द्र के पास जाना[3] आदि प्रसंगों का वर्णन नहीं है। यहां देवसभा नहुष के पक्ष में निर्णय देती है तो महाभारत या पुराण के सदृश यहां इन्द्राणी भय से कांपती नहीं है वरन् अपने सतीत्व के तेज से प्रज्वलित होकर बोल उठती है —

जाकर नहुष से अकेली ही कहूंगी मैं
लड़ न सकूंगी तो पदों पर पढ़ूंगी मैं।[४]

३. महाभारत की तरह यहां नहुष ऋषियों को पैर से नहीं मारता वरन् उसका पैर पटकने के कारण एक ऋषि को लग जाता है।

---

१. नहुष, पृ० २७
२. ,, पृ० ५०
३. महाभारत उद्योगपर्व अ० १५ श्लोक ४
४. नहुष, पृ० ५८

बार बार कन्धे फेरने को ऋषि झटके
आतुर हो राजा ने सरोष पैर पटके ।
क्षिप्त पद हाय एक ऋषि को जा लगा ।
सातों ऋषियों में महाक्षोभानल आजगा ।[१]

४. नहुष के पश्चाताप की कल्पना कवि की मौलिकता है—

गिराना क्या भी उसका उठा ही नहीं जो कभी ?
मैं ही उठा था आप गिरता हूं जो अभी
फिर भी उठूंगा और बढ़ के रहूंगा मैं
नर हूं पुरुष हूं मैं चढ़के रहूंगा मैं ।[२]

वैदेही-बनवास[३]—

कथा का स्वरूप—

जैसा कि ग्रन्थ के नाम से प्रकट होता है कवि ने सीता बनवास की घटना को ही स्वीकार किया है —सम्पूर्ण राम कथा नहीं । राम, लक्ष्मण एवं सीता के अयोध्या प्रत्यागमन के पश्चात् एक दिन की घटना से कथा का प्रारम्भ होता है —राम से पारस्परिक वार्तालाप के मध्य सीता लंकादहन की घटना का स्मरण करतीएक दिन जब राम अपने सदन के चित्रों का निरीक्षण कर रहे हैं एक सेवक सीता की निन्दा में कहे गए `रजक` के

---

१. नहुष, पृ० ६३

२. नहुष, पृ० ६६

३. पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'; समय —संवत् १६८० वि०

कथन की सूचना देता है। उसके पश्चात् ही सीता - परित्याग, लवकुश जन्म, सीता का अयोध्या-प्रत्यागमन, तथा सीता-मृत्यु का वर्णन है। इन विभिन्न प्रसंगों के वर्णन में कवि ने बाल्मीकि-रामायण का आधार ग्रहण किया है किन्तु स्वाभाविकता एवं तार्किक घटना-विधान की योजना के लिए प्राचीन प्रसंगों की नवीन व्याख्या तथा नवीन प्रसंगों की कल्पना की है ---

१. रामायण की अनेकानेक घटनाओं में राम द्वारा सीता परित्याग के औचित्य को इस युग का बुद्धिवादी मानव स्वीकार नहीं कर पाता है। अत: परम्परागत असंगत कथा प्रसंग के औचित्य की स्थापना के लिए सीता-परित्याग से सम्बन्धित प्रसंगों का संशोधन किया है।

कवि सीता-परित्याग के मूल कारण के रूप में केवल `रजक` के कथन को पर्याप्त नहीं समझता अत: इसके मूल में राजनैतिक कारणों की परिकल्पना भी करता है। इसके लिए वह नवीन उद्भावना करता है कि सिन्धु के पार गन्धर्वों का राज्य है जो जाति से गन्धर्व होकर भी कर्मों से राक्षस हैं। कैकय नरेश ने उनके दुराचार को शान्त करने के लिए उनका दमन किया था। उस समर के संचालक भरत थे। अत: ये गन्धर्व चिढ़ कर ही सीता के विरुद्ध ऐसी अफवाह फैला रहे हैं। दूसरे कारण के रूप में मधुरामण्डल के लवणासुर का उल्लेख किया है जो सीता को दनुकुल का कहता है। अत: इस राजनैतिक कुव्यूह में विवश होकर ही राम सीता को बनवास देते हैं।

२. रामायण तथा अन्य रामकथा साहित्य में अपने निष्कासन से अनभिज्ञ सीता को छल से वन में भेज दिया जाता है। कवि इस असंगत घटना विधान में भी संशोधन करता है। यहाँ सीता-परित्याग का वर्णन नहीं है वरन् उपर्युक्त कारणों से अवगत होने पर स्वयं सीता ही स्वेच्छा से अयोध्या महल को छोड़ देती हैं।

३. सीता-बनवास के पश्चात् भी शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण बाल्मीकि आश्रम पर आते हैं। अत: सीता और अयोध्या का सम्पर्क बना रहता है।

४. शम्बूक-बध के निमित्त राम का पंचवटी की ओर जाना, वहां सीता की स्मृति हो आना और बनदेवी का प्रकट होकर सीता के सतीत्व की प्रशंसा करने की घटना कवि की कल्पना मात्र है।

५. अश्वमेध-यज्ञ के समय सीता के अयोध्या आगमन की घटना का वर्णन बाल्मीकि रामायण के अनुसार है। इस प्रसंग का वर्णन अन्य रूप में भी मिलता है। अनेक-रामकथा साहित्य में राम तथा लवकुश युद्ध का वर्णन भी प्राप्त है। यहां कवि ने वाल्मीकि रामायण के अनुसार युद्ध का वर्णन नहीं किया है।

६. रामायण अथवा अन्य प्राचीन और अर्वाचीन रामकथा साहित्य के अनुसार राम-सीता के पुनर्मिलन के अवसर पर सीता के पृथ्वी-प्रवेश का वर्णन है। सीता की मृत्यु के प्रसंग को स्वाभाविक तथा लौकिक घटना के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सीता की मृत्यु को मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करके कवि उद्भावना करता है कि हर्षातिरेक में सीता राम का चरण-स्पर्श करते ही निर्जीव हो जाती हैं —

ज्यों ही पतिप्राणा ने पति पद्म का।
स्पर्श किया निर्जीव मूर्ति सी बन गई।।
और हुए अतिरेक चित उल्लास का।
दिव्य ज्योति में वे पल में हुई।[१]

<u>दैत्यवंश</u>—[२]

<u>कथा का स्वरूप</u>— कथा-प्रणयन के मूल में स्थित प्रेरणा के मूल में 'मेघनाद बध' का उल्लेख किया गया है, किन्तु कवि ने ग्रन्थ के कथा निर्माण की प्रेरणा 'कालिदास' के 'रघुवंश' से भी ग्रहण की है। रघुवंश के अनु-

---

१. वैदेही बनवास, पृ० २५१

२. लेखक—श्री हरिदयालु सिंह, समय, सन् १९४० ई०

करण पर कवि ने सम्पूर्ण दैत्यवंश को ही अपने ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय बनाया है। रघुवंश की तरह दैत्यकुल के छः नरेशों—हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, विरोचन, बलि, बाण और स्कंद— से सम्बन्धित कथा का वर्णन हुआ है। इन नरेशों से सम्बन्धित कथा के सूत्र श्रीमद्भागवत तथा पुराणों में भी प्राप्त हो जाते हैं किन्तु ये कथाएं परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी भिन्न स्थलों एवं भिन्न संदर्भों में वर्णित है। श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध में दिति-अदिति के सन्तानों के वर्णन-प्रसंग में दैत्यवंश के नरेशों की वंश परम्परावली का वर्णन बाणासुर तक किया गया है।

दिति गर्भ से एक ही समय में उत्पन्न हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु के जन्म-वर्णन से ग्रन्थ का प्रारम्भ होता है। हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु के दिग्विजय तथा वाराहरूपधारी विष्णु द्वारा हिरण्याक्षवध तक की घटना का वर्णन श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध[1] के अनुसार है। हिरण्य-कशिपु-की सम्पूर्ण कथा— तपस्या द्वारा शंकर वरप्राप्ति, प्रह्लाद से विरोध, ईश्वर भक्तों के प्रति अत्याचार, नृसिंह रूपधारी विष्णु द्वारा उनका उनका वध, तथा प्रह्लाद के राज्याभिषेक—का वर्णन भागवत के सप्तम स्कंध में प्राप्त होता है।[2] प्रह्लाद पुत्र विरोचन की कथा किसी भी पुराण में विस्तार से नहीं प्राप्त है। दैत्यकुल की वंशावली का उल्लेख करते समय विरोचन का नाम भी आ गया है। एक अन्य स्थल पर बलि की प्रशंसा करते समय उनके पिता विरोचन के सम्बन्ध में उल्लेख है कि उन्होंने ब्राह्मणवेशधारी देवताओं को उनकी याचना पर सम्पूर्ण आयु दे दी थी[3]। स्कंध पुराण में भी एक स्थल पर

---

१. ~~लेखक—श्री हरिश्यामु सिंह, समय सन् १६४० ई०~~

१. श्रीमद्भागवत पुराण, अध्याय, १७-१६

२. ,, अध्याय २। १२

३. श्रीमद् भागवत, अष्टम स्कंध, अध्याय १६, श्लोक १४

वर्णन है कि उन्होंने ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र को अपना मुकुट मंडित सर उतार कर दे दिया था।[१] दैत्यकुल के सबसे उदात्त चरित नायक बलि तथा तत्संबंधी वृत्तान्त अनेक पुराणों में प्राप्त होता है, जिनमें किंचित परिवर्तन के होते हुए भी पर्याप्त साम्य है। श्रीमद्भागवत के अष्टम अध्याय में बलि की स्वर्ग-विजय, वामन द्वारा बलि को छलना, एवं बलि के पाताल लोक गमन का वर्णन अत्यन्त विस्तार से प्राप्त होता है।[२] समुद्र मंथन की घटना भी श्रीमद्भागवत एवं अन्य पुराणों में प्राप्त होती है।

बलि पुत्र बाणासुर का वर्णन उषा-अनिरुद्ध परिणय एवं विवाह प्रसंग में आता है। बाणासुर पुत्र स्कंध का जीवन वृत्त पुराणों में विशेष विस्तार से नहीं प्राप्त है।

उपर्युक्त विभिन्न स्थलों से सामग्री ग्रहण करके कल्पना के सहयोग से कवि ने अपने ग्रन्थ की कथा का ताना-बाना तैयार किया है।

कथागत नवीन प्रयोग—

कथा की वर्णन प्रणाली एवं भाषा का रूप परम्परागत होते हुए भी दैत्यवंश के कथा का रूप अपनी तार्किकता के कारण नवीन है। दैत्यनरेशों से सम्बन्धित जिन कथांशों को कवि ने अपने महाकाव्य में स्वीकार किया है वे अपने आधारग्रन्थ श्रीमद्भागवत से भिन्न रूप में वर्णित हैं।

---

१. स्कंधपुराण, माहेश्वर खंड, केदारखंड, अ० १८, श्लोक ३६-३६

२. श्रीमद्भागवत, अष्टम स्कंध, १५-२३

युगों से सुर-असुर नाम से विभाजित दो वर्गों में देवता ही अब तक विशेष आदर के भागी रहे हैं और दैत्यवंश को सामान्यत: निकृष्ट एवं अत्याचारी ही माना जाता रहा है। कवि ने दैत्यों के प्रति जिस मानवी सहानुभूति, एवं विवेचन बुद्धि के आधार पर न्यायपूर्ण सद्गति प्रदान की है, उसके लिए उसे परम्परागत कथा में अनेक परिवर्तन करने पड़े हैं। वस्तुत: पुराणों के नायक को प्रतिनायक (कदाचित् खलनायक के रूप में भी) के रूप में प्रस्तुत करने एवं पुराणों के प्रतिनायक को नायक के रूप में स्वीकार करने और पुराणों के इन खलनायकों में नायकोचित उदात्त-गुणों के सन्निवेश के लिए कवि ने उनसे सम्बन्धित परम्परावादी घटनाओं की नवीन, अर्थयोजना तथा अनेक नवीन प्रसंगों की कल्पना की है। प्राय: कवि ने उन्हीं प्राचीन प्रसंगों को स्वीकार किया है जिनसे देवताओं के छल का विशेष परिचय मिलता है।

कवि ने सुर-असुर पक्ष को मानव स्वभाव की दो प्रवृत्तियों के रूप में देखा है। आधुनिक मनोविज्ञान तथा जीवविज्ञान के अनुसार मानव जाति के विकास क्रम में मनुष्य की मानसिक शक्तियां उत्तरोत्तर अधिक विकसित (जटिल) और शारीरिक शक्ति क्रमश: क्षीण होती जा रही है जो इस विकास में पीछे हैं वह बुद्धि में भी पिछड़े हैं, किन्तु शारीरिक दृष्टि से वह अधिक सशक्त भी हैं। इस धारणा के अनुसार कवि ने यह प्रदर्शित किया है कि असुर शारीरिक दृष्टि से देवताओं से बढ़चढ़ कर अजेय हैं, किन्तु बुद्धि-बल में वह देवताओं से पिछड़े हैं। इसीलिए वे सहज विश्वासी, सरल और निष्कपट हैं। मानसिक दृष्टि से अधिक विकसित एवं शारीरिक शक्ति में निर्बल देवताओं में छलप्रपंच और धोखेबाजी अधिक है। यही कारण है कि दैत्यों के मन में जहां आदर्शों के प्रति सहज आग्रह है वहां देवतागण आदर्शों को अपने मनोनुकूल व्याख्यायित करते रहे हैं। अत: सुर-असुर का संघर्ष बुद्धि और शारीरिक शक्ति का संघर्ष है। कवि ने इसी तथ्य के आधार पर दैत्यों को अपनी सहानुभूति का पात्र बनाया है और अनेक घटनाओं की योजना इसी दृष्टि से की है।

१. हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु की कथा—

बन्धुद्वय का जन्म, तप द्वारा ब्रह्मा से अजेयता की वर प्राप्ति तथा हिरण्याक्ष का दिग्विजय तथा वाराह रूपधारी विष्णु द्वारा हिरण्याक्ष का वध आदि प्रसंगों का वर्णन पुराणों में प्राप्त है। किन्तु इन दैत्य बन्धुओं के अद्भुत पराक्रमशील होने के उल्लेख के अतिरिक्त पुराणकारों ने इनका अत्यधिक वीभत्स चित्र ही खींचा है। उनके जन्म से "तीनों लोकों को— भयभीत करने वाले बहुत उपद्रव होने लगे। पर्वतों सहित पृथ्वी कांपने लगी, सब दिशाओं में दाह होने लगा, जहां, तहां अंगारे और बिजलियां गिरने लगीं तथा आकाश में भय की सूचना देने वाले धूमकेतु दिखाई देने लगे।"[१]

इसी प्रकार इनकी दिग्विजय भी क्रूरता की कहानी ही है। किन्तु बन्धुद्वय को नायकोचित गरिमा प्रदान करने के लिए कवि इस प्रसंग को उनकी यशगाथा के रूप में प्रस्तुत करता है। अमरपुरी का शासन प्राप्त करने के पश्चात् ~~के पश्चात्~~ देवतागण हिरण्याक्ष का पैर पकड़ लेते हैं, अत: वह उन्हें अभयदान प्रदान करता है।

हिरण्याक्षवध की घटना भी भिन्न रूप में प्रस्तुत है। श्रीमद्-भागवत के अनुसार अपने पराक्रम से उन्मत्त हिरण्याक्ष पाताल लोक में वाराह-रूपधारी विष्णु से भिड़ जाता है तथा द्वंद्व-युद्ध में वराह भगवान् अपने एक तमाचे से ही उसका अन्त कर देते हैं।[२] यहां हिरण्याक्ष के बाहुबल से पराजित (पीड़ित नहीं) देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु हिरण्याक्ष के बध की इच्छा से वाराहरूप धारण करके उनकी वाटिका को उजाड़ना प्रारम्भ करते हैं। हिरण्याक्ष उक्त वाराह को मारने के लिए वाटिका में पहुंचता है। वाराहरूपधारी श्रीहरि जल में घुस जाते हैं हिरण्याक्ष भी उनका अनुसरण करता है और इससे जल में डुबा कर मार डाला जाता है।

---

१. श्रीमद्भागवत, तृतीय स्कंध, अध्याय १७, श्लोक ३-४
२. ,, ,, अध्याय१९, श्लोक २५-२६

हिरण्यकशिपु के देवताद्रोह से सम्बन्धित जिस क्रूरता की कहानी प्रचलित है उसको कवि ने मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। बन्धुवध से दु:खित हिरण्यकशिपु देवद्रोही हो जाता है और हरिभक्तों को नष्ट करने का आदेश देता है किन्तु देवताओं पर विशेष क्रूर होते हुए भी वह प्रजा के सुख का ध्यान रखता है। प्रह्लाद के प्रति उसका विरोध इसलिए है कि वह शत्रु समर्थक है। शत्रु समर्थक के प्रति क्रूर होना स्वाभाविक ही है।

२. द्वितीय नरेश प्रह्लाद--

हिरण्यकश्यप की मृत्यु के बाद प्रह्लाद के राज्याभिषेक का वर्णन श्रीमद्भागवत में है।[१] नृसिंह ने उसके पिता के वध के पश्चात् उसे दैत्य एवं दानवों का अधपति बनाकर उस मन्वन्तर की समाप्ति तक समस्त राज्य-भोग का अधिकार दिया था।[२] प्रह्लाद के राज्य में देवत्व का साम्राज्य उसी प्रकार छा जाता है जिस प्रकार कि भौंरे के द्वारा पकड़ा हुआ कीड़ा उसी का स्वरूप धारण कर लेता है। देववर्ग के समर्थक प्रह्लाद का सभी पुराणों द्वारा प्रशंसित होना स्वाभाविक ही है।दैत्यवंशकार ने प्रह्लाद के कुलविरोधी कृत्यों को नवीन तर्क के आलोक में देखा है। देवताओं का पक्ष ग्रहण करके प्रह्लाद सत्याग्रह करता है और राज्य की जनता को भड़काता है। प्रह्लाद के पिता-विरोधी इन कृत्यों की कवि ने निन्दा की है और उसे देशद्रोही तथा राज्य-द्रोही के रूप में देखा है। परम्परागत गरिमा से स्खलित प्रह्लाद को कवि इस योग्य भी नहीं समझता कि वह राज्य का अधिकारी हो। अत: कवि नवीन प्रसंग की योजना करता है कि हिरण्यकशिपु की मृत्यु के पश्चात् राज्या-

---

१. श्रीमद्भागवत, सप्तम स्कंध, अध्याय १०

२. ,, ,, ,, श्लोक ११

धिकार प्रह्लाद को न मिलकर उसके पुत्र विरोचन को मिलता है।

३. तृतीय दैत्यनरेश विरोचन—

भागवत में इस बात का संकेत है कि विरोचन भी राज्यासीन होकर वंशविरोधी कृत्य ही करता है। इन संकेतों के आधार पर जिन घटनाओं का विस्तार कवि ने किया है वह उसकी कल्पना का परिचायक हैं। यहां कवि ने देवताओं के कुचक्र में नवीन राजनीतिक रूप प्रदान किया है, इन्द्र विरोचन को यह समझाता है कि उसकी सेना में कुछ शत्रु समर्थक वीर हैं, उन्हें वह निकाल कर देव-सैनिकों को अपनी सेना में रख ले। विरोचन वैसा ही करता है। विरोचन के द्वारा निकाले सैनिक बलि के पास जाते हैं। बलि शुक्राचार्य के पास जाकर इन कृत्यों का भंडाफोड़ करता है। अतः शुक्राचार्य के प्रयास से वे असुर सेनानी पुनः सेना में बुलाए जाते हैं और देव-सैनिकों का निष्कासन होता है। विरोचन स्वयं ही बलि को राज्य देकर सन्यास ग्रहण कर लेता है।

४. राजा बलि की कथा—

लगभग सभी पुराणों में बलि के पराक्रम एवं दानशीलता की प्रशंसा की गई है। कवि ने बलि के चरित्र के इन्हीं पक्षों को लेकर उसके चरित्र की उदात्तता की अधिक प्रशंसा की है। बलि को देवताओं द्वारा छले जाने का वृत्तान्त पुराणों में प्राप्त है किन्तु पुराणकार ने उसके औचित्य को ही प्रमाणित किया है। यहां कवि ने देवताओं के इस कृत्य को नवीन तर्क के आलोक में देखा है, जिससे सिद्ध हो सके कि दैत्यगण अपने आदर्शों के प्रतिकितने निष्ठावान तथा सत्य आग्रही थे। बलि के राज्यकाल में ही देवताओं द्वारा समुद्र-मंथन का षड्यंत्र-पूर्ण प्रस्ताव भी रखा जाता है। पुराणों में समुद्र मंथन प्रसंग में दैत्यों की लोलुपता का ही दिग्दर्शन कराया गया है। कवि ने इसके

विपरीत यह अभिव्यक्त किया है कि देवतागण छल से समुद्र से निसृत एक-एक वस्तुओं को लेते जाते हैं। विषम-विष का पान शंकर अवश्य करते हैं किन्तु चन्द्रमा भी वही लेते हैं। कल्पतरु, गज, बाजि, धेनु, रम्भा भी देवता ही लेते हैं। कौस्तुभमणि विष्णु धारण करते हैं। पुन: बारुनी देवी निकलती हैं, जिसको लेने के लिए बलि स्वयं ही मना कर देते हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि में पर स्त्री पर दृष्टि डालना भी पाप है। इस तरह कवि यहां भी दैत्यों का पक्ष ग्रहण करता है। पुराणों में संकेत है कि स्वयंवर के समय लक्ष्मी ने बलि की ओर देखा भी नहीं, किन्तु `दैत्यवंश` में स्वयं बलि ही लक्ष्मी को प्राप्त करने की उत्सुकता नहीं दिखाते हैं। लक्ष्मी स्वयंवर को कवि ने नवीन रूप प्रदान किया है। पुराणों में कमला स्वयंवर का वर्णन है,[१] पर वहां लक्ष्मी स्वयंवर भवन में अकेले ही घूमती हुई विष्णु के पास पहुंच कर उनको वरण करती हैं। किन्तु दैत्यवंश में सरस्वती भी लक्ष्मी के साथ घूमती हुई उपस्थित देवताओं का परिचय देती हैं।

समुद्र से प्राप्त अमृत घट असुर छीन कर ले जाते हैं। अमृत वितरण प्रसंग का वर्णन भी जिस रूप में पुराणों में प्राप्त है उससे दैत्यों की लोलुपता एवं क्षुद्रता का ही परिचय मिलता है। अमृत को लेकर दैत्यों में परस्पर कलह हो रहा था कि उसी समय स्त्री रूपधारी विष्णु को देखकर दैत्यों का मन कामोद्दीप्त होता है और उसके अनिंद्य सौन्दर्य से प्रभावित कामातुर राक्षसों ने उनके समक्ष अमृत वितरण का प्रस्ताव रखा[२]।

---

१. श्रीमद्भागवत, ८।१७-२४ (८ वां स्कंध)

२. सव्रीऽस्मितविक्षिप्त भ्रुविलासावलोकनै: ।
दैत्ययूथ पचेत: सु कामदीपयन्मुहु: ।।
——श्रीमद्भागवत, ८, ८। श्लोक ४६

कवि ने दैत्यों के चरित्र की रक्षा यहां भी की है। यहां अमृत को लेकर न दैत्यों में विरोध होता है और न वे कामातुर होकर अमृत वितरण का प्रस्ताव ही रखते हैं। वस्तुतः यहां कामदेव स्त्री रूप धारण करके कंचनघट में जल लेकर जाते हैं और असुर सैनिकों को बात में फंसाकर उस घट को रखकर अमृत घट उठा लाते हैं। उसके पश्चात् विष्णु भी स्त्री रूप धारण करके वहां जाते हैं, और उसके रूप पर विमोहित दैत्य (रूप से कामातुर नहीं) अमृत वितरण का प्रस्ताव रखते हैं।

समुद्र मंथन के पश्चात् ही `देवासुर संग्राम` होता है। यहां भी कवि ने बलि के चरित्र की रक्षा की है। पहले बलि समुद्र से प्राप्त वस्तुओं में अपने अधिकार के लिए शान्तिपूर्ण प्रस्ताव रखता है पर इन्द्र को युद्ध ही स्वीकार्य है। उसके पश्चात् दोनों पक्षों के युद्ध की समाप्ति बलि के पराजय से होती है। देवों के शस्त्र से निहत बलि को दैत्य अस्ताचल पर्वत पर ले जाते हैं, जहां शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से उन्हें पुनर्जीवित कर देते हैं। बलि गुरु के सहयोग से राजशक्ति की वृद्धि करते हैं और `स्वर्ग विजय` प्राप्त कर वहां का राज्य नहुष को दे देते हैं। यहां भी बलि की निष्पंगता का ही वर्णन है। दैत्यों से पराजित देवताओं का षड्यंत्र वामन रूपधारी विष्णु के छल के रूप में प्रकट होता है। इस प्रसंग को जहां पुराणों में विष्णु वामन का कृत्य होने के कारण प्रशंसा की दृष्टि से देखा गया है वहां कवि ने इसे देवताओं[१] के निन्दनीय-कृत के रूप में वर्णन किया है।

५. बाणासुर—

बाणासुर से संबंधित प्रसंगों का वर्णन कवि ने पुराणानुसार ही किया है। बलि को सुतल लोक में भेज देने पर बाणासुर मेघनाद को

---

१. श्रीमद्भागवत, ८, ८।१५ वां अध्याय

पराजित करके लौटते समय शोणितपुर के अधिनायक को पराजित करके वहां का राज्य प्राप्त करता है। कृष्ण-बाणासुर संग्राम में भी कवि बाणासुर के चरित की रक्षा करता है। पुराणों में वह कृष्ण द्वारा पराजित होकर अपनी पुत्री उषा का विवाह अनिरुद्ध से करता है किन्तु यहां शंकर के समझाने पर बाणासुर उदारतावश अपनी कन्या अनिरुद्ध को देता है।

६. स्कंद—

बाणासुर पुत्र स्कंद का वर्णन पुराणों में विस्तार से नहीं प्राप्त है। एक सुशासक के रूप में स्कंद का सम्पूर्ण कृत्य, उसका सुशासन, राज्य का निरीक्षण, राज्य के विभिन्न स्थलों का भ्रमण और नौकाविहार आदि का वर्णन कवि की मौलिक कल्पना है।

आधुनिकता का समावेश—

अनेक स्थलों के वर्णन में आधुनिक वातावरण की झलक मिलती है। प्रथम सर्ग में हिरण्यकशिपु के अत्याचार के विरुद्ध प्रह्लाद का सत्याग्रह स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किए गए भारतीयों के सत्याग्रह की याद दिलाती है। दैत्यवंश के अन्तिम नरेश स्कंद के सुराज्य का वर्णन करते समय कवि ने आधुनिक-युग के लिए सुशासित राज्य की कल्पना की है। राजा द्वारा पुस्तकालय, ज्योतिशाला, मल्लगेह का निरीक्षण करना एवं रानी द्वारा गुरुकुल देखना तथा वहां की कन्याओं को पुरस्कार बांटना— आदि प्रसंगों में आधुनिक युग का प्रक्षेप हुआ है।

कृष्णायन[१]—

कथा का स्वरूप— कृष्ण जीवन का सम्पूर्ण वृत्त प्रस्तुत करने

के लिए कवि ने रामचरितमानस के अनुकरण पर कृष्ण कथा से सम्बन्धित विविध प्रसंगों का वर्णन सात कांडों में विभाजित करके प्रस्तुत किया है जिसमें उनके बाल्यकाल से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक की घटनाओं का गुंफन हुआ है। इन विभिन्न कांडों की कथा निरूपण के लिए कवि ने कृष्ण से सम्बन्धित विविध प्राचीन ग्रन्थ,महाभारत, श्रीमद्भागवत, गीता, सूरदास की पदावली, तथा अन्य पुराणों (विशेषत: ब्रह्मवैवर्त पुराण), का आधार ग्रहण किया है।

कृष्ण के बाल्यकाल की घटनाएं मुख्यत: श्रीमद्भागवत् के दशम-स्कन्ध में प्राप्त होती हैं। कृष्णायन के रचयिता ने श्रीमद्भागवत के अनुसार ही अपने ग्रंथ के प्रथम काण्ड-- ' अवतरणकांड ' -- का प्रारम्भ कंस के अत्याचार से पीड़ित धरती की विष्णु के पास जाकर विनय करने से किया है ,किन्तु उसके पश्चात् कृष्ण जन्म , जन्मोत्सव तथा कृष्ण के बाल्यावस्था की लीलाओं का वर्णन सूरदास की पदावली का आधार ग्रहण करके किया है। कहीं कहीं सूरदास की पंक्तियों को, किंचित शब्द परिवर्तन के साथ, उसी रूप में रख दिया है।[१] किशोर-कृष्ण के विभिन्न कृत्यों (कंस द्वारा प्रेषित विभिन्न असुरों का वध) का वर्णन श्रीमद्भागवत के आधार पर है। कृष्ण एवं बलराम के मथुरागमन से इस कांड की समाप्ति होती है।

'मथुराकांड' की घटनाओं का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत पुराण ही है। मथुरा में प्रवेश के समय मथुरावासियों द्वारा कृष्ण का स्वागत, कुब्जा

पिछले पृष्ठ का शेष-- १. पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र, प्रकाशन समय १९४५ ई०

---

१. माखन खाये बढ़ति न चोटी
होति लाल, पय पियवहि मोटी, कृ०, अव०, पृ० ३७

<< << <<

मैया दाउ बहुत खिझावा
कहत का तोहि हाट बिसावा। कृ० अव०, पृ० ४०

प्रसंग, कंस द्वारा नियुक्त अनेक असुरों का बध, कंसवध, माँ देवकी एवं वसुदेव का उद्धार, नन्द का प्रत्यागमन, कृष्ण बलराम की शिक्षा प्राप्ति आदि प्रसंगों का वर्णन करते हुए जरासंध के भय से मथुरावासियों का द्वारिका में जा बसने से इस काण्ड का अन्त होता है। इसके पश्चात् ही `द्वारिका काण्ड` का प्रारम्भ होता है। कृष्ण जीवन का दूसरा अध्याय भी यहीं से प्रारम्भ होता है। बालगोपाल अथवा किशोर कृष्ण अब राजाधिराज द्वारिकाधीश हो जाते हैं। कृष्ण के विविध विवाहों का वर्णनभागवत के अनुसार है किन्तु महाभारत के राजनैतिक कृष्ण का संकेत इसी सर्ग से प्रारम्भ हो जाता है। यद्यपि भागवत में भी पाण्डव एवं कौरववंश की कथा का संकेत यत्रतत्र प्राप्त होता है और उसमें महाभारत की घटनाओं के मध्य क्षीण सम्बन्ध सूत्र भी दृष्टिगत होता है, पर कवि ने महाकाव्योचित सम्बद्ध-घटना-विधान की योजना के लिए इन सूत्रों को और भी घनीभूत तथा प्रत्यक्ष कर दिया है। इस कांड में ही कृष्ण को पांडु निधन, पांडु सन्तान, एवं कुन्ती के दुखावस्था का समाचार मिलता है और वह अक्रूर को उनका समाचार लेने के लिए हस्तिनापुर भेजते हैं। इस घटना का संकेत भागवत में भी है[1] पर कवि ने अक्रूर के समक्ष ही हस्तिनापुर में धनुर्विद्या प्रदर्शन का आयोजन करा दिया है।[2] इसी प्रकार लाक्षागृह निर्माण, द्रौपदी विवाह और द्रौपदी के पंच-पतित्व की प्राप्ति की घटना का वर्णन भी बड़ी कुशलता से करके कृष्ण कथा के साथ (भागवत की कथा से) संयुक्त कर दिया है। अत: महाभारत का यह प्रसंग भी श्रीमद्भागवत के साथ संयुक्त हो जाता है। आगे के काण्डों का घटना विधान मुख्यत: महाभारत के अनुसार है। कृष्ण जीवन के उत्तरकाल की घटनाएं भागवत में उतने विस्तार से वर्णित भी नहीं हैं।

`युद्धकाण्ड` में महाभारत के सभापर्व, वनपर्व एवं विराट पर्व की घटनाओं का वर्णन है। वस्तुत: द्वारिकाकाण्ड से ही कवि महाभारत की

---

१. भागवत, दशम् स्कंध, अ० ४८

२. महाभारत, आदि पर्व, अध्याय १३५

की घटनाओं का संकेत देने लगता है। महाभारत की कथा कौरव एवं पांडव वंश की कथा है किन्तु इस कथा के साथ कृष्ण का सम्बन्ध घनिष्ट था और महाभारत की अनेक घटनाओं के संचालक कृष्ण थे। अत: महाभारत की घटनाओं का वर्णन तो कवि करता है किन्तु इतनी कुशलता से कृष्ण को उन घटनाओं का मुख्य संचालक अथवा निर्देशक बनाकर कृष्ण के नायकत्व की रक्षा करता है, जिससे प्रबन्धकाव्य की घटना में विशृंखलता न आने पाए। `पूजाकाण्ड` का नाम भी कृष्ण के अधिनायकत्व का सूचक है। जिसमें इन्द्रप्रस्थ के राजसूययज्ञ में कृष्ण की अग्रपुरुष के रूप में पांडवों द्वारा पूजा होती है। इस घटना का वर्णन श्रीमद्भागवत[1] के अनुसार है। जरासंध द्वारा बन्दी राजाओं का कृष्ण के नाम पत्र, जरासंधवध,[2] कृष्ण की अग्रपूजा करते समय शिशुपाल द्वारा विरोध किए जाने पर शिशुपालवध,[3] दुर्योधन अपमान, शाल्ववध[4] आदि श्रीमद्भागवत की कथाओं के वर्णन के पश्चात् शकुनि के षड्यंत्र पर द्यूत-क्रीड़ा का आयोजन, युधिष्ठिर की पराजय, बारह वर्ष तक का प्रवास, आदि घटनाओं[5] का वर्णन महाभारत के अनुसार है।

`गीताकाण्ड` में भी महाभारत की घटनाओं का ही वर्णन है। महाभारत युद्ध का प्रारम्भ इसी सर्ग से होता है। इसी सर्ग में योगीश्वर कृष्ण के स्थितप्रज्ञ रूप के दर्शन होते हैं और वह युद्धभूमि में मोहासक्त अर्जुन को गीता के श्लोकों के रूप में उपदेश देते हैं। इस स्थल पर कवि ने गीता के श्लोकों का

---

१. भागवत १०।७४

२. वही १०।७०, ७१, ७२

३. वही, १०।७४

४. वही, १०। ७६-७७

५. महाभारत, सभापर्व, वनपर्व, विराट पर्व

अविकल अनुवाद कर दिया है। सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में ब्रजवासियों के आगमन का वर्णन इसी सर्ग में हुआ है।[१]

`जयकाण्ड` में युद्ध का वर्णन है। कवि ने युद्ध वर्णन के अवसर पर महाभारत के युद्ध-वर्णन का आधार ग्रहण किया है किन्तु यत्रतत्र मौलिकता का भी परिचय देता है। अन्तिम काण्ड `आरोहण काण्ड` में पांडव पक्ष की विजय के पश्चात् युधिष्ठिर के राज्यारोहण के द्वारा कवि महाभारत की कथा का आरोहण करता है किन्तु कृष्ण के अवसान का वर्णन कर श्रीमद्-भागवत की कथा का अवरोहण किया है। भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को उपदेश देना महाभारत के अनुसार है।[2] कृष्ण के आहत होने के पश्चात् मैत्रेय के आगमन और कृष्ण द्वारा उन्हें दी गई जीवन-शिक्षा का वर्णन कवि की मौलिकता है। भीष्म ~~अंत~~ के आगमन के समय मैत्रेय की उपस्थिति का संकेत महाभारत[३] में प्राप्त होता है किन्तु कृष्ण के अवसान के समय मैत्रेय के आगमन का वर्णन श्रीमद्भागवत तथा महाभारत— दोनों में ही नहीं प्राप्त है।

उपर्युक्त कथा-वर्णन में यद्यपि पूर्वापर क्रम के अनुसार वर्णनात्मकता का आश्रय ग्रहण किया गया है किन्तु घटनाओं को महाकाव्यों की सीमाओं में सुनियोजित करने के उद्देश्य से कथा के क्रम में परिवर्तन किया है। यथा: मथुरा से कृष्ण, उद्धव को जरासंध-वध के पश्चात् ही भेजते हैं[४]। किन्तु यहां द्वारिकापुरी में बसने के पश्चात्। इसी प्रकार गुरु-गृह में सुदामा की मैत्री से संबंधित सम्पूर्ण घटना का वर्णन भागवत में सुदामा के द्वारिकागमन के समय स्मृति रूप में वर्णित है।[५] किन्तु यहां कवि कृष्ण के गुरुगृह में

---

१. भागवत १०।८२

२. महाभारत, शान्ति पर्व, अध्याय ५६ से अनुशासन पर्व अध्याय १६५ तक

३. महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ४७, श्लोक ६

४. भागवत १०।४६

५. वही, १०।८०

शिक्षा प्राप्ति के समय ही वर्णन कर देता है।सुदामा को ऋद्धि-सिद्धि प्रदान करने की घटना का वर्णन कृष्ण जीवन के अवसान के समय वर्णित है जबकि यदुकुल के विनाश के पश्चात् वैकुण्ठलोक गमन के पूर्व कृष्ण सुदामा को अपना सर्वस्व दान दे जाते हैं। भागवत में यह प्रसंग इसके पूर्व ही वर्णित है।[१]

कथागत नवीनता--

यद्यपि अधिकांश कथा प्रसंग अपने आधारग्रन्थों की ही भांति है, किन्तु कवि के द्वारा विविध घटनाओं को नवीन रूप में प्रस्तुत करने के प्रयत्न के कारण अपने परम्परागत भक्तिपूर्ण दृष्टिकोण के अनुसार भी ग्रन्थ की भावभूमि आधुनिकता का स्पर्श करती है। द्विवेदी युग के अन्य पौराणिक-प्रबन्धकाव्य प्रणेताओं के सदृश परम्परागत चरित्र के अनेक दोषों के परिशमन के लिए कवि ने अनेक प्रसंगों की नवीन अर्थ-योजना की है; नवीन प्रसंगों की कल्पना की है और अनेक प्रसंगों को त्याग दिया है। ग्रंथ के नायक कृष्ण के चरित्र के उदात्तीकरण के लिए उनसे सम्बद्ध अनेक प्रसंगों को नवीन तर्क एवं वैज्ञानिक विश्लेषण बुद्धि के द्वारा निराकरण किया है, किन्तु साथ ही कवि के श्रद्धालु मन का विश्वास है कि जिस ओर पुण्यश्लोक कृष्ण होंगे सत्य का पक्ष भी उधर ही होगा। अत: पाण्डवों के चारित्रिक उन्नयन के लिए भी नवीन घटनाओं की कल्पना की है तथा प्राचीन परम्पराओं को नवीन रूप प्रदान किया है।

ग्रन्थ-प्रणयन के मूल में कवि की दृष्टि राष्ट्रीय और सांस्कृतिक है। ग्रन्थ के माध्यम से वह भारतव्यापी राष्ट्रीयता का निर्माण करना चाहता है। अत: कृष्ण जीवन के विविध पक्षों में उनके राजनैतिक रूप का वर्णन अधिक हुआ है।

---

१. भागवत, १०।८१

पुराणों में वर्णित सुर-असुर संघर्ष को आर्य-अनार्य अथवा स्वदेशी-विदेशी सत्ता के संघर्ष के रूप में देखने की सामान्य प्रवृत्ति को कवि ने इस ग्रन्थ के माध्यम से स्वीकार किया है। कृष्ण का अवतार असुरसंहार के लिए नहीं है वरन् स्वदेशी संस्कृति के उद्धार के लिए हुआ है ——

जन्महेतु कबहुंक जन त्राणा,
कबहु युगोचित ज्ञान प्रदाना ।
जो कछु धर्म कर्म यहि देसा,
सो सब आप दीन्ह विश्वेशा ।
जबहिं म्लेच्छ भारति बढ़ि आवहिं ।
संस्कृति, धर्म, सुनीति नशावहिं ।
हरिहिं पुकारति भारत माता,
तब तब जन्म लेत जन त्राता ।[1]

समयोचित राष्ट्रीय-रंग का विशेष उदाहरण उस समय दिखाई देता है जबकि कंस के अत्याचार से पीड़ित 'भारतमाता' विष्णु के समक्ष अपने उद्धार के लिए विनती करती हैं। पुराणों की 'धरती' का भारत-माता के रूप में आधुनिकीकरण राष्ट्रीयता अथवा देशभक्ति का प्रतीक है —

सहि न सकी जब भारत माता,
सुमिरे श्रीहरि चिर जन त्राता ।[2]

तत्कालीन अनार्य संस्कृति का केन्द्र, इस युग के ब्रिटेन की भांति, मगध था   वहां के नरेश जरासंध को कवि ने अनार्य के रूप में देखा है। जरा-संध तत्कालीन अनेक नरेशों से सम्बन्ध-स्थापित करके अपनी शक्ति बढ़ाता है।

---

१. कृष्णायन, अवतारकाण्ड, पृ० २

२. वही, पृ० १५

कंस के साथ भी अपनी कन्या का विवाह करके अपनी ओर मिला लिया था। कंस के राज्य के माध्यम से कवि ने विदेशी शासनकालीन भारत की दुरवस्था की ओर संकेत किया है —

राजभवन नित बढ़ेउ विलासा
बढ़ेउ राज्य कर प्रजा हताशा
लखिहिं राजजन जहँ धनवाना
हरहिं धान्य धन करि छल नाना
निर्धन हित न्यायालय नाहीं,
न्यायहु पण्य मधुपुरी माहीं।[१]

आगे चलकर कौरव तथा पाण्डव वंश के पारस्परिक विरोध के मूल में भी आर्य-अनार्य नीति काम कर रही है। पांडव का पक्ष न्याय एवं प्रेम का है और कौरव वंश पूर्णत:अन्याय और आतंक पर आधारित है। अत: कौरव नरेश दुर्योधन भी कंस एवं जरासंध की नीति का ही समर्थक था। चार्वाक की उपस्थिति एवं चार्वाक मत की विशेष स्थापना की नवीन कल्पना के आधार पर कवि इसनीति को अधिक स्पष्ट कर देता है। कवि का दर्शन आत्मिक अर्थात् अध्यात्मिक है। भौतिकता का समुचित आधार ग्रहण करके भी भौतिकता से ऊपर का है। चार्वाक मत घोर भौतिकता एवं ऐहिकता पर आधारित है जिसका अनुकरण दुर्योधन भी ग्रहण करता है। कवि अपने समकालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों में महात्मागांधी का अनुयायी था। स्वातंत्र-आन्दोलन के युग में अहिंसात्मक, प्रेममूलक संघर्ष से प्राप्त एवं जीवन के उदात्त सत्यों पर आधारित जिस राज्य का भावी स्वप्न गांधी और तत्कालीन भारतीय जनता की आंखों में प्रतिबिम्बित हो रहा था, उसको ही कवि विजय के पश्चात् युधिष्ठिर के के राज्य में प्रतिफलित होते दिखाता है। अत: युधिष्ठिर के राज्य की स्थापना के समय चार्वाक का ऋषियों के क्रोधाग्नि में भस्म होने का वर्णन है ।

---

१. कृष्णायन, अवतारकाण्ड, पृ० १४

यह घटना इस अर्थ को भी प्रतिबिम्बित करती है कि आत्मिक-शक्तियों के समक्ष चार्वाक की भौतिक धारणा समाप्त हो जाती है ।

कृष्णायन में कवि इन विभिन्न संस्कृतियों अथवा जीवन पद्धतियों के संघर्ष के मध्य गांधी की भांति कृष्ण के महानेतृत्व की कल्पना करता है । वस्तुत: वह कृष्ण के माध्यम से उस युग के समक्ष ऐसे आदर्श लोकनायक के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है, जो निस्पृह होकर समस्त घटनाओं के संचालक बनते हैं, एक आदर्श राज्य की स्थापना के लिए स्वकुल का विनाश कर देते हैं । अत: यदुकुल विनाश को भी कवि ने नवीन राजनैतिक अर्थ प्रदान किया है । श्रीमद्भागवत[१] में कृष्ण अपने अनेक कृत्यों के पश्चात् सोचते हैं कि यदुकुल का विनाश तो अभी शेष है अत: वह उनमें विरोध उत्पन्न कर देते हैं । कृष्ण के इस कृत्य में समष्टिगत कल्याण की नवीन भावना है ~~सन्निवेश~~ जिसकी अभिव्यक्ति बलराम के माध्यम से करता है —

आजुहि समभि सकेऊं विश्वेशा ।
कृष्ण-जन्म-लीला उद्देशा ।
धर्मराज पथ यदुजन शूला,
नासे तुम सोउ आजु समूला ।[२]

×× ×× ×× ××

समर दीन्ह निज सुतहि विदायी,
रामप्रिया निज विपिन पठायी ।
परम त्याग जनहेतु तुम्हारा,
निजकुल निखिल स्वकर संहारा ।[३]

---

१. भागवत ११।१

२. कृष्णायन, आरोहणकाण्ड, पृ० ८७६

३. वही, पृ० ८७६

नवीन प्रसंग विधान—

उपर्युक्त राष्ट्रीय उद्देश्य,गांधीवादी विचारधारा की स्थापना एवं चरित्रों के उन्नयन के लिए कवि ने अनेक नवीन प्रसंगों की योजना अथवा प्राचीन प्रसंगों का नवीन अर्थ-विन्यास किया है —

१. कृष्ण एवं राधा के प्रेम प्रसंगों को उचित ठहराते हुए कवि ने राधा को स्वकीया के रूप में प्रस्तुत किया है जिसके लिए कल्पना करता है कि राधा को देखकर कृष्ण को पूर्व जन्म की स्मृति हो आती है, अत: पूर्वजन्म के सम्बन्ध के कारण वह स्वकीया है।

२. चीरहरण प्रसंग में कृष्ण को सुधारक के रूप में देखा है और परिकल्पना की है कि कृष्ण नग्न स्नान करने की कुरीति के निवारण के लिए ही गोपियों का वस्त्र उठा ले जाते हैं।

३. `जरासंध` के सामने से कृष्ण के भागने की पौराणिक घटना के मूल में कवि कृष्ण की शान्तिप्रियता को देखता है।

रक्तपात नहिं मम उद्देश्या
उचित न बधब निरीह नरेशा।[1]

४. कृष्ण की ही भांति कवि पांडवों के चरित्रोन्नयन के लिए नवीन प्रसंगोद्भावना करता है। महाभारत के युधिष्ठिर क्लैव-ग्रस्त युद्धभीरु नरेश हैं पर कृष्णायन में (कवि उनको) भावी योग्य शासक के रूप में दिखाना चाहता है। युधिष्ठिर के चरित्रोन्नयन के लिए द्रोण की मृत्यु के प्रसंग में युधिष्ठिर के असत्य वचन को कवि बड़ी सफाई से बचा गया है। महाभारत युद्ध के पूर्व युधिष्ठिर को भीष्म के पास भेजकर कवि युधिष्ठिर के चरित्र को विशेष गरिमा प्रदान करता है। इसी तरह वह द्यूत क्रीड़ा प्रस्ताव इसलिए स्वीकार

---

१. मथुरा काण्ड, पृ० २२८

करते हैं कि वह पिताज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकते थे ।

५. कुन्ती द्वारा कर्ण को अस्वीकार करने के मूल में कर्ण का अवैध पुत्र होना नहीं है वरन् कुन्ती की लज्जा का कारण कर्ण का कानीन (कान से उत्पन्न) होना बताया है । द्रौपदी के पंच पतित्व का कारण पूर्व जन्म की घटना मात्र है और अपने ही पुत्रों के वधिक अश्वत्थामा को द्रौपदी द्वारा क्षमा दिलाकर, कवि द्रौपदी के चरित्र का विशेष उन्नयन करता है ।[1]

६. भीम द्वारा भूमिशायी दुर्योधन पर गदा प्रहार करने की घटना के मूल में मनोवैज्ञानिक कारण प्रस्तुत करके स्वाभाविक ठहराना चाहता है । द्रौपदी अपमान की घटना से उत्पन्न भीम के मन की पीड़ा का स्मरण दिलाकर इस घटना के अनौचित्य का परिष्करण किया है —

पै तनु-पीड़हु ते बढ़ितातां ।
दारुण अन्तस्थल-आघाता ।
कुरुपति सभा कर्षि पांचाली,
कहि दासी जो कीन्हि कुचाली,
लखि अमर्षि, असहाय विषादी,
क्रम क्रम भीम भए उन्मादी ।[2]

७. रुक्मिणी विवाह प्रसंग में भागवत के अनुसार कृष्ण के प्रति रुक्मिणी की आसक्ति एवं रुक्मिणी द्वारा भेजे आत्मरक्षार्थ विनय-पत्र के कारण ही कृष्ण उसका हरण नहीं करते हैं वरन् रुक्मिणी हरण कृष्ण की राजनैतिक विवशता थी । एक और इसके मूल में नारद मुनि का आदेश था, दूसरी ओर मगधपति से रण का विचार त्याग कर कृष्ण जिस

---

१. कृष्णायन, जयकाण्ड, पृ० ७०७
२. वही, जयकाण्ड, पृ० ७६६

कुयश के भागी बने थे उसको धोने के लिए और मगधपति को पराजित करने का उपयुक्त अवसर समझ कर ही कृष्ण ने रुक्मिणीहरण किया था। इस तरह एक ओर कवि इस घटना को नवीन तार्किक आधार प्रदान करता है और दूसरी ओर कृष्ण के चरित्र में आवश्यक गरिमा की स्थापना।

८. कृष्ण द्वारा सोलह हजार कन्याओं से विवाह करने के प्रसंग को भी कवि ने नवीन अर्थ प्रदान किया है। कृष्ण को ब्रह्म समझने वाले पुराणकारों ने उनके प्रत्येक कार्य को अचिन्त्य समझ कर इस कृत्यकी नैतिकता पर विशेष दृष्टि नहीं डाली है किन्तु आधुनिक युग के बौद्धिक तथा तार्किक मानव को यह कैसे ग्राह्य हो सकता था ? अत: कवि ने कल्पना की है कि भौमासुर द्वारा बन्दी ये सोलहहजार कन्याएं समाज द्वारा परित्यक्त होने के कारण कृष्ण से अपने को स्वीकार करने की प्रार्थना करती हैं। कृष्ण निराश्रित समझ कर उनके उद्धार के लिए ही पत्नी के गरिमा मय पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। इस प्रसंग में नारी की दशा को देखते हुए अनुकरणीय आदर्श की स्थापना होती है।

९. कृष्ण के गुरु एवं उनकी पत्नी के माध्यम से कवि नवीन राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति कराना चाहता है। भागवत में वह गुरु-दक्षिणा में केवल अपने मृत पुत्रों को कृष्ण से मांगती हैं किन्तु यहां पहले वह राष्ट्रहित को ही गुरुदक्षिणा में लेती हैं और बाद में कृष्ण के आग्रह करने पर अपने मृत पुत्रों की मांग करती हैं —

> आर्य धर्म संस्कृति सकल, नासी मगध नरेश,
> देहु दक्षिणा रूप मोहि तासु निधन भुवनेश।[१]

१०. गुरुपुत्र की मुक्ति के लिए कृष्ण दक्षिण की ओर जाते

---

१. कृष्णायन, मथुराकाण्ड, पृ० १६०

है। वहाँ वरुणा का अरक्षित कृष्णा से अपनी रक्षा की प्रार्थना करना आधुनिक युग के अरक्षित-समुद्र की ओर संकेत करता है —

> भारत-म हि उद्धार हित लीन्ह नाथ अवतार,
> मोरहु संरक्षण करहु मुनि मोहि भारत-द्वार ।[1]

११. द्वारकाकाण्ड में द्वारिकापुरी को आधुनिक बम्बई की भाँति 'भारत का द्वार' कहा है और उसकी सुरक्षा पर विशेष बल दिया है। आधुनिक-युग की भाँति द्वारिका से पोत द्वारा विदेशों से व्यापार का वर्णन है।

१२. कृष्णा के ब्रजागमन[2] पर वहाँ के निवासियों द्वारा उनके स्वागत की तैयारी करने में आधुनिकता का समावेश है, तथा आधुनिक परतंत्र युग की जनता की गतिविधियों को कवि ने ~~प्राचीन~~ प्राचीन कथा के साथ संयुक्त करके देखा है। इसी प्रकार कृष्णा के प्रति कंस का अत्याचार देखकर कंस राज्य की प्रजा बार बार विद्रोह करती है और कृष्णा की सहायता करती है। प्रजा में विद्रोह मूलक भाव भरने का कार्य उद्धव करते हैं।

यह घटना आधुनिक युग के स्वतंत्रता संग्राम की याद दिलाती है जबकि तत्कालीन नौकरी प्राप्त भारतीय विदेशी शासक के प्रति विद्रोह करते हैं।

साकेत सन्त[3] —

कथा का आधार मानस का अयोध्याकाण्ड है किन्तु एकाध स्थलों

---

१. कृष्णायन, मथुराकाण्ड, पृ० १६५

२. भागवत, १०।४१

३. डा० बलदेवप्रसाद मिश्र, प्रकाशन समय, सन् १९४६ ई०

पर बाल्मीकि रामायण से भी संकेत ग्रहण किया गया है; पर सम्पूर्ण कथा के प्रस्तुतीकरण तथा अनेक प्रसंगों की योजना में कवि ने साकेत का आधार सबसे अधिक ग्रहण किया है। साकेत की तरह यहां भरत तथा माण्डवी को विशेष महत्व प्रदान करने के कारण सम्पूर्ण घटनाएं अयोध्या में ही घटित हैं। साकेत के ही तरह ग्रन्थ का आरम्भ भरतमाण्डवी के वार्तालाप से (साकेत में लक्ष्मण-उर्मिला के संवाद से) होता है जिसमें भरत के मामा-गृह प्रस्थान की भावी घटना का संकेत (साकेत में रामराज्याभिषेक की भावी घटना का) मिल जाता है और सम्पूर्ण कथा की अन्तिम अन्विति माण्डवी-भरत के मिलन से होती है। साकेत की तरह यहां भी कैकेयी अपने पति के साथ सती होने को उद्यत होती है, चित्रकूट सभा में पश्चाताप करती है, राम से अयोध्या लौटने का अनुनय करती है। इतना ही नहीं वह वशिष्ट के चरणों पर गिर कर पति को पुनर्जीवित करने की प्रार्थना करती है।

साकेत की तरह सीताहरण से लेकर लक्ष्मण के मुर्च्छित होने तक की घटनाओं का वर्णन हनुमान द्वारा करते हैं तथा रामविजय की घटना को वशिष्ट अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा दिखाते हैं। सीताहरण एवं राम के संकटापन्न स्थिति का समाचार पाकर भरत, 'साकेत' की भांति, सेना के साथ लंकाप्रयाण की योजना नहीं बनाते हैं, किन्तु प्रभु के सहायतार्थ अपने योगबल के द्वारा लंका पहुंचने को उद्यत होते हैं।

इसके अतिरिक्त कवि बाल्मीकि रामायण के सदृश उल्लेख करता है कि विवाह के समय दशरथ ने कैकेयी के औरस पुत्र को राज्याधिकार देने का वचन दिया था।[१] अत: इस घटना के मूल में स्थित देवताओं की स्वार्थपरता, मंथरा की कुटिलता तथा कैकेयी के दोष का निवारण हो जाता है।

---

१. बाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, १०५।३

नवीन घटना-प्रसंग --

१. प्रथम सर्ग से लेकर तृतीय सर्ग की सम्पूर्ण घटनाओं को कवि ने नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। रामवनवास प्रसंग में कहीं कैकेयी की स्वार्थपरता थी, (वाल्मीकि रामायण), कहीं देवताओं का प्रयत्न था (मंथरा की जिह्वा पर सरस्वती के प्रभाव के रूप में), साकेत में गुप्त जी ने मंथरा की नियत को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया। रामायण में राम के राज्याभिषेक के अवसर पर भरत की अनुपस्थिति की साभिप्रायता पर प्रकाश डाला गया है,[१] किन्तु मानस का रचयिता इस सम्बन्ध में मौन है, गुप्त जी ने उसे तार्किक आधार प्रदान किया है, पर उससे भी एक कदम आगे साकेत-सन्त के लेखक ने इस घटना को राजनीतिक षड्यंत्र के रूप में देखा है जिसका संचालन करता भरत के मामा युधाजित को बनाया गया है। कैकेयी-पुत्र को उत्तराधिकार प्रदान करने की वचनबद्धता का उल्लेख करके कवि ने आगे परिकल्पना की है कि राम के प्रति अनन्य प्रेम के कारण दशरथ इस बात की घोषणा न कर सकें, कैकेयी को भी अपने स्वत्वों की इच्छा नहीं थी। अत: युधाजित अपने साथ भरत को हिमालय-दर्शन के बहाने ले जाकर उन्हें ठीक करने की सोचते हैं। एक दिन हिमालय पर मृगयार्थ भ्रमणाकरते हुए भरत एक मृग का शिकार करते हैं, पर मृग की करुणापूरित आँखें देखकर अत्यन्त कातर हो उठते हैं। अवसर देखकर यहाँ ही युधाजित करुणा को मन की दुर्बलता की संज्ञा देकर नृप को निष्ठुर माली होने का उपदेश देते हैं। इधर भरत को अपने साथ ले जाते समय युधाजित मंथरा नामक दासी को इसलिए अयोध्या में छोड़ जाते हैं कि उनकी अनुपस्थिति में कहीं राम को युवराज न घोषित कर दिया जाए। इस तरह मंथरा की कुबुद्धि का मूल युधाजित का षड्यंत्र था।

२. चित्रकूट-प्रयाण के अवसर पर भरत की नियत पर सन्देह का वर्णन परम्परागत रूप में प्राप्त होता है। सबसे अधिक सन्देह लक्ष्मण को होता है। कवि ने लक्ष्मण के उस उग्र स्वभाव का वर्णन नहीं

---

१. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, पंचम सर्ग, पृ० २५-२६

किया, क्योंकि इससे भरत के सन्तोचित चरित्र पर सन्देह प्रकट होता है, जो कवि को स्वीकार्य नहीं। यहां तो लक्ष्मण भी राम के सदृश भरत के त्यागी स्वभाव से परिचित हैं। राम के पास पहुंचने के पूर्व तीन स्थलों पर उन्हें सन्देह रूपी संघर्ष का सामना करना पड़ता है। एक अयोध्या के नागरिकों से, दूसरा श्रृंगवेर पुर के नागरिकों से और तीसरा भारद्वाज आश्रम के तपस्वियों से। इन तीनों संघर्षों की तात्त्विक व्याख्या करके उन्हें त्रिस्तरीय व्यवधान के रूप में देखा है। वे क्रमश: तमोगुण,[1] रजोगुण,[2] एवं सतोगुण[3] की परिस्थितियां हैं जिस पर विजय प्राप्त करके भरत (भरत अथवा भक्त) राम (अथवा ब्रह्म) के पास पहुंचते हैं। यह त्रिवर्गीय व्यवधान क्रमश: क्षत्रिय राज्य, शूद्रराज्य, ब्राह्मण राज्य (आध्यात्मिक राज्य) की परिस्थितियां हैं। यह व्याख्या कवि के मौलिक चिन्तन का सुपरिणाम है।

३. चित्रकूट में राम-भरत-मिलन को भी कवि नवीन रूप में प्रस्तुत करता है। भरत का डेरा, रात्रि आ जाने के कारण चित्रकूट के निकट पड़ता है। प्रात: भरत अपने डेरे से, एवं इधर अन्तर्यामी प्रभु राम अपनी पुरी से एक दूसरे की चल पड़ते हैं। मार्ग में ही दोनों का मिलाप होता है।

४. भरत राम से अयोध्या वापस चलने का प्रस्ताव चित्रकूट सभा में नहीं रखते हैं, वरन् कवि भरत एवं राम को प्रकृति के सौन्दर्य-दर्शन के बहाने एकान्त में ले जाता है। वहां भरत राम की इच्छा जानने के लिए अप्रत्यक्ष रूप में उनसे मानव जीवन के मर्म के साथ प्रेम कर्तव्य के पारस्परिक संघर्ष के संबंध

---

१. अयोध्या के नागरिक

२. श्रृंगवेरपुर के नागरिक

३. भरद्वाज आश्रम के तपस्वी

में पूछते हैं। राम कर्त्तव्य की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं और कर्तव्य विवेचन के मध्य अपने वनगमन के महत् उद्देश्य को प्रकट कर देते हैं। अत: भरत का मुंह पहले ही बन्द हो जाता है।

५. चित्रकूट सभा प्रसंग में कवि ने एक अन्य उद्भावना से भी काम लिया है। भरत को राम के लोक-सेवा-व्रत का पता लग गया था, अत: वह कुछ भी नहीं कह पा रहे थे। राम के प्रत्यागमन की समस्या अन्य ढंग से प्रस्तुत होती है। यद्यपि गर्मी की ऋतु थी किन्तु अचानक ही आंधी-पानी का उत्पात होता है अत: निर्णय शीघ्र ही करने का विचार किया जाता है। चार्वाक पन्थी जाबालि, स्मृतिकार महामुनि, वशिष्ठ, और विदेहराज जनक अपने ढंग से तर्क प्रस्तुत करते हैं। आपातत: निर्णय का भार स्वयं भरत के ही कन्धों पर आता है। भरत वही करते हैं जो राम को स्वीकार्य था।

6. रचना के मुख्य लक्ष्य भरत थे अत: कवि ने भरत के तपस्वी जीवन पर विशेष प्रकाश डाला है। अयोध्या में 'सन्त' भरत ने कठोर साधना का जो मार्ग स्वीकार किया था उसको कवि ने सेवाव्रत के 'अष्टप्रहर' के विविध कार्यक्रमों के रूप में वर्णन किया है — यथा: रात्रि के शेष पहर में पादुका पूजन, आत्मचिन्तन आदि, दिन के प्रथम प्रहर में पुरवासियों के दु:ख सुख के सम्बन्ध में वार्तालाप, द्वितीयप्रहर में मित्रों से परामर्श तथा शासन-विधान और राजस्व व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में उचित आदेश, तृतीय प्रहर में माण्डवी से अन्त:पुर के विषय में अनुसंधान योजना तथा स्वल्प विश्राम, चतुर्थ प्रहर में राज्य-निरीक्षण, रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वल्प व्यायाम, सन्ध्योपासना, गुरु सत्संग रात्रि के द्वितीय प्रहर में गुप्तचरों की चर्चा, रात्रि के तृतीय प्रहर में अवयवों का विश्राम। अत: भरत से सम्बन्धित घटनाओं के अल्पाधार को भरत के चरित्र के साधक रूपकी झांकी देकर कवि प्रसंग का विस्तार करता है।

प्रसंगों की सामयिकता—

कवि ने कथा को जिस राजनीतिक दृष्टिकोण से देखा है उस पर समसामयिक जीवन (राष्ट्रीयता) का स्पष्ट प्रभाव है । अपनी पूर्ववर्ती रचना 'कोशल-किशोर' की भांति ही यहां भी राम वनगमन को राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखा है । रामायण एवं मानस में भी वनवास प्रसंग में पिता की आज्ञा के निमित्त राक्षस बध द्वारा मुनियों के साधनामार्ग को निष्कंटक करने का छद्म उद्देश्य भी अंतर्निहित था । उस लोक कल्याण की भावना को आधुनिक युग की भावना के अनुसार आर्यसंस्कृति के प्रचार अथवा आर्यावर्त को एकता के सूत्र में बांधने की नवीन भावना के रूप में देखा है —

वहां तुम शक्ति संगठित करो
कि जिससे विकसे आर्यावर्त
यहां मैं उत्तर अभिमुख करूं
वनों में रह दक्षिण आवर्त

<< << <<

उभयदिशा एकादश की भांति
एक भाई का है ही संग
हो उठे उत्तर दक्षिण एक
तुम्हारा भारत बने अभंग ।[१]

---

१. साकेत संत, पृ० १४६

भारत को एकछत्र शासन के रूप में देखने का स्वप्न गांधी का भी था। कवि गांधीवादी नीति एवं जीवन पद्धतियों से अत्यधिक प्रभावित है। मनुजता को जीवन का मर्म समझना, प्रेम को ही उद्देश्य प्राप्ति का साधन मानना, जनता में जनार्दन का दर्शन करना आदि तत्कालीन जन जीवन में व्याप्त वैचारिक प्रवृत्तियां हैं जिसे कवि राम पर आरोपित करके देखता है। भरत राम द्वारा निर्दिष्ट सेवाव्रत एवं सुशासन के आदर्श का निर्वाह करते हैं। भरत की तपस्विता एवं उनके सुशासन के माध्यम से कवि आधुनिक युग को सन्देश देना चाहता है।

दिवोदास[1]—

कथा का आधार—

स्कंद पुराण में दिवोदास की कथा का विस्तृत वर्णन प्राप्त है। पुराणानुसार तप:निष्ट राजर्षि रिपुंजय के पास जाकर ब्रह्मा ने समुद्र पर्वत, वनों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी का भार सम्हालने को कहा तब उन्होंने एक ही शर्त पर स्वीकार किया कि देवतागण उनके राज्य से चले जायं।[2] इस तरह देव अनुग्रह विहीन होकर भी उनके राज्य की प्रजा अत्यधिक सम्पन्न और सुखी थी।[3] पुराण की इस कथा को कवि ने जिस मानव प्रशस्तिगान एवं उसकी कर्मठता की महत्व स्थापना के संदर्भ में प्रयोग किया है उसके लिए उसने कथा को युगानुकूल नवीन विस्तार भी प्रदान किया है।

---

१. मैथिलीशरण गुप्त, सन् १९५७ ई०

२. स्कन्द पुराण, काशीखंड, पूर्वार्द्ध, अध्याय ३९

३. वही, अध्याय ४३।

१. रिपुंजय के तप का वर्णन पुराणों में भी प्राप्त होता है। तपनिष्ठ राजर्षि को आदेश देते समय ब्रह्मा कहते हैं कि 'तुम राज्य करोगे तो वर्षा होगी। दूसरा पापनिष्ठ राज्य करेगा तो देव वर्षा नहीं करेंगे।'[१] रिपुंजय के चरित्र के माध्यम से लोककल्याण के भावों की स्थापना के लिए कवि इस प्रसंग को नवीन रूप में प्रस्तुत करता है। रिपुंजय एक समय समाधि से उठते हैं तब काशीराज्य में चारों ओर व्याप्त अकाल की विभीषिका को देखकर उनका मन अपनी ही आत्मोन्नति के लिए किए गए तपस्या के लिए धिक्कारता है —

इधर मुझे स्वर्गाधिकार भी सुलभ आज निज हेतु,
फहराया है मैं ने अपना पुरुष-कीर्ति का केतु।
पर अपनों के लिए क्या किया यह है एक विचार,
क्या पाया मेरी धरती ने धर कर मेरा भार ?[२]

इसी समय ब्रह्मा का आगमन होता है और अकाल पीड़ित काशीराज्य का भार रिपुंजय को सौंपते हैं।

२. दिवोदास को देवों से विरोध नहीं किन्तु वह मानव को देवत्व के आतंक से मुक्त करना चाहता है। पुराणकार ने दिवोदास के देव-विरोध का विशेष कारण नहीं दिया है, किन्तु आधुनिक युग का मानवतावादी कवि मनुष्य की महत्वस्थापना की दृष्टि से प्राचीन प्रसंग को ~~लेकर~~ नवीन अर्थ प्रदान करता है—

हम पृथ्वी के पुत्र हमीं पर निज भूमा का भार।
कर दी है देवावलम्ब ने नर की निजता नष्ट
अमृत पुत्र होकर भी हैं हम पुरुष पद से भ्रष्ट।[३]

---

१. स्कन्द पुराण, काशीखंड, पूर्वार्द्ध, अध्याय ३६, श्लोक ४२

२. दिवोदास, प्रतीक, ग्रीष्म १९४७, पृ० ६-७

३. वही, १९४७, पृ० ६

३. स्कन्द-पुराण में उल्लेख है कि दिवोदास को राज्य भार सौंपते समय ब्रह्मा कहते हैं कि नागराज वासुकी तुम्हें पत्नी बनाने के लिए अनंग मोहिनी नामक अपनी कन्या देंगे।[१] इस उल्लेख के आधार पर कवि दिवोदास तथा अनंगमोहिनी के साक्षात्कार, पूर्वानुराग तथा पारस्परिक स्वीकृति के रूप में इस प्रसंग को विस्तार देता है किन्तु अनंगमोहिनी के सहयोग से राष्ट्रहित की कल्पना कवि की मौलिक उद्भावना है —

प्रिये प्रिये, चिन्ता न करो तुम, रहो पार्श्व में नित्य
आओ मिल कर करें राष्ट्र के लिए कठिन भी कृत्य ।[२]

४. यहाँ पुराण की कल्पना के अनुरूप काशीराज्य के अकाल के लिए इन्द्र पानी नहीं देते हैं वरन् दिवोदास अपने मानवीय पौरुष एवं कर्मशीलता का परिचय देता है और उनके उद्योग से सुख की स्थापना होती है —

पर बहती गंगा पर भी क्या गयी तुम्हारी दृष्टि।

x x x x x x

सुफला अब भी भूमि हमारी, चलो करें उद्योग
सुफला इसे बना लें मिलकर सम्भोगी हम लोग।[३]

रावण महाकाव्य[४]—

कथा का स्वरूप— बाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में रावण-

---

१. स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, पूर्वार्द्ध, अध्याय ३६, श्लोक ३७
२. दिवोदास प्रतीक, पृ० १४
३. वही, पृ० १५
४. लेखक—श्रीहरिदयालु सिंह, समय १९५२ ई०

वंश का वर्णन विस्तार से प्राप्त है। राम के राज्याभिषेक के सुअवसर पर अनेक ऋषियों की उपस्थिति में अगस्त्य मुनि रावण-वंश का परिचय देते हैं। बाल्मीकि रामायण के अनुसार ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के पश्चात् उसकी रक्षा के लिए हेति -प्रहेति दो राक्षसों को उत्पन्न किया। प्रहेति धार्मिक प्रवृत्ति का था अतः वह वन में जाकर तपस्या करता है किन्तु हेति काल की बहन भया से विवाह करता है। उसके सन्तान का नाम विद्युत्केश था जिसका विवाह सन्ध्यापुत्री सालकटंकटा से होता है। कुछ काल पश्चात् सालटंकटा ने गर्भ धारण किया और मन्दराचल पर्वत पर एक पुत्र उत्पन्न किया जिसे वह वहां की वीथियों में छोड़कर लौट आती है। बालक मुंह में मुट्ठी डाल कर धीरे-धीरे रोने लगा। उसी समय शिव-पार्वती उधर से जा रहे थे। उन्होंने दयार्द्र होकर उस शिशु को नवयुवक बना दियातथा आकाशचारी विमान देकर यह वरदान भी दिया कि आज से राक्षसियां जल्दी ही गर्भधारण करेंगी, शीघ्र ही प्रसव करेंगी तथा उनके बालक भी तत्काल बढ़ कर माता के समान हो जाएंगे। विद्युत्केश कायहपुत्र ही सुकेश कहलाया। सुकेश का विवाह ग्रामणी नामक गन्धर्व की कन्या देववती से होता है। देववती के माल्यवान्, सुमाली और माली नामक तीन पुत्र होते हैं। नर्मदा नामक एक गन्धर्वी ने अपनी तीन कन्याओं का विवाह इन तीनों बन्धुओं से कर दिया। सुन्दरी माल्यवान की की पत्नी बनती है, केतुमती का विवाह सुमाली तथा वसुदा का विवाह माली से होता है। सुमाली तथा केतुमाली ही रावण के मातृकुल के थे और उनके अनेक पुत्र (प्रहस्त भी) एवं कैकसी और कुम्भीनसी एवं दो कन्याएं थीं। पहली कन्या कैकसी का विवाह विश्रवा मुनि से होता है जिनके तीनपुत्र (रावण, कुम्भकरण, विभीषण) तथा एककन्या (शूर्पणखा) थी।

रावण के पितृकुल का विकास सीधे ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य मुनि से होता है। मुनि एवं तृणबिन्दु की कन्या तृणबिन्दा से विश्रवा का जन्म होता है। विश्रवा एवं भारद्वाज ऋषि की कन्या से वैश्रवण उत्पन्न होते हैं।

यही वैश्रवण तपस्या के द्वारा लोकपाल धनेश बनते हैं तथा ब्रह्मा से पुष्पक विमान प्राप्त करते हैं। वही विश्वकर्मा के आदेश से लंकापुरी में यक्षों एवं राक्षसों के शासक बन कर निवास करते हैं। रावण विभीषण और कुम्भकरण तथा शूर्पणखा इसी कुबेर के भाई-बहन एवं विश्रवा-कैकसी से उत्पन्न सन्तानों की वंशपरम्परा की अगली पीढ़ी में आते हैं ।

रावण-महाकाव्य के रचनाकार ने अपने ग्रन्थ में (मेघनादवध की ही भाँति) दैत्यकुल के प्रतापी राजा रावण को नायक पद पर स्थापित करके उनसे संबद्ध बाल्मीकि रामायण के अनेक कथा प्रसंगों की नवीन व्याख्या नवीन प्रसंगों की कल्पना एवं चरित्रों का नवीन मूल्यांकन किया है। कवि स्वभावत: नायक का पक्षपाती होता है, अत: प्राचीन कथा को नवीन तर्क के आलोक में से विश्लेषित करके सिद्ध करने का प्रयत्न करता है कि दानव कह कर तिरस्कृत किया जाने वाला यह वर्ग न नितान्त उपेक्षणीय है और न प्राचीनों की दृष्टि ही निष्पक्ष थी — 'राक्षसियां अधिकांश देवयोनि गन्धर्वों, दैत्यों, यक्षों की कन्याएं थीं। उन्हें राक्षस प्रवर रावण ने अपहरण नहीं किया था प्रत्युत उनके गुरुजनों ने राक्षसों के वंश, और गौरव, विद्वता एवं शौर्यादि लोकोत्तर गुणों पर मुग्ध होकर ही तथा अग्नि को साक्षी देकर विधिवत् कन्यादान दिया था। राक्षस वेदाध्ययन, तपस्या, शिवार्चन इत्यादि सभी कुछ करते थे।'[१]

कथा का प्रारम्भ कैकसी-विश्रवा के विवाह प्रसंग से होता है। एकदिन सुमाली, केतुमती, प्रहस्त एवं कैकसी सुरम्य सरोवर के पास बैठे हुए कैकसी के सुयोग्य वर के सम्बन्ध में विचार कर रहे थे कि सहसा उधर से कुबेर का पुष्पक विमान निकलता है। वे कुबेर के पिता विश्रवा मुनि से अपनी कन्या का विवाह करने की सोचते हैं ताकि उनका दौहित्र भी इतना

---

१. रावण महाकाव्य, कवि की भूमिका से ।

ही योग्य उत्पन्न हो । वाल्मीकि रामायण में भी इस प्रसंग का वर्णन लगभग इसी रूप में प्राप्त होता है । वहां सुमाली अकेले ही अपनी कन्या के साथ पाताललोक से निकलकर मर्त्यलोक में विचरण कर रहा था कि उधर से कुबेर का विमान निकलता है और वह कैकसी के विवाह के सम्बन्ध में ऐसा सोचते हैं ।[१]

इसी प्रकार रावण महाकाव्य की अनेक घटनाओं का वर्णन वाल्मीकि रामायण की ही भांति है, किन्तु इन प्रसंगों को, कवि अपने उद्देश्यानुसार नवीन रंग प्रदान करता है । चित्र वही है पर रंग देवताओं के देवत्व को उभारने वाले नहीं वरन् राक्षसों के राक्षसत्व के निवारण के हैं । अतः परम्परागत अनेक प्रसंगों की घटनाएं वही हैं, पर उनका आशय, उसकी व्याख्या भिन्न है ।

प्रसंगों की नवीनता-
----

१. कैकसी विवाह प्रसंग वर्णन में कुछ अन्तर है । रामायणानुसार कैकसी जिस समय मुनि के पास जाती है सांध्यबेला[२] होने के कारण मुनि अंश से राक्षस उत्पन्न होता है । कवि अपने नायक रावण की माता की गरिमा की रक्षा के लिए इस प्रसंग को बचा जाता है । कैकसी जिस समय पहुंचती है मुनि तपस्यामग्न थे । वह भी उनके सम्मुख ही आसन लगा कर

~~१. रावण महाकाव्य कवि की भूमिका~~
१. वाल्मीकि रामायण ७।६
२. प्रायः प्राचीन विश्वास है कि सान्ध्यबेला में शिव अपने अनुचरों के साथ विचरण करते हैं । अतः इस समय गर्भ धारण करने पर राक्षस अंश का प्रभाव आ जाता है ।

समाधि में लीन हो जाती है। मुनि की समाधि टूटने पर मुनि द्वारा जल से छींटें देने पर कैकसी की समाधि टूटती है और कैकसी मनोवांछित वर के रूप में पुत्र-प्राप्त कर लेती है। यहां नारद कैकसी को उसकी पतिनिष्ठा से उसी प्रकार विचलित करना चाहते हैं जिस प्रकार की पार्वती को। कैकसी मुनि से ब्रह्मा के मानसपुत्रों की भांति मानसपुत्र की प्राप्ति करती है जिसे वह अपने पितृ-कुल में लौटने पर अपने माता के अनुरोध पर उत्पन्न करती है। वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग का उल्लेख नहीं है। रामायण में रावण जन्म के समय का अति बीभत्स चित्र खींचा गया है। रावण के जन्म के पश्चात् ही इन्द्र-देव समन्धि रुधिर की वर्षा करने लगे, मेघ गर्जना करने लगे, सूर्य की प्रभा फीकी पड़ गई, उल्कापात होने लगा। धरती कांप उठी, भयानक आंधी चलने लगी और समुद्र में तूफान आ गया।[१]

२. कवि के अनुसार राक्षसवंशी रावण, कुम्भकरण अथवा विभीषण तथा उनके पूर्वज भी तपस्या में उतने ही कठोर और अदम्य साहसी हैं जिस प्रकार देवतागण। किन्तु प्राचीन ग्रन्थों में इस तपस्या के पीछे राक्षसों की दुर्दम इच्छा एवं परपीड़न का जो उद्देश्य निहित है, उसको कवि स्वीकार नहीं करता है। रावण-महाकाव्य में माता कैकसी कुबेर की प्रति-द्वंद्विता में रावणादि अपने पुत्रों को तपस्या करने को कहती है। अपरिमेय शारीरिक शक्ति की प्राप्ति एवम् तप द्वारा अजेयता की प्राप्ति के पश्चात् उसके दुरुपयोग के रूप में रावण के अनेक अत्याचारों का वर्णन बाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है। वह देवलोक में कुबेर को परास्तकर उसके पुष्पक विमान को प्राप्त कर अपने को त्रिलोक-जयी समझने लगता है।[२] वह भगवान् शंकर से भी भिड़ जाता है। अतः शंकर से पराजित होकर चन्द्रहास

---

१. बाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड, नवम् सर्ग, ३१-३२

२. वही, सर्ग १५

संग प्राप्त करता है।[१] अयोध्या के रक्षक अनरण्य का बध करता है।[२] यम को पराजित करता है।[३] रसातल में भी पहुंचकर कालकेयों का भी बध करता है, वरुण पुत्रों को पराजित करता है।[४] इस प्रकार अनेक लोकों में उसके अत्याचार की गाथा परिव्याप्त थी। इतना ही नहीं वह अपनी बहन शूर्पणखा को ही विधवा बनाता है। अपने विजय से मदोन्मत्त मार्ग में जाती हुई सुन्दर कन्याओं को बलात् पकड़ कर अपने विमान पर बैठा लेता था है।[५] रम्भा के साथ बलात्कार करता है।[६] इन्द्रलोक पर आक्रमण करता है। मेघनाद इन्द्र को जीत कर लंका में लाता है।[७]

कवि ने रावण के चरित्र की रक्षा अथवा उसके प्रति न्याय दृष्टि के कारण रावण से सम्बद्ध इन समस्त कृत्यों को छोड़ दिया है। रावण के त्रिलोकजयी होने का वर्णन नवम् अध्याय में हुआ है किन्तु यहां कवि ने रावण के त्रिलोक विजय के संकल्प के पीछे जिस कारण का उल्लेख किया है, उससे उसके आततायी होने का नहीं वरन् उसके पराक्रम का परिचय प्राप्त होता है। कवि उसके मूल में एक नवीन प्रसंग की योजना करता है जो रावण के त्रिलोकजयी होने के संकल्प को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करता है। ग्रन्थ के अष्टम सर्ग में पुलस्त्य मुनि एक दिन रावण के पास अपने वंश का परिचय देते हैं

---

१. बाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड, सर्ग १६

२. वही , सर्ग १६

३. वही, सर्ग २१-२२

४. वही, सर्ग २३

५. वही, सर्ग २४

६. वही, सर्ग २६

७. वही, सर्ग २७, २८, २६

और यह बतलाते हैं कि यक्ष और राक्षस भाई हैं किन्तु यक्ष शक्तिशाली एवं देवतागण नय-निपुण थे जो हरि की सहायता से युद्ध करते हैं और विष्णु अपने चक्र से राक्षसों का संहार करते हैं। देवताओं का यह कृत्य सुनकर रावण को अत्यन्त क्रोध हो जाता है। अत: देवकुल से बदला लेने की भावना से वह त्रिलोक पर विजय प्राप्त करता है। उसका यश तीनों लोकों में छा जाता है। रामायण के सदृश वह त्रिलोक जयी होने का दम्भ नहीं भरता है।[१]

३. लंकापुरी का वृत्तान्त भी कवि ने नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। बाल्मीकि रामायण के अनुसार माली, सुमाली एवं माल्यवान तप द्वारा वरदान प्राप्त करके विश्वकर्मा से शंकर के महल की भांति हिमालय अथवा मेरु-पर्वत पर महल बनाने को कहते हैं। विश्वकर्मा उनसे दक्षिण में सुवेल एवं त्रिकूट पर्वत पर निर्मित लंका का पता बताते हैं जिसका निर्माण उन्होंने इन्द्र के आदेश पर किया था।[२] माली, सुमाली एवं माल्यवान वहां जाकर निवास करने लगते हैं किन्तु कालान्तर में उनके अत्याचार से पीड़ित होकर देवता विष्णु की शरण में जाते हैं। विष्णु युद्ध में इन राक्षस बन्धुओं को पराजित करके लंका खाली करा लेते हैं। अतएव बाल्मीकि रामायण के अनुसार लंका राक्षसों की थी किन्तु अपने ही अवगुणों के कारण वे उसे खो देते हैं।

कवि ने बाल्मीकि रामायण की भांति इन समस्त घटनाओं को स्वीकार किया है परन्तु इन प्रसंगों के वर्णन से स्पष्ट किया है कि देवताओं ने ही उनके साथ अत्याचार किया था। इसके लिए घटनाओं में यत्किंचित परिवर्तन भी करता है। लंका का निर्माण इन्द्र के आदेश पर विश्वकर्मा ने नहीं वरन् माल्यवान् ने मयदानव से बनवाया था। प्रहस्त के लंका छोड़ देने पर के प्रस्ताव का शान्तिपूर्ण ढंग से कुबेर द्वारा स्वीकृति प्रदान करने की घटना का वर्णन रामायण में भी उसी रूप में प्राप्त होता है।

---

१. जितं त्रिभुवनं मेने दर्पोत्सेकात् सुदुर्मति:

४. लंका के स्वरूप वर्णन के सम्बन्ध में भी कवि ने नवीनता प्रदर्शित की है। आधुनिक सेतुबन्ध रामेश्वरम् को देख कर इतिहासकारों ने अनेक ढंग से विचार प्रकट किए हैं कि भारत से लंका तक कोई सेतु क्या भाग था । इस तथ्य पर अभी एक मत से कुछ भी नहीं कहा गया है किन्तु कवि के विचारानुसार — 'क्या इसका (लंका) भारत जैसे आर्य देश से सम्बन्ध था अथवा नहीं। इस विवादास्पद प्रश्न पर बहुत कुछ कहा जा सकता है। यदि कहा जाए कि किसी पर कृ भय की आशंका से समुद्र को लंका की परिखा बनाए रखने की भावना से सर्वथा अलग रखा गया तो यह तर्क कुछ जंचता नहीं है। राक्षस तो स्वयं भय को भी भयभीत करने वाले थे। फिर यह लोग देवलोक पर आक्रमण करने के लिए ससैन्य प्रयाण करते थे तो कैसे समुद्र पार करते थे? इससे अनुमान होता है कि पहले लंका से भारत आने का कोई सेतु अवश्य था।'[१]

कवि ने अपना विचार चरितार्थ करके दिखाया है। चतुर्थ सर्ग में प्रहस्त कुबेर के पास लंका छोड़ने का प्रस्ताव लेकर इसी सेतु से आता है। कवि के अनुमानानुसार लंका छोड़ते समय देवताओं ने इस सेतु को नष्ट कर दिया था। पंचम सर्ग में इस प्रसंग की भी योजना है कि रावण पुन: सेतु निर्माण का प्रस्ताव रखता है किन्तु प्रहस्त तैयार नहीं होता है।

५. बन्धु-त्रय एवं बहन सूपर्णखा के विवाह प्रसंग को कवि परिवारोचित मर्यादा के साथ वर्णन करता है। रामायण के अनुसार एक दिन दशग्रीव मृगया के लिए वन में घूम रहा था कि दिति पुत्र मय एवं मयकन्या को देखता है। परस्पर परिचय प्राप्त करने पर मय दानव ने वहां ही अग्नि-प्रज्ज्वलित करके अपनी कन्या मन्दोदरी का विवाह रावण के साथ कर दिया। कवि ने इस प्रसंग की योजना नवीन ढंग से की है। लंका को छोड़ते समय कुबेर

---

१. रावण महाकाव्य—कवि की भूमिका से।

उस शिवमूर्ति को उठा ले गए जिसके मस्तक पर ऐसा बाल मयंक था जिसके प्रकाश में रात्रि भी दिन जैसी प्रतीत होती थी । रावण के आदेश पर मय-दानव वैसी ही मूर्ति और एक ऐसे यंत्र का निर्माण करता है जो विमान को खींच कर जल में डुबा देता था । उसके पुरस्कारस्वरूप मयदानव अपनी लड़की के विवाह का प्रस्ताव करता है । शूपर्णखा लड़की देख कर पसन्द करती है और तीनों भाई एवं स्वयं शूपर्णखा का भी विवाह होता है ।

६. राम रावण के पारस्परिक द्वेष के प्रकटीकरण के रूप और राम-रावणयुद्ध आदि प्रसंगों एवं उपप्रसंगों के वर्णन में घटनाएं अधिकांशत: वही हैं किन्तु उनका अर्थ परिवर्तित हो गया है । राम-रावण-संघर्ष व्यक्तिगत रागद्वेष के स्तर पर व्यक्त न होकर राजनैतिक दांव-पेंचयुक्त संघर्ष के रूप में अभिव्यक्त है । वाल्मीकि रामायण अथवा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में राम-रावण-युद्ध प्रसंग में स्वभाव से आततायी रावण ही आक्रामक है । यद्यपि वनवास प्रसंग के मूल में कैकेयी के दोनों वर कारणरूप में निहित है किन्तु रामायण में भी अनेक स्थलों पर उल्लेख है कि राम के प्रादुर्भाव एवं वनगमन के मूल में रावण विनाश का मूल उद्देश्य निहित है । अरण्यकाण्ड में शरभंग मुनि ऋषि के आश्रम पर एकत्रित होकर राक्षसों द्वारा उत्पीड़ित होने का वर्णन करने पर राम अपने वनवास के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं :—

" आप मुझसे ऐसे प्रार्थनायुक्त वचन न कहें, क्योंकि मैं तपस्वियों का आज्ञाकारी हूं । मैंने केवल अपने ही कार्य से राक्षसों से आप लोगों के तिरस्कार को दूर करने के लिए वन में प्रवेश किया है । पिता की आज्ञा पालन करने के बहाने एवं आप लोगों की अर्थसिद्धि के लिए भी दैवगति से मैं वन में प्रविष्ट हुआ हूं ।[१]

कवि ने अपने ग्रन्थ में उपर्युक्त घटनाओं की नवीन योजना की है

---

१. वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग ६।२२-२३

जिसके द्वारा यह सिद्ध हो सके कि आक्रामक तो राम थे अत: इससे सम्बद्ध घटनाओं में निम्नलिखित परिवर्तन किया है ---

(क) मुनियों के तप में राक्षसगण विघ्न नहीं डालते वरन् स्वयं मुनिगण ही उत्तरापथ के बक्सर क्षेत्र में अनेक प्रकार से अन्याय कर रहे थे, अभिचार मंत्र जपते हैं और यज्ञ के व्याज से रावण का अनिष्ट करते हैं। अतएव वैर का प्रारम्भ स्वयं देवताओं की ओर से होता है। एक दिन मारीच भी रावण के दरबार में (जिसके उदरस्थल में एक तीर था) आकर समाचार देता है कि दशरथ के दोनों पुत्र उनके ऊपर अत्याचार कर रहे हैं। अत: आततायी राम ही हैं।

(ख) विभीषण की सलाह पर रावण शान्ति से काम लेता है। बक्सर को छोड़ देता है और पंचवटी नयी राजधानी बनती है। शूपर्णखा की अध्यक्षता में खरदूषण वहां का शासन भार संभालता है। इस नवीन प्रसंग की कल्पना से कवि यह प्रदर्शित करना चाहता है कि रावण का राज्याधिकार भारत में भी दूर उत्तरापथ तक था और मुनियों द्वारा उनके क्षेत्र पर हस्तक्षेप होता है।

(ग) अपने राज्य में राक्षस इस बात की घोषणा करते हैं कि बिना अनुमति के यज्ञ-कार्य वर्जित है किन्तु मुनिगण तब भी यज्ञ करना बन्द नहीं करते हैं अत: प्रान्तशासिका सैनिक शासन की घोषणा करती है। दमन चक्र में मुनिगण पिसते हैं। यहां भी संघर्ष का प्रारम्भ मुनियों द्वारा राजाज्ञा उल्लंघन से होता है।

(घ) शारीरिक दृष्टि से अक्षम मुनि धर्मयुद्ध का प्रारम्भ करते हैं। अत: कवि परम्परागत धारणा के विरुद्ध यह स्थापित करना चाहता है कि मुनियों की सहनशीलता उनकी कूटनीतिक चाल थी। वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि शरभंग मुनि स्वेच्छा से अग्नि की समाधि स्वीकार करते हैं।[1]

---

१. वा० रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग ५। ३८, ३६, ४०

कवि ने इस घटना को नवीन अर्थ दिया है कि मुनियों के धर्मयुद्ध का प्रारम्भ इसी से होता है। शरभंग मुनि स्वेच्छा से अग्नि में प्रवेश करते हैं और मुनियों द्वारा यह प्रचारित किया गया कि उन्हें राक्षसों ने जलते हुए अग्नि में डाल दिया।

(छ०) शूपर्णखा राम के पास प्रेम निवेदन लेकर नहीं गई थी, प्रत्युत मुनियों के राजनैतिक षड्यंत्र के परिणामस्वरूप राम-लक्ष्मण ने शूपर्णखा से बदला लिया था। सत्याग्रह के पश्चात् लौट आए मुनियों ने शूपर्णखा-बध का निश्चय कर लिया था। एक दिन अंगरक्षकों से वियुक्त होकर शूपर्णखा राम की कुटिया की ओर पहुंच जाती है। राम-लक्ष्मण शूपर्णखा को पहचान कर उसका बध करना चाहते हैं, पर सीता के मना करने पर उसको विरूप कर देते हैं।

(झ) शूपर्णखा रावण के पास जाकर अपने अपमान का बदला लेने को नहीं कहती, वरन् दर्पण में अपना मुख देखकर अपने रूप का चित्र बना कर रावण के पास भेज देती है और दरवाजा बन्द करके स्वयं आग लगाकर मर जाती है।

(ज) सीता हरण के कारण के रूप में कवि परिकल्पना करता है कि इसके मूल में राम का अत्याचार था। पहले रावण राम के सभी अत्याचारों को सहन करता है किन्तु बहन का अपमान अन्तिम घटना थी जिसने रावण को राम के विरुद्ध युद्ध करने को विवश कर दिया। सीता का हरण वह न तो शूपर्णखा के उत्तेजित करने पर करता है और न रावण काम-लोलुप ही था, बल्कि वह सोचता है कि राम-लक्ष्मण जैसे बालक से लड़ने में लोक निन्दा होगी अत: रामपत्नी का अपहरण करके राम को समाज में अपमानित करना चाहता है।

(झ) अंगद-रावण दरबार में अपशब्द कहता है कि रावण सीता को लौटाकर राम का चरण-स्पर्श करे। अत: रावण को युद्ध की चुनौती

देनी पड़ती है।

इस तरह राम-रावण युद्ध में राम की ओर से आक्रामक होने के अनेक प्रमाण कवि अपनी नवीन प्रसंग योजना के द्वारा देता है।

७. कवि विभीषण को देशद्रोही, भातृद्रोही, के रूप में अत्यन्त निकृष्ट और स्वार्थी जीव सिद्ध करता है। वह राम से इसलिए जाकर मिलता है कि उसके मन में लंका का राज्य प्राप्त करने का मोह है। राज्याभिषेक के पश्चात् वह मन्दोदरी से बलात् विवाह करने तक का अनैतिक विचार रखता है।

८. ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय में रावण-धन्यमालिनी पुत्र अरिमर्दन द्वारा विभीषण से पिता के बैर का बदला लेने की घटना कल्पित है। अरिमर्दन की सहायता के लिए लवकुश पहुंचते हैं। विभीषण पराजित होकर सन्यास ग्रहण करता है।

९. कवि ने रावण के पुत्रों में मेघनाथ को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। बाल्मीकि रामायण में भी मेघनाद के सर्वाधिक दुर्धर्ष होने का उल्लेख है।[१] किन्तु रावण महाकाव्य में मेघनाद का भावुक प्रेमी के रूप में जैसा चित्रण किया गया है वह कवि की कल्पना है। दो अध्यायों में (६-७) स्वतंत्र रूप से मेघनाद जन्म, उसकी तपस्या, उसके प्रेम तथा विरह का वर्णन है। घटना इस प्रकार है — एक दिन मृगया से लौटते समय मेघनाद को कन्याओं का करुण-क्रन्दन सुनाई पड़ता है। वस्तुत: नागकन्या सुलोचना कमलपुष्प लेने के विचार से तैर रही थी कि सहसा नक्र ने उसे पकड़ लिया। मेघनाद उसकी दशा देखकर धीरज बंधाता है और मकर को मारकर सुलोचना को मुक्त करना चाहता है। किन्तु मकर के मुख से छूटी हुई सुलोचना धार में बह जाती है।

---

१. बाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, प्रथम अध्याय २८, २९, ३०

मेघनाद सुलोचना को जल से निकाल कर उसकी रक्षा करता है किन्तु प्रथम दर्शन में ही उनमें परस्पर प्रेम हो जाता है। वे एक दूसरे को अंगूठी दान देकर गन्धर्व विवाह करते हैं।

पातालपुरी से लौटने पर मेघनाद सुलोचना के विरह में दिन-प्रति दिन क्षीण होता जाता है। वैद्य बुलाए जाते हैं। वैद्य मेघनाद के रोग को मन्मथ-ज्वर बतलाते हैं। उनके लिए समुद्र किनारे महल बनवाया जाता है, सखियों द्वारा उपचार होता है। एक दिन चन्द्रमा के द्वारा सुलोचना के पास सन्देश भेजते हैं। यह सम्पूर्ण प्रसंग कवि की कल्पना है।

प्रसंगों की आधुनिकता—

अनेक कथा-प्रसंगों की योजना पर तत्कालीन परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

वाल्मीकि रामायण में लंका वर्णन प्रसंग में कहा गया है कि लंका नगरी विभिन्न प्रकार के यंत्र एवं शस्त्रों से सुरक्षित है।[१] कदाचित इस संकेत का आधारग्रहण करके लंका एवं भारत के मध्य कवि आधुनिक युग की भांति यंत्रसेतु की कल्पना करता है। कवि लंका के निकट समुद्र में ऐसे यंत्र की कल्पना करता है जो तत्कालीन यानों को खींचकर समुद्र में डुबा देता है।

ग्रन्थ का प्रकाशन सन् १९५२ में हुआ है। उसके पूर्व कवि स्वतंत्रता आन्दोलन में तत्कालीन भारतीय जनता एवं विदेशी सत्ता से संघर्ष के अनेकों दृश्य देख चुका होगा जिसकी स्पष्ट झलक अनेक प्रसंगों की योजना में स्पष्ट ही मिलती है। रामायण में रावण शूर्पणखा के पति वध के पश्चात्

---

१. हेमप्राकारपरिखा यन्त्रशस्त्रसमावृता।

—वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, ३।२८

अपनी बहन को आश्वासन देता हुआ कहता है कि दंडकारण्य में खरदूषण चौदह हजार सेनानियों के साथ शासन करते हैं। तुम वहां ही जाकर रहो। खरदूषण तुम्हारी ही आज्ञा का पालन करेंगे। कवि ने तत्कालीन गवर्नर सरोजनी नायडु के सदृश शूपर्णखा को भी प्रान्तशासिका के रूप में देखा है। इसी प्रकार मुनियों एवं राक्षसों के युद्ध प्रसंग में कवि सत्याग्रह आन्दोलन को चरितार्थ करता है। शूपर्णखा द्वारा सैनिक शासन की घोषणा, मुनियों का सत्याग्रह, सभा करना, राक्षसों द्वारा सभा भंग करने का आदेश देना आदि दृश्य आधुनिक युग का प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है। इसी तरह ग्रन्थ के अन्तिम सर्ग में लवकुश के प्रयत्न से लंका के स्वतंत्रता की घोषणा, एवं प्रजाशासन (प्रजातंत्र) की स्थापना भी तत्कालीन स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के स्वशासन की स्थापना के सदृश है —

> इमि घोर युद्ध निवारि कुस ने सभा आयोजन कियो।
> अस चन्द्रकेतु कुमार में तेहि मांहि निज भाषन दियो।
> आजु ते लंकापुरी स्वाधीन तो ह्वै जारहौं।
> निज करन सों शासन व्यवस्था प्रजा आपु बनाइ हैं।[1]

रामराज्य[2] —

कथा का स्वरूप —

जैसा कि पुस्तक के नाम से प्रकट होता है कवि का मुख्य उद्देश्य रामकथा के माध्यम से 'रामराज्य' के विविध तत्वों को युग के लिए पुन-

---

१. रावण महाकाव्य, अ० १६, पृ० २२७

२. लेखक डा० बलदेवप्रसाद मिश्र, प्रकाशन समय, १९५० ई०

स्थापित करना है,[१] जिसके लिए कवि ने कथा को जिस रूप में स्वीकार किया है उसका आधार मानस एवं वाल्मीकि रामायण है। ग्रन्थ का प्रारम्भ सुमंत्र के साथ राम-लक्ष्मण, सीता के वनप्रस्थान से होता है। राम का सुमंत्र को विदा करना, चित्रकूट निवास, अत्रिमुनि एवं देवी अनसूया से भेंट एवं उपदेश ग्रहण करना, भरत आगमन, भरत प्रत्यागमन, पंचवटी वास, सूपर्णखा का विरूपीकरण, सीताहरण, शबरी आतिथ्य, बालिवध, हनुमान द्वारा सीता की खोज, लंकादहन, रावणवध, अयोध्याप्रत्यागमन एवं राज्याभिषेक तक के कथा वर्णन में कवि ने मुख्यत: मानस का आधार ग्रहण किया है। राम कथा के उत्तरभाग— सीता का निष्कासन, लवकुश जन्म, सीता-पृथ्वी-प्रवेश, राम-स्वर्गारोहण तक के प्रसंग का वर्णन वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड पर आधारित है। राजा राम के अन्य कृत्य—कुत्ते के प्रति न्याय की कथा, दुष्ट गिद्ध से उल्लू की रक्षा, शूद्र तपस्वी की हत्या— भी रामायण के अनुकरण पर है।

कवि द्वारा प्रयुक्त विभिन्न प्रसंग आधार-ग्रन्थ की अनुकृति मात्र हैं। अत: प्रसंगों की मौलिक उद्भावना का प्रश्न ही नहीं उठता है। मौलिकता तो उन प्रसंगों के माध्यम से व्यक्त होने वाले सामयिक उद्देश्य— 'रामराज्य' की स्थापना — में है जिसके निरूपण के फोंक में कवि ने कथा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है।

कथा की सामयिक अभिव्यंजना : रामराज्य की स्थापना—

ग्रन्थ का प्रणयन जिस समय हुआ था भारत स्वतंत्र हो चुका

---

१. जैसा कि कवि ने कथा-प्रणयन के मूल में द्विवेदी के पत्र की इन पंक्तियों का उल्लेख किया है — ' आप सत्कवि हैं। बोलचाल की भाषा में एक काव्य लिखिए। उसका नाम रखिए रामराज्य Utopia के सदृश। काव्य नायक कल्पित हो। उसके सुप्रबन्ध का वर्णन कीजिए। उससे सिर्फ यह सिद्ध हो कि सुराज्य ऐसा है।'

था, किन्तु जिस सुखप्रद राज्य की कल्पना लेकर पूरी एक शताब्दी तक भारतवासी संघर्ष करते रहे उसका स्वरूप क्या होगा -- अब भारतीयों के समक्ष यही प्रश्न था। स्वतंत्रता के पश्चात् गांधी ने भारत में सुराज्य का जो स्वरूप निरूपित किया था उसका ही आदर्श ग्रहण करके रामकथा के माध्यम से कवि ने उसे त्रेतायुग में चरितार्थ करने का यत्न किया है। इस सामयिक उद्देश्य के कारण अपने पूर्ववर्ती दोनों काव्य रचनाओं की भांति ही यहां भी राम-रावण युद्ध को आर्य-अनार्य के पारस्परिक संघर्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में आधुनिक युग के स्वदेशी-विदेशी सत्ता के संघर्ष के रूप में देखा है। पूर्ववर्ती ग्रन्थों में जो सामयिक उद्देश्य अप्रत्यक्ष था उसे कवि ने इस ग्रन्थ में स्पष्ट और साकार कर दिया है। राम वन प्रयाण के समय ही राम अयोध्या के विषय में नहीं वरन् सम्पूर्ण भारत के विषय में सोचते हैं और कवि वनगमन के मूल में अन्तर्स्थित राष्ट्रीय उद्देश्य का स्पष्ट संकेत देता है --

लाभ विदेशी उठा रहे हैं भारत की इन फूटों का
दांव उन्हें हम कब तक देंगे हम, विश्वशान्ति के लूटों का।
अंधकार निःसीम उधर है इधर एक लघु दीप प्रकाश
किन्तु न कुछ से कुछ तो वह, महत् सदा लघु का सुविकास।[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए शान्तिपूर्ण प्रयत्नों के अतिरिक्त भारत की बहुमुखी दुरवस्था से मुक्त कराने के लिए राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक एवं शिक्षा-क्षेत्र में गांधी ने जो किया था -- वही यहां राम के माध्यम से व्यक्त है। राष्ट्रसेवा का प्रथम अभियान चित्रकूट से ही प्रारम्भ होता है और गांधी के ही सदृश राम का भी ध्यान सर्वप्रथम गांवों, कृषकों एवं गो-समूह की ओर जाता है। वह ग्रामीणों के साथ घुलमिलकर उनकी स्थिति सुधारने का यत्न करते हैं और प्रत्येक घर में एक दुधारी गाय होने की कल्पना भी करते हैं --

---

१. रामराज्य, अध्याय १, पृ० २३

सरल स्वाभाविक जीवन के हेतु- दूध फल का लव उपयोग ।
राम ने कहा कि प्रति ग्रामीण न्यूनतम इतना लहे सुयोग ।
कि हर घर एक दुधारू गाय, चार तरु हो फलवान रसाल ।
बने अपने हलधर भी स्वत: न केवल हो अपना गोपाल ।[१]

गांधी के सदृश ही समाज की शिक्षा प्रणाली की ओर राम का भी ध्यान जाता है और चित्रकूट में निवास करते समय वहां के निवासियों को व्यावहारिक एवं उपयोगी शिक्षा देना चाहते हैं केवल अक्षर ज्ञान नहीं ——

वही सच्ची शिक्षा है, जो कि कर सके हृदयों का संस्कार ।[२]

गांधी ने भी वर्धा की शिक्षा समितियों में यही विचार व्यक्त किया था । प्रभु राम का जन-जागरण एवं ग्रामोद्धार सम्बन्धी यह अभियान पंचवटी में चलता है, दूसरी ओर विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के प्रयत्न में वह लंका तक पहुंचते हैं । वैसे ही जैसे कि स्वतंत्रता संग्राम के समय एक ओर आन्तरिक शक्तियों (देश की दुरवस्था) से संघर्ष हो रहा था तो दूसरी ओर विदेशी सत्ता को देश से बाहर निकाल फेंकने का प्रयत्न । राम का राज्याभिषेक स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय स्वशासन की स्थापना का चित्र प्रस्तुत करता है । राज्याभिषेक के पश्चात् राष्ट्रधर्म की घोषणा होती है —— उसी प्रकार जैसे कि आधुनिक युग में `भारतीय संविधान` की घोषणा की गई थी । देश को निष्कंटक करने के पश्चात् राम को अपनी नीतियों को खुलकर व्यक्त करने का अवसर मिला है । ग्यारहवें एवं बारहवें सर्ग की योजना राम की नीतियों अर्थात् रामराज्य के विविध तत्वों के प्रकाशन के लिए ही हुआ है । एक ओर कवि शासक के गुणों की ओर संकेत करता है दूसरी ओर शिक्षा प्रचार, आध्यात्मिक विकास, भौतिक सुखों की विशेष व्यवस्थिति , यहां तक

---

१. रामराज्य

२. रामराज्य ४।५७

कि कल्याणकारी वैज्ञानिक उन्नति आदि विविध विकासोन्मुख तत्वों का संयोजन रामराज्य के तत्व-निरूपण के अन्तर्गत होता है। यहां रामराज्य की कल्पना ही ग्रन्थ की मूल प्रेरणा है —

त्रेतायुग का रामराज्य वह, कलियुग को आलोक दिखाये
जिसकी प्रबल प्रेरणा पाकर, शासन स्वप्न सत्य बन जाये
भारत की सीता समृद्धि को रावणत्व से मुक्त कराकर
खिल जाये रामत्व मनुज का ऐसा योग रचे विश्वेश्वर ।

x x x x x x

रामराज्य के साथ ही रामराज्य के तत्व
जनमन में अक्षय रहे, अपना अमर महत्व ।

पौराणिक पात्र : शीलनिरूपण के मौलिक तत्व—

'देवत्व' के स्थान पर 'मानवत्व' की प्रतिस्थापना का प्रयत्न इस युग के विभिन्न पौराणिक चरित्रों के निरूपण का मूलाधार है। किन्तु ये आस्तिक कवि राम-कृष्ण जैसे पात्रों के अवतारी रूप को भूल नहीं पाए हैं। साकेत, कौशल किशोर तथा कृष्णायन के कवि ने स्पष्टत: राम एवं कृष्ण के अवतार की ओर संकेत किया है —

होगया निर्गुण सगुण साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।[१]

x x x x

---

१. साकेत, सर्ग १, पृ० १८

इस परिवर्तनशील जगत में विकसित होकर,
आए हैं जब विष्णु राम रघुनन्दन होकर ।[१]

< <   < <   < <

धरती भार उतारन कारण
धरत मनुज तुम आसु समाया
सपितु, समातु, सभ्रात, सजाया ।
आत्मज, पौत्र, प्रपौत्र सजाती,
राज्य, प्रजा बल सुहृद बराती ।
निवसत महि माया विस्तारे,
मार्ग प्रवृत्ति मनहुं वपुधारे ।
ध्यान अगम्य कहति श्रुति जोई
चर्म चक्षु देखत जग सोई ।[२]

किन्तु इन विविध पौराणिक पात्रों के चरित्र चित्रण के स्तर पर उन्हें मानव रूप में ही प्रस्तुत किया है । इसके मूल में इस युग की बौद्धिकता है जो अलौकिकता, दिव्यता, अथवा चमत्कारिकता का विरोध करती है । दूसरी ओर इस बुद्धिवाद का ही रचनात्मक पक्ष `मानवतावाद` है जिसके अनुसार प्राचीन दिव्य-चरित्रों को भी मानव रूप में ही स्वीकार किया गया है ।

मानवतावाद के अनुसार मानवमात्र के अस्तित्व में विश्वास करने के कारण व्यक्तिवादी दृष्टि का विकास होता है जिसके परिणामस्वरूप पौराणिक पात्रों के चरित्र-निरूपण के समय उन्हें स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया गया है । मानवी करुणा से प्रेरित ये कवि इन परम्परागत पात्रों के अन्तर्मन में झांक कर उनके भावों का चित्रण करते हैं । प्रियप्रवास, वैदेही वनवास, साकेत,

---

१. कौशलकिशोर, पृ० २२३
२. कृष्णायन, पृ० ३७३

द्वापर आदि रचनाओं में घटनाओं के मध्य विभिन्न पौराणिक पात्रों के भावों का वर्णन भी हुआ है। इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय रचना द्वापर[१] है जिसमें भागवत की कथा का वर्णन नहीं है वरन् घटनाओं के मध्य पड़े पात्रों की भावनाओं का भावुक वर्णन है। कृष्ण, राधा, यशोदा, उग्रसेन, विधृता, बलराम, ग्वाल-बाल, नारद, देवकी, उग्रसेन, कंस, आदि विविध पौराणिक पात्र अपने मनोभावों के कारण अधिक मानवी प्रतीत होते हैं। कृष्ण का भक्त-वत्सल रूप अपना ही आश्रय ग्रहण करने को कहता है। राधा का कृष्ण के प्रति 'एकात्मक भाव' का वर्णन भी पूर्णतः पुराणानुसार है —

लो वह आप आरसी देखो
सखी सखी चिल्लाती
वह उद्धव-उद्धव की ध्वनि भी
है यह कैसी आती
यह क्या, यह क्या भ्रम या विभ्रम
दर्शन नहीं अधूरे
एक मूर्ति आधे में राधा
आधे में हरि पूरे।[२]

कृष्ण के प्रति गोपों का भाव भी भक्तिभाव का है जो कृष्ण के चरणों पर बलि-बलि जाते हैं —

बलिहारी बलिहारी जय जय
गिरिधारी गोपाल की।[३]

---

१. लेखक श्री मैथिलीशरण गुप्त
२. द्वापर, पृ० १६३
३. वही, पृ० ६४

कवि की मानवतावादी दृष्टि का विशेष प्रभाव देवकी, कुब्जा, नारद तथा विधृता के भावों के चित्रण में परिलक्षित होता है। पुराणकारों ने देवकी के सन्तान के बध का वर्णन किया है किन्तु उसके प्रतिक्रियास्वरूप देवकी के मन के भावों के चित्रण की ओर आधुनिक कवि की दृष्टि जाती है। पुराणों की विधृता मौन भाव से शरीर त्याग देती है किन्तु द्वापर की विधृता अपने प्रति किए अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह करती है —

अधिकारों के दुरुपयोग का
कौन कहाँ अधिकारी ?
कुछ भी स्वत्व नहीं रखती क्या
अर्द्धांगिनी तुम्हारी ?
नर के बाँटे क्या नारी की
नग्न मूर्ति ही आई ?
माँ बेटी या बहिन रूप ? क्या
संग नहीं वह लाई।[१]

किन्तु इन विविध पौराणिक पात्रों के अन्तर्मन की झाँकी की ओर दृष्टि करके भी ये कवि उन्हें कहीं भी कमजोर मनुष्य नहीं बताते हैं। वस्तुत: उनका एक `आत्म` पक्ष है जिसको इन कवियों ने महत्व दिया है, किन्तु उनका यह `स्व` अन्य के लिए समर्पित है। इसके मूल में इन कवियों की आदर्शवादी दृष्टि है। इन विभिन्न पौराणिक पात्रों को मानवी भूमि पर अवतरित करके तथा उनके हृदय में मानव सुलभ सब भावों का आरोपण करके भी उन्हें आदर्श मानव के रूप में ही चित्रित किया गया है। वस्तुत: (जैसा कि पूर्ववर्ती अध्याय में वर्णित है) वह युग ही आदर्शों का था जिसके अनुसार `आदर्श-चरित्र` की कल्पना द्वारा तत्कालीन जनता के समक्ष अनुशरणीय `आदर्श-व्यक्तित्व`

---

१. द्वापर, पृष्ठ, २५

की स्थापना हुई है। इसके अतिरिक्त इन काव्य प्रणेताओं का जीवन के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण भी इस प्रकार के चरित्र निरूपण का कारण बना है। प्रियप्रवास के कृष्ण-राधा, साकेत, कौशलकिशोर, साकेतसन्त, तथा रामराज्य के राम भरत आदि मानवहोकर भी महामानव तथा उदात्त हैं। उनमें मानवोचित सहज अनुभूतियों की कल्पना की गई है किन्तु किसी मानवी दुर्बलता की नहीं। प्रिय प्रवास के कृष्ण 'महात्मा' हैं —

थोड़ी यद्यपि है उनकी अवस्था
तो भी नितान्त रत वह रस कार्य में हैं।
ऐसा विलोक कर बोध स्वभाव से ही
होता सुसिद्ध यह है, वह है महात्मा।[१]

× ×   × ×   × ×

साकेतकार ने भी राम में मानवेतर गुणों की कल्पना की है —

तुम भूतल से भिन्न नहीं,
हम सबसे विच्छिन्न नहीं।
उर से किन्तु अलौकिक हो,
निज पतंग कुल के पिक हो।
अन्त:करण अपार्थिव है
उचित वहां दिव ही दिव है,
अमर वृन्द नीचे आवें
मानव चरित देख जावें।[२]

उस समय का आदर्श क्या था? समष्टिगत कल्याण के लिए 'स्व' का

---

१. प्रियप्रवास, पृ० १६०

२. साकेत, पृ० ११३

समर्पण । उस समय की समष्टि थी देश और मानव समाज । अत: एक ओर इन कवियों ने इन पौराणिक पात्रों के आत्मतत्व की झांकी दी है किन्तु अन्ततोगत्वा उनका आत्म भी `पर` के लिए समर्पित है । अत: `प्रियप्रवास` से लेकर `रामराज्य` तक में विविध पौराणिक पात्रों के चरित्र का गठन समष्टिगत कल्याण की भावना को ही दृष्टि में रख कर किया गया है ।

समष्टिगत कल्याण एवं राष्ट्रीय भावना की प्रेरणास्वरूप उन विभिन्न अवतारी पुरुषों को आधुनिक अर्थ में जननेता, राष्ट्रनायक, अथवा सांस्कृतिक उन्नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है । युगीन परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप रावण को विदेशी शासक, साम्राज्यवादी के रूप में देखने की सामान्य प्रवृत्ति का दिग्दर्शन पूर्ववर्ती अध्याय में कराया गया है । साकेत से लेकर रामराज्य तक इसी प्रवृत्ति की आवृत्ति हुई है । कृष्णायन का कंस, जरासंध, दुर्योधन भी आर्यत्व विरोधी साम्राज्यवाद, आतंकवाद तथा जड़वाद का प्रतीक है ।

`प्रियप्रवास` के कृष्ण ईश्वर नहीं हैं, राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति भी नहीं है, किन्तु कृष्ण के चरित्र में जो कुछ भी है वह मानवी स्तर का होकर भी उदात्त है । उनका जीवन ही लोक सेवा के लिए समर्पित है । संकटों से व्रजवासियों की रक्षा करने के मूल में उनकी दिव्य अलौकिक शक्ति नहीं वरन् उनके मन में मानव कल्याण की ज्योति है —

स्वजाति की देख अतीव दुर्दशा,
विगर्हणा देख मनुष्य मात्र की
विचार कर प्राणि समूह कष्ट को,
हुए समुत्तेजित वीर केसरी ।[१]

× × × × × ×

अत: करूंगा यह कार्य मैं स्वयं
स्वहस्त में प्राण स्वकीय को लिए
स्वजाति औ जन्मधरा निमित्त मैं
न भीत हूंगा मैं विषकाल सर्प से ।[२]

लोक सेवा की इस भावना के आधार पर ही राधा के चरित्र की प्रतिष्ठा हुई है। यहां कृष्ण के विरह में कातर और विह्वल होकर-मूर्छित होने वाली राधा के स्थान पर `लोकसेवा` के आदर्श को स्वीकार करने वाली विचारवान् प्रबुद्ध नारी है। उसका व्यक्तिगत प्रेम `विश्वप्रेम` का रूप धारण कर लेता है, उसके `आत्म` का विस्तार हो जाता है —

मैं ऐसी हूं न निज-दुख से कष्टिता शोक मग्ना।
हां जैसी हूं व्यथित ब्रज के वासियों के दु:खों से।[1]

और कृष्ण की अनुपस्थिति में उनके सेवाधार का उत्तराधिकार वह ग्रहण करती है—

वह सहृदयता से ले किसी मूर्छिता को,
निज अति उपयोगी अंक में यत्न द्वारा।
मुख पर उसके थी डालती वारि छींटें,
वर-व्यजन डुलाती थी कभी तन्मयी हो।[2]

लोक सेवा की भावना के आधार पर ही `साकेत` के सभी पात्रों का गठन हुआ है। राम के जीवन का आदर्श भी यही है —

निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी,
हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।[3]

वैदेही बनवास की `सीता` भी वही है जो कि प्रियप्रवास की राधा अथवा साकेत की सीता है। निर्वासन के पश्चात् उनके चरित्र में लोकसेवा

---

१. प्रियप्रवास, सर्ग, १६, पृ० २५६
२. वही, सर्ग १७, पृ० २६५
३. वही साकेत, सर्ग ८, पृ० २३३

के भाव का संधान किया गया है —

अधिक शिथिलता गर्भभार जनित रहीं
फिर भी परहित रता सर्वदा वे मिलीं
कर सेवा आश्रम-तपस्विनी वृन्द की
वे कब नहीं प्रभात-कमलिनी सी खिलीं ।[१]

कृष्णायन के कृष्ण का जीवन भी समष्टिगत कल्याण के लिए समर्पित है—

एकहि नीति तत्व मैं जाना-
हेतु समष्टि व्यष्टि बलिदाना
स्वजनहि बसत जासु मनमाहीं
सधत कर्महित तेहि ते नाहीं
चाहत करन यदुवंश जो असुर शक्ति अवसान,
आर्यन संस्कृति अभ्युदय पूर्ण धर्म उत्थान ।[२]

'साकेत' तथा 'प्रियप्रवास' के राम और कृष्ण के जीवन का सेवा-व्रत ही विशेष विकसित होकर डा० बलदेवप्रसाद मिश्र की तीनों पुस्तकों, कौशल किशोर, साकेत सन्त तथा रामराज्य, में व्यक्त होता है। साकेत सन्त के राम के सेवाभाव पर गांधी के आदर्शों का प्रभाव है तो रामराज्य के राम पूर्णत: गांधी के मूर्तिमान स्वरूप प्रतीत होते हैं। यही लोकादर्श भरत के चरित्र के माध्यम से व्यक्त हुआ है। वस्तुत: इन तीनों ही ग्रन्थों के ये दोनों ही चरित्र (राम व भरत) विभिन्न आदर्शों के प्रतीक हैं। अत: यही कारण है कि इन चरित्रों के बाह्य पक्ष—लोकसेवी रूप— का चित्रण ही अधिक हुआ है। राम केवल जन सेवक, राष्ट्र सेवक, सुशासक हैं अत: विभिन्न मानवीगुणों से परे आदर्श चरित्र हैं। 'जनसेवा' के भावों की स्थापना का मोह कवि में इतना

---

१. वैदेही बनवास, पृ० १६०
२. कृष्णायन, पूर्वाकांड, पृ० ३०६

अधिक है कि (साकेत से प्रेरणा ग्रहण करके) कवि ने माण्डवी एवं भरत के दु:ख के विशेष महत्व स्थापना के उद्देश्य से 'साकेत सन्त' की रचना अवश्य की है किन्तु पति के साथ तपरत माण्डवी की ओर कवि की विशेष दृष्टि नहीं गई और राम विहीन भरत की तपश्चर्या को ही अष्टयाम के क्रिया-कलापों के माध्यम से व्यक्त करता है।

किन्तु इन पात्रों का 'आदर्श' स्थानान्तरित होकर दैत्यों के पक्ष में चला गया है। अनेक पुराणों में दिव्यता के आसन पर अधिष्ठित ये विभिन्न देवतागण-हिन्दी काव्य में प्रथम बार अपने उच्चासन से विस्थापित होकर सामान्य मानव ही नहीं छल,प्रपंच और कुबुद्धियुक्त कमजोर मनुष्य प्रतीत होते हैं। वस्तुत: समानता की भावना एवं तर्कशीलता से उत्पन्न न्याय बुद्धि एवं मानवतावादी दृष्टि के कारण इस परम्परा से उपेक्षित पात्रों का उन्नयन हुआ है। अतएव 'दैत्यवंश' के विभिन्न दैत्य नरेशों तथा 'रावण महाकाव्य' के नायक रावण में उदात्त चारित्रिक गुणों की कल्पना की गई है। दैत्यवंश के विभिन्न नरेशों में प्रह्लाद को छोड़कर सभी तेजवान, धैर्यवान्, शान्तिप्रिय, उदार व सहिष्णु हैं —

तेज में तरनि सास्त्रन पारगा बृहस्पति लौं,
    नारद लौं ज्ञानी बल माहि जे सुरेश हैं।
धीरज में हिमालय सान्ति में प्रशान्त सिन्धु
    छमा में अवनि अरु दान में महेस हैं।
गति में अनिल, औ अनिल समुनासन में
    पालत पिता लौं प्रजा हरत कलेस हैं।
दारिद दुरन्त दु:ख द्वन्दति करत दूरि
    कठिन कलेस कौ न राखि अब लेस हैं।[1]

---

१. दैत्यवंश, पृ० ३

किन्तु दैत्यकुल के नरेश `प्रह्लाद` को समुचित आदर न मिल सका । जिस प्रह्लाद के चरित्र की पुराणों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है तथा पिता की मृत्यु के पश्चात् नृसिंह रूपधारी विष्णु ने मन्वन्तर की समाप्ति तक राज्य करने का अधिकार प्रदान किया था, शुक्राचार्यादि मुनियों सहित श्री ब्रह्मा ने सम्पूर्ण दैत्य वंश एवं दानवों का अधिपति बनाया था तथा स्वयं भगवान् ने जिसकी प्रशंसा की थी, उसको शत्रु समर्थक तथा स्वकुल विनाशक के रूप में देखा है । `रावण-महाकाव्य` में भी राम पक्ष का `आदर्श` रावण की ओर चला जाता है । यहां राम-लक्ष्मण ही सामान्य मानवों के सदृश रावण-राज्य की सीमा का अतिक्रमण करते हैं, रावण बहन शूर्पणखा को विरूप करते हैं, रावणबन्धु विभीषण को छल-छद्म से अपनी ओर मिला कर अपना अभिप्राय सिद्ध करते हैं ।

अध्याय — चतुर्थ

तृतीय सोपान

सूक्ष्म भावाभिव्यंजक काव्य और पुराण-कथाएं

द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक तथा स्थूल आदर्शवादी काव्यधारा के समानान्तर ही सूक्ष्मानुभूतियों पर आधारित नवीन काव्यधारा का विकास होता है, जिसे (यदि `वाद` की प्रतिबद्धता में रख कर सोचा जाए तो) `छायावाद` के नाम से अभिहित किया गया है ।[१] छायावाद जैसा कि डा० नगेन्द्र ने कहा है `स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है ।` यह सूक्ष्म क्या है ? व्यक्ति में अन्तर्निहित उसकी सुख दु:खात्मक अनुभूतियां ।` विकासमान और संघर्ष शील पूंजीवाद तथा पाश्चात्य संस्कृति, शिक्षा और साहित्य के निकट सम्पर्क और प्रभाव से भारत में व्यक्तिवाद का जन्म होता है जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी कविता में छायावाद के रूप में वैयक्तिक अनुभूतियों की सीधी अभिव्यक्ति होने लगी । इस कारण व्यक्तिवादी काव्य का सर्वप्रथम लक्षण यही है कि वह आत्माभिव्यंजक और विषय प्रधान होता है । भावाभिव्यंजना में कवि की कल्पना के साथ उसकी अनुभूतियों और चिन्तन की सर्वाधिक अभिव्यक्ति होती

---

१. यहां भावाभिव्यंजक काव्य से तात्पर्य केवल छायावादी तथा रहस्यवादी काव्य प्रवृत्तियों की संकुचित सीमा से नहीं है वरन् जहां भी स्थूल स्थलों के स्थान पर आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति हुई है -- वह इस विषय-विवेचन के संदर्भ में स्वीकार किया गया है । `छायावाद` में यह प्रवृत्ति मुख्य रूप में थी अत: इस संदर्भ में उसका विशेष विवेचन हुआ है ।

है, बाह्यार्थ निरूपण और वस्तु वर्णन का उसमें अभाव-सा होता है।'[१] इस नवीन काव्यधारा के कवियों ने सर्व प्रथम अपने भावों को प्रकृति के विशाल प्रांगण की ओर मोड़ा और उन्मुक्त भाव से उसके सौन्दर्य का आस्वादन कर अनेकरूपों में प्रकृति-सौंदर्य का वर्णन किया है अथवा प्रकृति के माध्यम से आत्म-तत्व की अभिव्यक्ति की है। वे सर्वप्रथम अपने व्यक्तिगत प्रेमानुभूतियों का सूक्ष्म किन्तु प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति देने लगे । सर्वमान्य बाह्य आदर्शों के स्थान पर व्यक्ति के चिन्तन को महत्व दिया है। अत: उसमें आन्तरिकता है, भावात्मकता, दार्शनिकता एवं आध्यात्मिकता भी है। किन्तु यहां आध्यात्मिकता का अर्थ धार्मिकता नहीं है वरन् 'स्थूल लौकिकता और जड़ता के भीतर निहित सूक्ष्म चेतना है।'[२] आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता के विशेष आग्रह का परिणाम है कि इस धारा के कवियों ने अपनी व्यक्तिगत प्रेमानुभूतियों को बाह्य और आत्मा के पारस्परिक सम्बन्धों के माध्यम से व्यक्त किया है। अत: आधुनिक युग में 'रहस्यवाद' की भी अवतारणा होती है, जिसके लिए दिव्य एवं अतीन्द्रिय भावों की सृष्टि हुई है। तात्पर्य यह है कि 'नवीन - काव्य (छायावाद) में समस्त मानव अनुभूतियों की व्यापकता का पूरा स्थान पा सकी ।'[३]

छायावाद की व्यक्तिवादी दृष्टि ने जहां अन्भावों की अभिव्यक्ति का विशेष आग्रह उत्पन्न किया, वहां दूसरी ओर हिन्दी साहित्य जगत पर (अत: काव्य में भी) मनोविज्ञान के प्रभाव का समय भी लगभग यही है। मनोविज्ञान ने अन्तर्वृत्तियों की ओर ध्यान आकर्षित किया। हिन्दी साहित्य में, प्रत्यक्षत: अनुभूत होने वाले मन से परे अन्तर्मन की कल्पना करके अन्तर्द्वन्द्व

---

१. डा० शम्भुनाथ सिंह, हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० २६५

२. वही

३. डा० नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, पृ० ३२०

के चित्रण का समावेश भी किया। अत: व्यक्तिवाद एवं आत्माभिव्यंजकता के विकास के मूल में मनोविज्ञान के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

हिन्दी काव्य जगत में इस प्रकार की काव्याभिव्यक्ति का स्पष्ट प्रकाशन सन् १९१८ ई० से माना जाता है जबकि श्री जयशंकर प्रसाद का झरना,[१] श्री सुमित्रानन्दन पंत की रचना 'पल्लव' और 'वीणा', तथा निराला की प्रसिद्ध रचना 'जुही की कली'[२] प्रकाश में आती है। यही छायावाद के जन्म का समय है। सन् १९१८ ई से १९३० ई० तक का समय इसके जन्म से लेकर उत्कर्ष तक का समझा जा सकता है। सन् १९३० से सन् १९४० तक इसके अपकर्ष का समय है जबकि हिन्दी काव्य जगत में व्यक्तिगत अन्तर्नुभूतियों के स्थान पर पुन: सामाजिक आदर्शों की स्थूल अभिव्यक्ति होने लगी थी। इस नवीन काव्यधारा को 'प्रगतिवाद' के नाम से अभिहित किया गया है। इस तरह काव्य की मुख्य प्रवृत्ति के रूप में छायावाद का अन्त हो जाता है किन्तु सूक्ष्म भावाभिव्यंजक रचनाओं की सृजना अब तक हो रही है जिसे छायावादी काव्यप्रवृत्ति के निकट रखा जा सकता है।

पुराण कथाओं के प्रयोग की दिशा और स्वरूप—

द्विवेदी युग मुख्यत: प्रबन्धकाव्य का युग कहा जा सकता है, पर छायावाद में जिस आत्मपरक दृष्टि का विकास होता है, वह प्रबन्धकाव्य - रचना के अनुकूल नहीं पड़ता है। द्विवेदी युग में बृहत् महाकाव्यों तथा खण्ड-काव्यों के अतिरिक्त मुक्तक काव्य के क्षेत्र में भी श्रीधर पाठक, श्री मुकुटधर - पाण्डेय, तथा श्री रामनरेश त्रिपाठी आदि कुछ कवियों को छोड़कर अधिकांश रचनाएं किसी न किसी रूप में पौराणिकता से सम्बद्ध रही है। यही कारण है

---

१. प्रकाशन समय, सन् १९१८ ई०
२. ,, ,, सन् १९१६ ई०

कि पौराणिक प्रबन्धकाव्यों के अतिरिक्त स्फुट रूप में अनेक लघु आख्यानक कविताओं की रचना होती रही है। किन्तु भावाभिव्यंजक नवीन काव्यधारा के विकास के साथ ही उन स्फुट पौराणिक आख्यानक कविताओं के स्थान पर व्यक्तिगत प्रेमानुभूतियाँ, प्रकृति चित्रण, रहस्यानुभूति आदि विभिन्न तत्वों से संयुक्त मुक्तक कविताओं की रचनाएं होने लगी थी। अत: प्रबन्धात्मकता के लिए वैसे भी स्थान नहीं रह जाता। एतदर्थ पौराणिकता का भी ह्रास होता है। पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ही ऐसे कवि हैं, जिन्होंने एक ओर `राम की शक्तिपूजा`, `यमुना के प्रति`, `पंचवटी` जैसे पौराणिक लघु आख्यानक काव्यों की रचना की है, तो दूसरी ओर उनकी कविताएं विविध पौराणिक संदर्भों, उपमाओं, प्रतीकों तथा बिम्बों से परिपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त इस काव्य प्रवृत्ति के प्रभावान्तर्गत कई प्रबन्धकाव्यों की रचना हुई है, किन्तु उनमें भी मुक्तकपरकता का विशेष समावेश है। श्री जयशंकर प्रसाद की रचना कामायनी, श्री केदारनाथ मिश्र प्रभात की कर्ण्वेरा, श्री पोद्दार रामावतार `अरुण` का विदेह, श्री बालकृष्ण शर्मा `नवीन` की रचना `उर्मिला`, श्री रामानन्द शास्त्री की `पार्वती`, श्री गिरिजादत्त शुक्ल `गिरीश` का तारकवध, तथा श्री रामधारी सिंह `दिनकर` की रचना उर्वशी इसी प्रकार के प्रबन्ध काव्य हैं।

पुराणकथाओं के प्रयोग की दिशा में इन विभिन्न रचनाओं में प्रयुक्त कथाओं के स्वरूप की दृष्टि से सामान्यत: दो प्रवृत्तियां प्राप्त होती हैं —

१. <u>घटना के स्थान पर भावों का चित्रण</u> —

आन्तरिकता अथवा आत्माभिव्यंजकता के विशेष आग्रह के कारण पौराणिक घटनाओं के वर्णन के स्थान पर पात्रों के अन्तर्भावों का चित्रण अधिक हुआ है। स्वभावत: इन कवियों ने भावों के साथ एकात्म होकर अपने व्यक्तिगत सुख, दुखात्मक अनुभूतियों का आरोपण ही इन पौराणिक

पात्रों के व्यक्तित्व पर किया है। अत: कवियों की भावनाओं से अनुवेष्ठित पौराणिक पात्र नूतन व्यक्तित्व के साथ हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं।

व्यक्तिगत प्रेमानुभूतियों के चित्रण के लिए राधाकृष्ण के प्रेम की पौराणिक भूमि भी उनके समक्ष थी जिसके माध्यम से कवियों ने अपने को अभिव्यक्त किया है। श्री जानकीवल्लभ शास्त्री की रचना `राधा` इसी प्रकार का उदाहरण है जिसमें राधाकृष्ण के माध्यम से प्रेमोद्गार की अभिव्यक्ति हुई है। पृष्ठाधार वही है, आश्रय-आश्रयी भी वही हैं किन्तु प्रेमी-प्रेमिका का रूप तथा प्रेमोद्गार छायावादी है —

मोहन की मुरली ने फिर मुझे पुकारा
सखि, देख न, मेरा तन हारा, मन हारा।

सहते हैं शत-शत सतत व्यंग बाणों को
फिरती वंशी-स्वन उन्मन इन प्राणों को —
कैसे समझाऊं स्वाभिमान करने को ?
लोकापवाद से पद पद पर डरने को।[1]

इसी प्रकार की रचना श्री गयाप्रसाद द्विवेदी की `मधुपुरी` के परिशिष्टांग में राधा, रोहिणी, तथा कृष्ण के आन्तरिक भावों से सम्बन्धित कुछ स्वतंत्र चित्र प्रस्तुत हैं, जिनमें कवि ने इन पौराणिक पात्रों के माध्यम से नितान्त व्यक्तिगत स्तर के नूतन भावों की सृष्टि की है। कृष्ण को स्वप्न में देखने के पश्चात् राधा के जिज्ञासा भाव की अभिव्यक्ति नितान्त नवीन भावों से संयुक्त होकर व्यक्त है—

कौन रे सुकुमार तन तुम ?

× × × × × ×

मिट गया तम तोप सारा
गत हुआ भ्रम का पसारा
बज उठी फिर से विपंची
धन्य हो प्रिय प्राण धन तुम।[2]

कृष्ण तथा राधा के प्रथम साक्षात्कार के समय कृष्ण की अनुभूति का वर्णन सूरदास ने भी किया है।[१] किन्तु यहाँ कृष्ण अपने भावों में नितान्त नवीन हैं —

उस क्षण से ही वह मेरी
बन गई सलोनी राधा
हम दोनों के प्रिय पथ से,
मिट गई विघ्न की बाधा
वह अनुपम सुख की बेला
तन्मयता प्रथम नयन की
जीवन भर बनी रहेगी
मधुर स्मृति बन जीवन की।[२]

निराला की 'तुम और मैं' रचना में अपनी रहस्यानुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए जहाँ प्रकृति के उपकरणों का सहारा लिया गया है वहाँ पौराणिक पात्रों — कृष्ण-राधा, राम-सीता, शिव-पार्वती — के माध्यम से कवि ने शाश्वत सत्ता के प्रति अपने सम्बन्धों को व्यक्त किया है —

---

१. खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
कटि कछनी पीतांबर ओढ़े हाथ लिये भौंरा चक डोरी।
मोर मुकुट कुंडल स्रवनन वर दसन दमक दामिनि छवि चोरी
गये स्याम रवि-तनया के तट अंग लसति चन्दन की खोरी।
औचक ही देखी तहं राधा नयन विशाल भाल दिये रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे बैनी पीठ रुलति झकझोरी।
संग लरिकनी चली इत आवति दिन थोरी अति छवि तन गोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगोरी।
— सूरदास

२. मधुरी, पृ० २८७

तू शिव की मैं हूं शक्ति
तुम रघुकुल गौरव रामचन्द्र
मैं सीता अचला भक्ति ।

×× ×× ××

तुम राधा के मन मोहन
मैं उन अधरों की वेणु ।[१]

छायावादी काव्य के अन्तर्गत प्रयुक्त पौराणिकता के स्पष्ट उदाहरण के रूप में `निराला` के `यमुना के प्रति` को प्रस्तुत किया जा सकता है । कवि यमुना से सम्बद्ध पौराणिक कथाधार का वर्णन नहीं करता है प्रत्युत वर्तमान यमुना को देखकर विषादपूर्ण स्मृति के रूप में कृष्ण की बांसुरी ब्रजवासिनियों के कंकण, किंकिण, एवं नूपुर ध्वनि, तथा हास विलास से गुंजित सांकेतिक खंड चित्रों के माध्यम से विगत यमुना पुलिन का भावन कराता है । चित्र वही है जो भागवत पुराण से लेकर कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में प्राप्त होता है किन्तु कवि निराला की वर्णन-भंगिमा नवीन है —

बता कहां अब वह वंशीवट ?
कहां गए नटनागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट
कहां आज वह वृन्दाधाम ?
कभी यहां देखे थे जिनके
श्याम-विरह से तप्त शरीर,
किस विनोद के तृषित गोद में
आज पोंछती वे दृगनीर ?[२]

---

१. परिमल, तुम और मैं, पृ० ८१-८२

२. यमुना के प्रति, अपरा पृ० ८२

कृष्ण की वंशी के आह्वान से अपने गृहकर्मों से विरक्त होकर कृष्ण के प्रेम में लीन गोपियों की आतुरता का आधार भी श्रीमद्भागवत में है किन्तु यहां जिस भावना के धरातल पर उसका चित्रण हुआ है वह नवीन है —

उदासीनता गृह-कर्मों में
मर्म मर्म में विकसित स्नेह,
निरपराध आर्यों में छाया
अंजन-रंजन-भ्रम सन्देह,

विस्मृत-पथ-परिचायक स्वर से
छिन्न हुए सीमा दृढ़-पाश,
ज्योत्स्ना के मण्डप में निर्भय
कहां हो रहा है वह रास ।[1]

इन स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त प्रबन्धकाव्यों में भी बाह्य घटनाओं के स्थान पर मन में ध्वनित होने वाले भावों का चित्रण मनोविज्ञान के आधार पर हुआ है। कथा वर्णित नहीं वरन् अन्तर्भावों के माध्यम से अभिव्यंजित है। अतएव इन रचनाओं में प्रयुक्त कथाओं का सम्बन्ध पुराणों से नाम मात्र का रह गया है। `विदेह` में विदेहराज के परम्परागत चरित्र के विशिष्ट पक्ष — निस्पृहता और देहमुक्ति की अवस्था का चित्रण राजा जनक के अन्तर्भूतियों के माध्यम से व्यक्त है। `उर्मिला` में पौराणिक या रामायणी कथा के निर्वहण के स्थान पर उर्मिला, सीता-लक्ष्मण, राम के मनोगत भावों की अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया है। `पंचवटी प्रसंग` में कवि निराला ने पंचवटी के पांच प्रसंगों के वर्णन के माध्यम से एक ओर शूर्पणखा के मनोविज्ञान का चित्रण किया है और दूसरी ओर लक्ष्मण के अन्तर्भावों का।

इस धारा की रचनाओं की भावाभिव्यंजकता नितान्त वैयक्तिक

---

१. यमुना के प्रति, अपरा, पृ० ८२

स्तर की वस्तु नहीं है वरन् किसी न किसी रूप में सामाजिकता से सम्बद्ध है। वस्तुत: इनकी आन्तरिकता इन्हें भिन्न श्रेणी में अवश्य रखती है पर अपने समसामयिक परिस्थितियों— सामाजिक,—आर्थिक विषमता, राजनैतिक परवशता तथा विचार पद्धतियों से गांधीवादी नीति तथा मार्क्सवाद की भौतिकतावादी दृष्टि का चित्रण भी किया है किन्तु इन समसामयिक समस्याओं को भी वह मन के स्तर पर देखता है तथा इन विषमताओं को देशकाल की सीमा में बद्ध न देखकर शाश्वत समस्या के रूप में देखा है। कामायनी, पार्वती, तारकवध की समस्याएं शाश्वत ही हैं।

२. प्रतीकात्मक कथाविधान—

चिन्तन प्रधान दृष्टि होने के कारण जीवन के बाह्य स्थूल आदर्शों के स्थान पर जीवन की समस्याओं के शाश्वत रूप के विषय में इस वर्ग के कवि अधिक सोचने लगे थे जिसकी अभिव्यक्ति के लिए वह स्वभावत: प्रतीकात्मकता की ओर झुकते हैं। विशेषत: मनोविज्ञान का आश्रयग्रहण कर मनुष्य की चित्तवृत्तियों के स्वरूप तथा जीवन में उनके महत्व निरूपण के लिए पौराणिक कथाओं तथा पात्रों की प्रतीकात्मक अभिव्यंजना हुई है। पुराणों की विविध कथाओं में इन कवियों की दृष्टि केवल उन कथाओं की ओर जाती है जिनमें प्रतीकात्मकता का निर्वाह हो सके। अत: राम और कृष्ण की सर्वाधिक प्रचलित कथावृत्त के प्रति वे उदासीन हैं। कामायनी, ऋतंबरा, पार्वती (उत्तरार्द्ध) और तारकवध तथा उर्वशी की कथा प्रतीकात्मक है। इन रचनाओं में प्राचीन कथाओं के माध्यम से अनेक चिरन्तन सत्यों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हुई है।

कुछ प्रमुख रचनाएं—

राम की शक्तिपूजा[१]—

कथा का प्रारम्भ राम-रावण युद्ध के एक दिवस की सन्ध्या से होता है जबकि राम युद्धोपरान्त चिन्तित भाव से अपने शिविर में लौट रहे हैं। रावण की दुर्जेयता (क्योंकि उस दिन का युद्ध अनिर्णीत रह गया था) राम के मन को शंकित कर देती है। उनका यह दु:खपूर्ण चिन्तन ही काव्य की मुख्य कथावस्तु है जिसका मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत करने के लिए कवि ने अनेक घटनाओं की योजना की है।

इस लघु पौराणिक प्रबन्धकाव्य के लिए जिन कथा प्रसंगों को स्वीकार किया गया है उसके सूत्र पुराणों में प्राप्त होते हैं। देवीभागवत पुराण में बालि-वध के पश्चात् (लंका प्रयाण के पूर्व) इस घटना का उल्लेख है कि नारद राम को रावण के वध के निमित्त नवरात्रिव्रत का सुझाव देते हैं। राम नवरात्र व्रत करते हैं और अष्टमी तिथि की अर्द्धरात्रि को देवी प्रकट होकर राम को वरदान देती हैं।[२] इसी तरह वाल्मीकि रामायण में राम द्वारा 'आदित्याराधन' का उल्लेख भी है। यहां राम युद्ध से विश्रांत एवं चिन्तातुर हो खड़े हैं तब अगस्त्य मुनि उन्हें शत्रुविजय के लिए आदित्यपाठ का सुझाव देते हैं।[३] शिव पुराण में रावण पर विजय प्राप्ति के लिए राम की घोर तपस्या का उल्लेख है, जिससे प्रसन्न ~~प्रकट होता है कि~~ शिव प्रकट होकर उन्हें धनुष-बाण तथा ज्ञान देते हैं।[४]

---

१. श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', समय सन् १९३६ ई०

२. देवीभागवत, स्कन्ध, ३

३. वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड, अ० १०५

४. शिवपुराण, उमासंहिता, ३।५३-५५

एक अन्य प्रसंग का वर्णन शिवपुराण में प्राप्त होता है कि जब देवताओं की कार्यसिद्धि के लिए विष्णु शिव का सहस्रनाम जाप करते हैं तथा प्रत्येक नाम के साथ एक कमल पुष्प का अर्पण करते हैं। किन्तु विष्णु के परीक्षार्थ शंकर एक पुष्प चुरा ले जाते हैं। अत: जाप की पूर्णता के लिए विष्णु अपने कमल सदृश नेत्रों को ही अर्पित करते हैं। शिव प्रसन्न होकर दैत्यों के विनाश के लिए सुदर्शन चक्र प्रदान करते हैं।[१] इसी प्रकार श्री पुष्पदन्त विरचित `शिवमहिम्नस्तोत्र` के एक श्लोक में विष्णु द्वारा शिवाराधन में एक सहस्रकमल पुष्प चढ़ाने एवं पुन: नेत्र अर्पणके प्रसंग का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[२] किन्तु `राम की शक्तिपूजा` में वर्णित प्रसंगों के आधार के रूप में डा० कुमार विमल[३] ने बंगला कवि कृत्तिवास के `रामायण` का उल्लेख किया है। दोनों ही रचनाओं के प्रसंग-साम्य तथा निराला पर बंगला साहित्य के विशेष प्रभाव को देखते हुए इस मत की पुष्टि होती है।

कृत्तिवास रामायण के लंकाकाण्ड में `अकाले देवी पूजा` प्रसंग में रावण की अपराजेयता से आतंकित एवं चिन्तित राम देवी की पूजा करते हैं। बंगला रामायण में पूजन के लिए `शताष्टक कमल` का उल्लेख है, निराला ने भी `एक सौ आठ इन्दीवर` की चर्चा की है। कृत्तिवास रामायण की भाँति निराला ने भी `देवीदह` का वर्णन किया है।

---

१. शिवपुराण, रुद्र संहिता, अध्याय ३४

२. हरिस्ते साहस्रं कमल बलिमाधाय पदयो-
यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्र कमलम्।
गतो भक्त्युद्रेक: परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्।।
—शिव महिम्न स्तोत्रम्, श्लोक १९

३. आधुनिक हिन्दी काव्य,

कृत्तिवास रामायण से कथा ग्रहण करके निराला ने उसको नवीन विस्तार दिया है। यथा: कृत्तिवास रामायण में दुर्गाराधन का आदेश ब्रह्मा देते हैं, किन्तु `राम की शक्तिपूजा` में राम जाम्बवान की सलाह पर देवी की आराधना करते हैं। पूजन के समय एक कमलपुष्प की कमी पड़ने पर नेत्र अर्पण की प्रेरणा के रूप में कृत्तिवास रामायण में `सर्वजन कथन ` का उल्लेख है, किन्तु राम की शक्तिपूजा में मां कथन का उल्लेख है—

भाविते भाविते राम करिलेन मने
नील कमलाक्ष मोरे बोले सर्वजने ।।
युगल नयन मोर फुल्ल नीलोत्पल ।
संकल्प करिब पूर्ण बुझिये सकल ।
एक चक्षु दिब आमि देवीर चरने ।
एत बोलि कहे राम अनुज लक्ष्मने ।।[1]

राम की आराधना को निराला ने योगसाधना की विभिन्न अवस्थाओं के रूप में व्यक्त किया है —

चक्र से चक्र मन बढ़ता गया उर्ध्व निरलस,

< < < < < <

बढ़ अष्ट दिवस आज्ञा पर हुआ समाश्रित मन ।[2]

कृत्तिवास रामायण में देवी की आराधना सामान्य पूजन के रूप में है।

इस प्रसंग के साथ ही कवि ने एक अन्य लघुकथा को संयुक्त कर दिया है। राम के अश्रु देखकर हनुमान के विराट् रूप धारण करने की घटना का साम्य हनुमान के उस प्रचलित बालचरित से है जिसमें वह सूर्य को निगल जाते हैं। इस प्रसंग का वर्णन वाल्मीकि रामायण[3] में प्राप्त होता है तथा प्रचलित `हनुमानचालीसा` में भी इसका वर्णन है किन्तु मनोविज्ञान के सहारे राम की जिस दुरवस्था के साथ इस प्रसंग को संयुक्त करके देखा है —यह कवि की मौलिकता है। परम्परागत रूप में यह घटना हनुमान की बाल-लीलाओं से सम्बद्ध है।

---

१. कृत्तिवास रामायण, पृ० ४८५
२. राम की शक्ति पूजा, अपरा, पृ० ४३
३. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग ३५

कामायनी[1]—

अपने प्रतीकात्मक स्वरूप विधान के कारण कामायनी में जिस द्वयर्थक कथा की योजना हुई है, स्थूलत: उसके कथा प्रसंगों का सम्बन्ध वेद, ब्राह्मण ग्रन्थों एवं पुराणों से है। जलप्लावन, मनु द्वारा यज्ञ कार्य का प्रारम्भ, श्रद्धा मनु के पारस्परिक संयोग से मानव सृष्टि का प्रारम्भ, मनु का हिंसा कर्म, श्रद्धा मनु वियोग, इड़ा के सहयोग से सारस्वत राज्य का संचालन, प्रजा विद्रोह, आहत मनु एवं श्रद्धा का पुनर्मिलन, कैलाशप्रयाण तक के विविध प्रसंगों के असंबद्ध सूत्र वेद एवं पुराणों में प्राप्त हो जाते हैं पर उन्हें परस्पर सम्बद्ध करके प्रस्तुत करने एवं अनेक नवीन प्रसंगों की योजना में कवि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

कथा का आधार—

१. जलप्लावन— जिस जल-प्लावन से कामायनी के कथा का प्रारम्भ होता है उसका प्राचीन उल्लेख ब्राह्मण ग्रंथों एवं पुराणों[2] में प्राप्त होता है, किन्तु जैसा कवि ने ग्रन्थ की भूमिका में संकेत किया है कि उसने शतपथ ब्राह्मण का आधार ग्रहण किया है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णन है कि एक बार प्रात:काल मनु के पास जल लाया गया जिसमें एक मत्स्य था। मत्स्य मनु से अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना करता है और यह भी कहता है कि

---

१. कामायनी – ले० श्री जयशंकर प्रसाद, सन्‌ १९३५ ई०

२. पद्मपुराण (३६ वां अध्याय), विष्णु पुराण (५-११,६,३) स्कन्द पुराण (वैष्णव खण्ड, पुरुषोत्तममहात्म्य खंड, २), भविष्य-पुराण (प्रतिसर्ग पर्व, अध्याय ४) , मत्स्य पुराण (सम्भव,प्रथम द्वितीय अध्याय)

जलप्लावन के समय, जबकि सब कुछ नष्ट हो जायगा, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा । अन्तत: जलप्लावन होता है और मनु उस मत्स्य के सींग से नौका बांध कर अपनी रक्षा करते हैं ।[१] जलप्लावन का वर्णन श्रीमद्भागवत में भी प्राप्त होता है किन्तु भागवत के जलप्लावन-वर्णन में धार्मिकता अधिक है । यहां पूर्वजन्म के राजर्षि-सत्यव्रत विष्णु के वरदान से जलप्लावन के समय मत्स्य-रूपधारी विष्णु (मत्स्यावतार) के सींग में नौका बांध कर सप्तर्षियों के साथ अपनी भी रक्षा करते हैं ।[२] कामायनी में मत्स्यावतार का तथा शतपथ ब्राह्मण की तरह नौका का मत्स्यसींग से बांधने का उल्लेख नहीं है । कवि ने कई स्थानों से शतपथ ब्राह्मण से संकेत ग्रहण करके मत्स्य के विशेष योगदान को भिन्न रूप में व्यक्त किया है —

महामत्स्य का एक चपेटा
　　　　दीन पोत का मरण रहा ।
किन्तु उसी ने ला टकराया
　　　　इस उत्तर-गिरि के सिर से,
देव सृष्टि का ध्वंस अचानक,
　　　　श्वास लगा लेने फिर से ।[३]

२. मनु और उनका प्रथम यज्ञ— वैवस्वत मनु से सम्बन्धित विस्तृत इतिहास का उल्लेख तो नहीं प्राप्त है, पर वेद, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषद् तथा पुराणों में उनसे सम्बन्धित विविध उल्लेख प्राप्त हैं । ऋग्वेद के अनुसार वह यज्ञपुरुष, प्रथम यज्ञकर्ता थे, क्योंकि अग्नि प्रज्वलित करके सात

---

१. शतपथ ब्राह्मण, ८,१,१-१०
२. श्रीमद्भागवत्, ६।१
३. कामायनी, चिन्तासर्ग, पृ०२१

पुरोहितों के साथ सर्वप्रथम उन्होंने देवों को `हवि` समर्पित की थी ।[१] मनु ने सभी लोगों के प्रकाश के हेतु अग्नि की स्थापना की थी ।[२] पुराणों में `मन्वन्तर` सम्बन्धी धारणा के विकास के कारण ये मनु अनेक हो जाते हैं । सामान्यत: ये मनु चौदह हैं और उनका चौदह मन्वन्तरों से सम्बन्ध है । यदि पुराणों के मन्वन्तरवादी धारणा के अनुसार देखा जाए तो श्रद्धादेव मनु का सम्बन्ध सातवें मन्वन्तर से है ।

कामायनी में प्रसाद ने मनु के प्राचीन यज्ञ-कर्म का संकेत ग्रहण करके द्वितीय सर्ग में प्रलय के पश्चात् अवशिष्ट अग्नि के द्वारा यज्ञ आरम्भ करने का उल्लेख किया है ।

३. मनु-श्रद्धा-संयोग-- ऋग्वेद के अनुसार `श्रद्धा` के द्वारा ही अग्नि प्रज्वलित किया जाता है, श्रद्धा का प्रात:काल, मध्याह्न और रात्रि में आह्वान किया जाता है ।[३] वेद का आधार ग्रहण करके सायण ने श्रद्धा को कामगोत्र से उत्पन्न माना है, जिसका संकेत ग्रहण करके प्रसाद ने श्रद्धा को कामायनी कहा है ।[४] श्रद्धा और मनु के पारस्परिक सम्बन्ध का उल्लेख शतपथ-ब्राह्मण में प्राप्त है जिसका उल्लेख कवि ने अपनी भूमिका में किया है किन्तु उनके दाम्पत्य-भाव का स्पष्ट संकेत श्रीमद्भागवत में भी प्राप्त है । श्रीमद्-भागवत में जलप्लावन की घटना के पश्चात् मनु एवं श्रद्धा के संयोग से मानव-

---

१. येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनु: समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभि: ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा न: कर्त सुपथा स्वस्तये ।
—ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त ६३, छन्द ७

२. ऋग्वेद, मंडल १, सूक्त ३६, छन्द १९

३. वही, मंडल १०, सूक्त १५१, छन्द १–५

४. कामायनी-भूमिका

जाति के प्रारम्भीकरण का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है —

ततो मनुः श्राद्धदेव संज्ञायामास भारत ।
श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान्स आत्मवान् ।।[१]

श्रद्धा की प्रेरणा एवं संयोग से नवीन सृष्टि के विकास का वर्णन कवि ने भी किया है जो श्रीमद्भागवत के अधिक निकट है —

बनो संसृति के मूल रहस्य
तुम्हीं से फैलेगी यह बेल ,
विश्वभर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलो सुन्दर खेल ।

< <   < <   < <

देव-असफलता का ध्वंस
प्रचुर उपकरण जुटा कर आज,
पड़ा है बन मानव संपत्ति
पूर्ण हो मन का चेतन राज ।[२]

४. मनु का पशुयज्ञ—ऋग्वेद, ब्राह्मणग्रंथ, पुराण एवं महाभारत में मनु का तपस्वी के रूप में चित्रण है । उनके द्वारा जिस यज्ञ का प्रारम्भ होता है वह हिंसा रहित, कल्याणकारी भावों से युक्त `पाक यज्ञ` था । कामायनी में वर्णित मनु का प्रारम्भिक यज्ञ-कर्म तथाकथित `पाक यज्ञ` था जबकि वह अग्निहोत्र से बचे अन्न को अन्य प्राणियों के लिए रख देते हैं । पर किलात-

---

१. श्रीमद्भागवत ६।१।११
२. कामायनी, श्रद्धासर्ग, पृ० ५०

आकुली के सम्पर्क से मनु के जिस स्खलन का वर्णन कामायनी में प्राप्त होता है उसका स्पष्ट उल्लेख वेद अथवा पुराणों में प्राप्त नहीं होता है पर वेद में जिस असुर संस्कृति का उल्लेख मिलता है उसमें सोमपान और पशुयज्ञ का विशेष विधान था। कालान्तर में केवल अन्न एवं घृत से किया गया 'पाक्-यज्ञ' पशुयज्ञ का पर्याय बन गया था।[१] ऋग्वेद की एक ऋचा के वर्णनानुसार वृत्रासुर वध के अवसर पर इन्द्र ने सोम के तीन जलाशयों का पान कर लिया था और एक महिष खा गए थे।[२] इस पर भी असुरों की संस्कृति का प्रभाव था जैसा कि श्री फतह सिंह ने कहा है—इन्द्र द्वारा महिष खाने तथा तीन सरोवर सोमपीने का प्रकरण भी महासुर वृत्र की हत्या में आता है और उसका सम्बन्ध उशना से भी मालूम पड़ता है जो असुरों के पुरोहित थे और जिनको प्राप्त करने के लिए इन्द्र को अनेक प्रयत्न करने पड़े थे।[३]

असुर पुरोहित किलात-आकुली एवं मनु के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में कवि ने अपने ग्रन्थ की भूमिका में संकेत किया है। कवि द्वारा उल्लिखित उक्त वर्णन के अनुसार मनु ने किलात आकुली को अपना पुरोहित बनाया था[४]। अत: ब्राह्मण ग्रंथ मे वर्णित किलात-आकुली एवं मनु की सम्बद्धता, असुर कृत्य पशुभक्षण, सोमपान एवं देव सभ्यता पर पड़े उसके प्रभावों के उल्लेख(इन्द्र द्वारा सोमपान के संदर्भ में) के आधार पर कामायनी में वर्णित मनु की पथभ्रष्टता का पुष्टीकरण हो जाता है। इस प्रसंग का विस्तार— किलात आकुली का पारस्परिक वार्तालाप, पुरोहित रूप धारण करके मनु के पास जाना— आदि कवि की मौलिक कल्पना की देन है।

---

१. पशव्यो हि पाकयज्ञ: , श० ब्राह्मण, २,३,१,२१

२. ऋग्वेद ५, २९, ८ —९

३. कामायनी सौन्दर्य, पृ० ७८

४. शतपथ ब्राह्मण ६ पृ० ३

५. मंडल,सूक्त २९, छन्द ८— ९

५. मनु एवं इड़ा प्रसंग—— कामायनी की कथा के अनुसार श्रद्धा को त्याग कर मनु सारस्वत प्रदेश पहुंचते हैं और इड़ा के सम्पर्क एवं प्रेरणा से वहां के राज्य-संचालक बनते हैं। इड़ा का वर्णन ऋग्वेद में कई स्थलों पर मिलता है। एक स्थल पर उन्हें सरस्वती के सदृश बुद्धि साधने वाली चेतना देने वाली कहा है ——

सरस्वती साधयन्ती धियं इलादेवी भारती विश्वतूर्तिः।[१]

इड़ा एवं मनु के पारस्परिक सम्बन्धों का संकेत भी ऋग्वेद में मिल जाता है। इड़ा को प्रजापति मनु की पथप्रदर्शिका एवं मनुष्यों पर शासन करने वाली भी कहा गया है।[२] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वह मनु के यज्ञ-अन्न से उत्पन्न होने के कारण मनु की दुहिता है।[३]

उपरोक्त विविध सूत्रों के आधार पर प्रसाद ने मौलिक रूप में कथा का विकास किया है। वेदों की बुद्धि-साधिका देवी इड़ा के संयोग से सारस्वत-प्रदेश में स्थापित शासन में बुद्धि का प्रभाव अधिक था। इड़ा का मनु की दुहिता होने के उल्लेख को कवि ने नवीन ढंग से ग्रहण किया है और उसे मनु की `आत्मजा-प्रजा` कहा है। अपनी ही `आत्मजा-प्रजा` पर मनु द्वारा किए अत्याचार के समान घटनाएं प्राचीनग्रंथों में प्राप्त हैं। ऋग्वेद में भी एक पिता द्वारा अपनी पुत्री के प्रति अनाचारेच्छा का वर्णन है।[४] मैत्रायणी-संहिता में प्रजापति का अपनी पुत्री `उषस्` पर आसक्त होने का वर्णन है।[५] उषा ने हिरणी का रूप धारण कर लिया तब प्रजापति ने

---

१. ऋग्वेद, मंडल २, सूक्त ३, छन्द ८

२. वही, मंडल-१, सूक्त ३१, छन्द ११

३. कामायनी भूमिका

४. ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त ६१, छन्द ५

५. मैत्रायणी संहिता-४, २- १२

भी किरण का रूप धारण कर लिया था । इस पर क्रुद्ध होकर रुद्र ने उन्हें अपने बाणों का लक्ष्य बनाया, किन्तु उन्होंने (प्रजापति) रुद्र को बाण न चलाने के बदले में पशुओं का अधिपति बना देने का वचन दिया था । शतपथ ब्राह्मण में भी उल्लेख है कि इड़ा पर अत्याचार करने के कारण मनु को देवताओं के शाप का भागी बनना पड़ा था । इस घटना का संकेत कामायनी में भी है । इधर मनु इड़ा की ओर हाथ बढ़ाते हैं और उधर रुद्र द्वारा भयानक उत्पात का आरम्भ होता है । यहां केवल देवताओं के शाप को ही नहीं झेलना पड़ता है वरन् सम्पूर्ण प्रजा ही विद्रोह कर उठती है —

> आलिंगन फिर भय का क्रंदन ! वसुधा जैसे कांप उठी ।
> वह अतिचारी, दुर्बल नारी, परित्राण पथ नाप उठी ।
> अन्तरिक्ष में हुआ रुद्र हुंकार भयानक हलचल थी,
> अरे आत्मजा प्रजा ! पाप की परिभाषा बन शाप उठी ।[१]

श्रद्धा एवं इड़ा के पारस्परिक सम्बन्धों के सूत्र भी ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं,[२] जिसमें दोनों को एक ही सिद्ध करने का यत्न किया गया है । अत: श्रद्धा द्वारा इड़ा के प्रति क्षमाभाव एवं श्रद्धा द्वारा अपने पुत्र कुमार का इड़ा को समर्पित करने की घटना को आधार मिल जाता है ।

६. <u>मनु पुत्र कुमार</u>— मनु पुत्र कुमार से सम्बन्धित प्रसंग के आधार के रूप में डा० फतहसिंह[३] ने वैदिक प्रसंग का उल्लेख किया है जिसमें 'कुमार' के अनुदेवी हो जाने का उल्लेख है ।[४] किन्तु उसका कामायनी प्रसंग से मेल नहीं बैठता है । वहां उसने स्पष्टत: अपने पिता के रूप में 'यम' का उल्लेख किया है ।

---

१. कामायनी, पृ० १४४

२. कामायनी सौन्दर्य, पृ० १३०

३. वही, पृ० १३६

४. ऋग्वेद, १०।१३५, ४,-५

श्रद्धा एवं मनु के दस पुत्रों का उल्लेख श्रीमद्भागवत में प्राप्त होता है जिनके द्वारा विविध राज्यवंशों का विकास होता है। मनुपुत्र `मानव` की कल्पना मनु पुत्र के रूप में अकल्पनीय एवं अपौराणिक नहीं है। श्रद्धा द्वारा अपने पुत्र का इड़ा को समर्पित करने की घटना की कथा का प्रतीकात्मक अर्थयोजना के अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है।

प्रसंगों का नवीन विस्तार— विविध प्राचीन ग्रंथों से संकेत ग्रहण करके कामायनी में जिस रूप में उन घटनाओं का विस्तार किया गया है वह कवि की मौलिक प्रतिभा का परिचायक है। विशेषत: ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध की घटनाओं (सारस्वत प्रदेश की प्रजा के विद्रोह तक) के सूत्र वेद, पुराण, ब्राह्मण में प्राप्त हो जाते हैं किन्तु उत्तरार्द्ध के घटना-प्रसंगों — श्रद्धास्वप्न, श्रद्धामनु, मनु एवं श्रद्धा का कैलाश प्रयाण, त्रिपुर दर्शन, आनन्दावस्था की प्राप्ति, सारस्वत प्रदेश वासियों द्वारा मनु श्रद्धा के दर्शन के लिए जाना—के विकास में कवि ने कल्पना का आश्रय लिया है। वस्तुत: स्थूल कथा-विधान के माध्यम से जिन सूक्ष्म-भावों की अभिव्यंजना कवि ने की है उसकी विशेष योजना ग्रंथ के अन्तिम तीन चार सर्गों में हुई है।

प्रतीकात्मक कथा-विधान— मनु-श्रद्धा-इड़ा के त्रिकोण में विकसित स्थूल कथा के अतिरिक्त सूक्ष्म भावात्मक अभिव्यंजना कवि का विशेष अभिप्रेत था। इसी लिए कथा के बाह्य कथांशों के अतिरिक्त भी बहुत कुछ ऐसा बच जाता है जिसका सम्बन्ध उक्त कथा से स्थापित नहीं किया जा सकता है। यदि श्रद्धा, इड़ा एवं मनु से सम्बन्धित ऐतिहासिक प्रसंगों को छोड़ भी दिया जाए तो चिन्ता, आशा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, निर्वेद दर्शन एवं आनन्द आदि सर्ग प्रत्यक्षत: मानसिक अभिव्यक्तियाँ हैं, जिनका बाह्य घटनाविधान से सम्बन्ध उनके प्रेरक मानसिककरण के रूप में है, किन्तु यदि मनु को `मन ` के रूप में देखा जाए तो ये इन वृत्तियों के लिए स्पष्ट आधार

मिल जाता है, क्योंकि इनका आश्रयस्थल मन है। इतना ही नहीं श्रद्धा एवं इड़ा के माध्यम से अभिव्यक्त दो मूलभूत मानसिक प्रवृत्ति भावना एवं बुद्धि का रूप भी अत्यन्त स्पष्ट रूप में प्रतिफलित होता है। जैसा कि कवि ने भी भूमिका में कहा है —

" यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है तो भी बड़ा भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्य का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है। आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"[१]

इस तरह एक ओर ऐतिहासिकता का आश्रय ग्रहण करके 'मनु' के द्वारा मानव जाति के विकास का इतिहास प्रस्तुत किया है और दूसरी ओर आधुनिक मनोविज्ञान का आश्रय लेकर मन के विकास का इतिहास भी चित्रित किया गया है। 'मनु' मनन अथवा मन के प्रतीक हैं। मनु के इस सामान्य अर्थ का संकेत ऋग्वेद के उन स्थलों में भी मिल जाता है जहाँ मनु को व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में न देखकर सामान्य 'मानव' या 'मनुष्य' के रूप में देखा गया है। श्रद्धा मन की 'भावात्मकता, संवेदनात्मकता (अथवा मानव मन से सम्बद्ध जो कुछ कोमल, आदर्शमय एवं उदात्त है) की द्योतक है। इड़ा मन के 'बुद्धि' की परिचायिका है। ये विविध पौराणिक पात्र अपने मूल रूप में इन वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं — इस पर भी कवि ने प्रकाश डाला है और उसमें कठोपनिषद् का वह उदाहरण भी प्रस्तुत किया है जिसमें मनु एवं श्रद्धा की भावमूलक व्याख्या की गई है।

कवि के रूपकात्मक विधान के अनुसार प्रथम सर्ग में चित्रित मनु की 'चिन्ता' मन के उस 'चिन्तन' का प्रतीक है जिसके मध्य 'आशा' की

---

१. कामायनी — लेखक की भूमिका।

अन्त:सलिला प्रवाहित होती है। `श्रद्धा` मनु की प्रथम सहचारिणी है, जो मनु का परसेवा पर दु:खकातरता से परिपूर्ण उदात्त जीवन से परिचय कराती है जो `श्रद्धा` मन के हृदय पक्ष की परिचायिका है। मन पर हृदय का अनुशासन अथवा मनु का श्रद्धायुत होना हृदय के कोमल तत्वों को प्रश्रय देना है। अपने हृदयनिधि के साथ श्रद्धा का मनु के प्रति `समर्पण` प्रकारान्तर से हृदय के विभिन्न गुणों के प्रति मन की स्वीकृति का ही प्रतीक है —

समर्पण लो सेवा का सार
सजल संसृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पगतल पर विगत विकार।
दया माया, ममता लो आज।
मधुरिमा लो अगाध विश्वास;
हमारा हृदयरत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है आज।[१]

श्रद्धा से वियुक्त होकर मनु इड़ा का आश्रय ग्रहण करते हैं। श्रद्धा एवं मनु के बीच इड़ा व्यवधान बनती है। मन एवं हृदय के बीच बुद्धि ही विभाजन रेखा खींच देती है हृदय जहां संयुक्तीकरण, समीकरण का परिचायक है वहां बुद्धि अपनी तर्कशीलता, विश्लेषणात्मकता के कारण स्वभावत: सत्यविभाजिका है। एकान्तिक बुद्धिवाद, व्यक्तिमन को स्वार्थी, निरंकुश एवं व्यभिचारी बना देता है। `सारस्वत` प्रदेश में मनु का अत्याचार बुद्धि के अतिचार का उदाहरण है। बुद्धिवाद मन को आत्मपीड़न की ओर ले जाता है। इड़ा के सम्पर्क अर्थात् मन के बुद्धियुक्त होने से सारस्वत प्रदेश में जिस यंत्रवाद का प्रचार हुआ वह आधुनिक युग में बुद्धिवाद से विकसित ` यांत्रिक

---

१. कामायनी, ३।४९-५०

सभ्यता' के द्वारा भी पुष्ट होता है। हृदय के भावों से दूर होकर बुद्धिवादी मानव किस प्रकार आत्मकेन्द्रित एवं स्वार्थयुक्त होता जा रहा है इसका स्पष्ट उदाहरण आधुनिक युग की बौद्धिक सभ्यता प्रस्तुत करती है। स्वयं इड़ा के मुख से कवि ने कहलाया है —

मैं जनपद कल्याणी प्रसिद्ध,
अब अवनति कारण हूं निषिद्ध,
मेरे सुविभाजन हुए विषम
टूटते नित्य बन रहे नियम,
नाना केन्द्रों में जलधर सम
घिर हट, बरसे ये उपलोपम,
यह ज्वाला इतनी है समिद्ध,
आहुति बस चाह रही समृद्ध।[१]

भावना एवं बुद्धिवाद की द्योतक इन दो नारी पात्रों के मध्य होकर मनु का गुजरना, उनसे संयुक्त वियुक्त अथवा पुन: संयुक्त होना, मन के ऊपर इन वृत्तियों के प्रभाव उसकी प्रतिक्रिया का परिचायक है। श्रद्धा एवं इड़ा के बीच पड़े मनु का अन्तर्द्वंद्व बुद्धि एवं हृदय के संघर्ष का चित्र प्रस्तुत करता है और यहीं पर उस मार्ग का अन्वेषण आवश्यक था जिसके द्वारा अतिवादी बुद्धिवाद से उत्पन्न दु:खों से मुक्ति मिल सके। इस संघर्ष का समाधान जिस 'मार्ग' से दर्शाया है वही कवि का मौलिक दर्शन है। मनु आत्मपीड़ा के परिशमन के लिए श्रद्धा के मधुर गोद का आश्रय ग्रहण करता है। अर्थात् अर्थात् भावों के आश्रय में ही मनुष्य को शान्ति मिल सकती है। अशान्त-मना विक्षुब्ध मनु का श्रद्धा के सहारे शान्ति की खोज में उच्चगिरि पर आरोहण होता है। मन का स्वास्थ्य, हृदय की वृत्तियों के सहारे निरन्तर उदात्तीकरण' भी यही है — क्रमश: ऊंचे बढ़ते जाना, ऐसे स्थल पर जहां केवल शान्ति है, शाश्वत

---

१. कामायनी, दर्शन। पृ० १८१

आनन्द है। यहां ही श्रद्धा के संसर्ग से मनु त्रिपुर एवं उनके परस्पर विच्छिन्न रूप की विकरालता का दर्शन करते हैं और श्रद्धा ही उन्हें संयुक्त करके मनु को दिखाती हैं क्योंकि हृदय ही मन को जोड़ता है उसे सम्पूर्णता प्रदान करता है —

ज्ञानदूर कुछ, क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके।
यह विडम्बना है जीवन की।

महाज्योति रेखा सी बनकर
श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमें,
वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिनमें।

<< << <<

स्वप्न स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।[१]

अन्तिम सर्ग में मनु द्वारा त्रिलोक दर्शन, 'नर्तित नटेश' की योजना द्वारा समरसता की भूमि पर मन की वृत्तियों के एकीकरण के साथ ही, इच्छा, ज्ञान, क्रिया का समीकरण हुआ है-वह 'शैवागम दर्शन' के निकट है।

मन का 'उन्मयन' उसका 'उन्मनिता' रूप वृत्तियों के उदात्ती-करण का परिचायक है, पर व्यावहारिक जीवन में मानव की नियति का रूप

---

१. कामायनी रहस्य, पृ० २०६

क्या होगा इसकी अभिव्यक्ति मनु-श्रद्धा पुत्र कुमार के माध्यम से [अर्थात् — हृदय एवं बुद्धि के समीकरण से] होता है। हृदय के क्रोड़ से उत्पन्न एवं पालित-पोषित मानव बुद्धि के अनुशासन में ही भावी कल्याणकारी संस्कृति का विकास करेगा—

> हे सौम्य ! इड़ा का शुचि दुलार
> हर लेगा तेरा व्यथा भार,
> यह तर्कमयी तू श्रद्धामय
> तू मननशील कर कर्म अभय,
> इसका तू सब सन्ताप निचय
> हर ले हो मानव भाग्य उदय ,
> सबकी समरसता कर प्रचार
> मेरे सुत ! सुन मां की पुकार ।[1]

पार्वती[2] —

कवि ने एक ओर तीन कथाओं के योग से इस ग्रन्थ के कथावस्तु का निर्माण होता है। मुख्य कथा पार्वती एवं शिव की है जिसमें कवि ने हिमालय की सुषमा एवं महत्ता का वर्णन करके हिमालय राज हिमवान् उनकी पुत्री पार्वती के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा का वर्णन किया है। दूसरी कथा (उप-कथा) तारकवध की है और तीसरी तारक पुत्र एवं उनके त्रिपुरों के विनाश की है। ये कथाएं यद्यपि स्वतंत्र हैं किन्तु इनका परस्पर सम्बन्ध भी है और उनका सम्बद्ध वर्णन ही इस रचना में हुआ है।

---

१. कामायनी, दर्शन सर्ग, पृ० १८५

२. लेखक श्री रामानन्द तिवारी शास्त्री, 'भारतीय नन्दन', समय सं० २०१२वि

यद्यपि शिवकथा का विस्तृत वर्णन स्कन्धपुराण, मत्स्यपुराण में तथा संक्षेप में अन्य पुराणों में भी प्राप्त होता है किन्तु उसका मुख्य आधार शिवपुराण है। तारक पुत्र तथा उनके त्रिपुरों और उनके विनाश का विस्तृत वर्णन शिवपुराण,[१] मत्स्यपुराण[२] एवं महाभारत[३] में प्राप्त है, किन्तु पार्वती जन्म से लेकर त्रिपुर दाह तक के वर्णन में कवि ने जहां भी प्राचीन ग्रन्थों का आश्रय ग्रहण किया है — उसका रूप मुख्यत: शिव-पुराणानुसार है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में हिमालय के विस्तृत वर्णन की प्रेरणा कदाचित् `कुमार-सम्भव` से प्राप्त हुई है। इस प्रकार का वर्णन शिवपुराण (पार्वती की कथा का प्रारम्भ करते समय) में भी है जिसमें हिमवान के स्थावर रूप `हिमांचल` का संक्षिप्त वर्णन प्राप्त है।[४]

हिमालय वर्णन के पश्चात् राजा हिमवान् उनकी रानी मैना का वर्णन, मैनाक जन्म, पार्वती जन्म` पार्वती जन्म पर देवताओं द्वारा पार्वती अभिनन्दन, पार्वती का यौवन वर्णन, सती वियुक्त योगेश्वर शिव का समाधिलीन होना, पार्वती सहित हिमवान् का शिव से भेंट, हिमवान का अपनी पुत्री पार्वती का शिव की सेवा में रखने का प्रयत्न, पार्वती की प्रकृति कहकर शिव द्वारा तिरस्कार,पार्वती शिव वाद-विवाद , शिव द्वारापार्वती की सेवाओं को स्वीकृति प्रदान करना, तारक के अत्याचार का वृत्तान्त, बृहस्पति प्रेरित कामदेव का शिव को कुसुम सायक का लक्ष्य बनाना, काम दहन, रती विलाप, कामदेव को अनंग रूप प्रदान करना, नारद द्वारा

---

१. शिवपुराण, रुद्र संहिता, पंचम खण्ड, अ १-१०

२. मत्स्यपुराण अ १२९-१४०

३. महाभारत- कर्ण पर्व, अ० ३३-३४

४. शिवपुराण के अनुसार पार्वती पिता हिमवान् का दो रूप था — एक स्थावर जड़ रूप हिमालय और दूसरा पार्वती पिता — नृप हिमवान्।

— शिवपुराण रुद्र संहिता, पार्वती खंड, अध्याय १

प्रेरित कामदेव का शिव की आराधना, नारद की प्रेरणा से पार्वती का घोर तप, देवताओं के कहने पर शिव द्वारा स्वीकृति प्रदान करना, शंकर द्वारा पार्वती की परीक्षा एवं विवाह तक के विविध कथा प्रसंग (सर्ग २ से ११ तक) शिवपुराण के अनुसार है। आधार रूप में शिवपुराण एवं पार्वती की कथा-साम्य का वह स्थल विशेष दर्शनीय है जबकि मैना रानी अपनी पुत्री पार्वती के `वर` को देखने की प्रतीक्षा में है।[१] वह क्रमश: विश्वावसु, कुबेर, यम, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु आदि को देखकर उनको ही शिव समझ कर नारद से पूछती हैं नारद उनके भ्रम का निवारण करते हैं अन्तत: शिव के विचित्र रूप को देखकर वह नारद पर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठती हैं। शिव पुराण में इस प्रसंग का वर्णन इसी रूप में प्राप्त है।

प्रसंगों की नवीनता---

१. द्वादश सर्ग में पार्वती के साथ शिव के कैलाश प्रयाण की घटना पौराणिक है, किन्तु द्वादश सर्ग के अन्त में एवं त्रयोदश सर्ग का `दौह्द विहार` प्रसंग का सम्पूर्ण वर्णन ही कवि की मौलिक उद्भावना है। शिव-पार्वती के पारस्परिक पति-पत्नी सम्बन्धों को शक्ति एवं शक्तिमान् की दिव्य भावना के अतिरिक्त सहज मानवी एवं लौकिक धरातल पर स्थापित किया गया है। दौह्द विहार प्रसंग में शिव एवं पार्वती के प्रेमपूर्ण मनुहारों के वर्णन में आधुनिकता है। इस सर्ग की योजना कामायनी के ईर्ष्या सर्ग की याद दिलाती है एवं तकली द्वारा सूत कातती हुई पार्वती के चित्र में सहज ही कामायनी के श्रद्धा की झलक मिल जाती है।

---

१. शिवपुराण, रुद्र संहिता, पार्वती खण्ड, अध्याय ४३

२. कार्तिकेय जन्मवृत्तान्त पुराणों में अत्यन्त चमत्कारिक है। यह शिव की आयोनिज सन्तान है। यहां कवि ने इस घटना को अधिक बुद्धि-ग्राह्य बनाने के लिए कुमार जन्म का स्वाभाविक ढंग से वर्णन किया है।[१]

३. तारक बध के लिए कुमार का देवसेना के साथ प्रयाण का वर्णन पुराणों में चमत्कारिक है। पुराणों के अनुसार (तारक को प्राप्त विशेष वरदान के कारण) सात दिन के कुमार के (किसी किसी पुराण में पन्द्रह दिन के) द्वारा तारक का बध होता है किन्तु यहां इस कथा का विकास भिन्न ढंग से हुआ है। परशुराम द्वारा दीक्षित युवक-कुमार द्वारा तारक का बध होता है।

४. शोणितपुर में जयन्त अभिषेक एवं तारक पुत्री द्वारा उनका वरण कवि की कल्पना है। कार्तिकेय के साथ देव-सेना के सम्योग का वर्णन है पर इस प्रसंग में जयन्त के विशेष महत्व का प्रतिपादन पुराणों में नहीं है। इसी प्रसंग में उस नवीन घटना का वर्णन भी है जब कि शची एवं इन्द्र राज्य का भार जयन्त को देकर स्वयं वानप्रस्थ ग्रहण कर लेते हैं। कदा-

---

१. स्कन्दपुराण (स्कन्दपुराण केदार खण्ड, अ) में कार्तिकेय जन्म की कथा का वर्णन है कि विवाहोपरान्त शिव पार्वती के साथ गन्धमादन पर्वत पर विहार में रत हुए। उस महती सम्भोग लीला के आरम्भ होने पर भगवान शंकर के दु:सह वीर्य से समस्त चराचर जगत नष्ट होने लगा। तब देवताओं द्वारा प्रेषित अग्नि बड़ी उतावली से सम्भोग स्थल पर पहुंच कर पार्वती से भिक्षा मांगते हैं। पार्वती को भिक्षा के रूप में शिव-वीर्य दे दिया जिसे उन्होंने खा लिया। यह वीर्य बाद में अग्नि तापती हुई कृतिकाओं में स्थापित हो जाता है। गर्भवती कृतिकाएं अपने पति महर्षियों के द्वारा शापित होने पर उस वीर्य को हिमालय के शिखर पर छोड़ देती हैं। हिमालय पर यह वीर्य तपाए हुए सुवर्ण के समान चमक उठता है फिर वह गंगा जी में डाल दिया जाता है। गंगा जी में बहता हुआ यह वीर्य सरकंडों के समूह से घिरकर षण्मुखी बालक के रूप में प्रगट होता है है — इस कथा के सम्बन्ध में विभिन्न पुराणों में भेद है किन्तु कुमारजन्म के लिए अग्नि,गंगा तथा कृतिकाओंके सम्योगका वर्णन सभी पुराणों में समान है।

चित्त कवि अपने आदर्श स्थापना में नवयुवक वर्ग के विशेष महत्व का प्रतिपादन करना चाहता है।

५. 'त्रिपुर उद्धार' की ~~घटना~~ जिस रूप में कवि ने दिखाया है वह कवि की कल्पना है। पुराणों में ये त्रिपुर शिव के बाण से विनष्ट होते हैं किन्तु यहां कवि ने गांधी के अहिंसावादी शान्तिपूर्ण प्रयत्नों को दृष्टि में रखकर उनका आन्तरिक उपचार किया है।कुमार एवं जयन्त का प्रेमपूर्ण अभियान एवं त्रिपुर में व्याप्त विषमता को नष्ट करने का प्रयत्न कवि की मौलिक कल्पना है। कवि ने त्रिपुर-दाह को यहां जनक्रान्ति अथवा जनजागरण के रूप में देखा है।

प्रसंगों की प्रतीकात्मकता—

आधुनिक जीवन में व्याप्त विषमताओं का चित्रण उनका समाधान कल्पित आदर्श एवं उन्नतसमाज की स्थापना के लिए ही कवि ने पुराण कथा का आधार ग्रहण किया है और अपने इस उद्देश्य निरूपण के लिए तारक बध के पश्चात् 'त्रिपुरउदय' से ही उक्त पौराणिक प्रसंगों को प्रतीकात्मक अर्थ में प्रस्तुत किया है।

पुराणों के अनुसार तारकबध के पश्चात् तारक पुत्र तारकाक्ष, कमलाक्ष एवं विद्युन्माली तपस्या करके क्रमशः स्वर्णयुत, रजतयुत एवं लौह-युत पुरों के निर्माण का वरदान प्राप्त करते हैं। पुराण के इस त्रिपुरकल्पना को कविनेयहां समाज में व्याप्त त्रिवर्गीय समस्याओं का प्रतीक माना है। तारकाक्ष का कांचनपुर 'श्री' अथवा वैभव तथा सम्पत्ति का प्रतीक है, कमलाक्ष का राजतपुर विशुद्ध 'ज्ञान' का परिचायक है। विद्युन्माली का आयसपुर ज्ञानरहित 'शक्ति' का प्रतीक है।ये जीवन के अनिवार्य तत्व परस्पर वियुक्त होकर विषमता का बीजारोपण करते हैं।

त्रिपुर के आधार पर त्रिवर्गीय सामाजिक विषमता को देखने का यत्न कामायनी के अन्तिम दो सर्गों ` रहस्य` एवं `आनन्द ` का स्मरण दिलाता है । कामायनी में वर्णित त्रिपुर मन की तीन वृत्तियां हैं, जिनका परस्पर असम्बद्ध होना ही विषमता है । पर पार्वती के त्रिपुर-वर्णन में जिन त्रिवर्गीय समस्याओं को चित्रित किया गया है उसकाधरातल सामाजिक है ।

कवि के मतानुसार `शान्ति-संस्कृति का अद्भुत प्रेम विधान` ज्ञान भी शक्ति एवं श्रीविहीन होकर विषमता उत्पन्न करता है —

त्याग शक्ति श्री को जीवन की केवल ज्ञान
संस्कृति का आधार मूल भी बनता विकृति-विधान ।[१]

इसी प्रकार ज्ञान रहित `श्री ` दुराचार का केन्द्र बन जाता है एवं ज्ञान श्री रहित केवल`शक्ति` भी मनुष्य के आदिम प्रवृत्तियों का प्रतीक रह जाता है —

बल,काम , क्रोध में होकर मूर्तिमती
श्री प्रवृत्ति लोक में यथा काम शासन करती ।
जिसमें आत्मा का मृदु स्वर मानव को भूला
सर्जन का जीवन अतिशय ही फूला ।[२]

पर इस विषमता का उपचार क्या है ? पुराणों के अनुसार शिव विश्वकर्मा द्वारा निर्मित ` सर्वदेवमयरथ` पर आरूढ़ होकर पाशुपत बाण द्वारा त्रिपुरों का विनाश करते हैं ।[३] पुराण की इस घटना को कवि ने प्रती-

---

१. पार्वती, पृ० ४१२

२. वही, पृ० ४३७

३. शिवपुराण रुद्र संहिता—६— १०

त्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। त्रिपुर तथा त्रिपुर नायकों का विनाश केवल शिव के द्वारा सम्भव था[1] किन्तु यहां कवि की प्रतीकात्मक अर्थयोजना के अनुसार केवल 'शिवत्व' का शाश्वत बोध ही त्रिपुर रूपी विषमता का अन्त कर सकता है। यह 'शिवत्व' ज्ञान, शक्ति, प्रेम के समीकरण का द्योतक है और प्रेम ही उसका मूल मंत्र है। प्रेम के द्वारा ही त्रिपुर-विनाश सम्भव है —

प्रकृति और प्रतिरोध मार्ग से चलता यह अपूर्ण संसार।
ज्ञान, शक्ति, संयोग विश्व का रक्षित करता पावन क्षेम
त्रिपुरों का उद्धार विश्व में कर सकता पर जाग्रत प्रेम।[2]

इस नवीन अर्थ योजना के अनुसार यहां 'त्रिपुर-विनाश' नहीं वरन् 'त्रिपुर उद्धार' का वर्णन है। जयन्त एवं कुमार कार्तिकेय के प्रेम पूर्ण अभियान द्वारा राजतपुर, आयसपुर एवं कांचनपुर की विषमता का अन्त होता है। अतः इस प्रेम-पूर्ण-अभियान में पुराणों में वर्णित शिव का 'देवरथ' यहां 'विश्व प्रगति' का प्रतीक बन गया है। पुराणों के अनुसार इस देवरथ के निर्माण में देवताओं ने विशेष योगदान दिया था, किन्तु यहां सम्पूर्ण विश्व ही उस रथ का निर्माण करता है। उसका सतत प्रगतिमय युगल चक्र सूर्य और चन्द्र है, ध्वज नक्षत्रयुक्त आकाश है, रथनीड़ हिमालय है और सम्पूर्ण भारतवर्ष ही उसका सारथी है —

अयुत विश्वकर्मा जीवन के, अखिल विश्वजन अब निर्माण,
होकर सजग सचेष्ट करेंगे 'विश्व प्रगति' का नवरथ यान।
होगा तभी अनन्त त्रिपुर पर वहृस सकल अन्तिम अभियान,
होंगे तभी वियुक्त विश्व में मुक्ति शान्तियुत सुख के गान।
सतत प्रगतिमय युगल चक्र से होंगे जिसके रवि और सोम,
होगा जिसका ध्वज हिमालय नक्षत्रोंमय विस्तृत व्योम।

---

१. शिवपुराण, रुद्र संहिता, २—५

२. पार्वती, पृ० ४०८

होगा दृढ़ रथनीड़ हिमालय प्रकृति सुसज्जित शोभाधाम,
पुष्कर भारतवर्ष बनेगा जिसका सार्थ निर्मल अभिराम ।[१]

सामयिकता—

त्रिपुर के माध्यम से जिस व्याधि का चित्रण हुआ है वह शाश्वत है, किन्तु इस युग के समाज का भी चित्र है । ज्ञानपुर में धर्म के नाम पर व्याप्त धर्माभास, कांचनपुर में अर्थ का अनाचार एवं आयसपुर में व्याप्त शक्ति के अत्याचार के रूप में जिन बहुविध चित्रों का अंकन कवि ने किया है उसकी आधुनिकता एवं समसामयिकता से स इंकार नहीं किया जा सकता है । त्रिपुर उपचार के रूप में शिवत्व के बोध द्वारा आन्तरिक परिवर्तन के चित्रण पर गांधी के अहिंसावाद का प्रभाव परिलक्षित होता है, परशुराम के 'शक्ति-योग' के द्वारा कवि अहिंसा के नामपर विकसित कायरता का निषेध करता है । परशुराम के माध्यम से कवि ने अहिंसा के इस दूषित रूप पर प्रहार किया है —

धरा में धर्म नय और शान्ति के पूजित पुजारी
बनाते मानवों को ही रहे नित क धर्मचारी
सुनाते शान्ति का उपदेश केवल सज्जनों को
बनाते और भी दुर्बल मृदुल उनके मनों को ।[२]

वस्तुत: कवि गांधी की अहिंसा एवं हिंसा के समन्वोचित संतुलित सम्बन्धों को ही स्वीकार करता है । जीवन में व्याप्त व्याधि का उपचार गांधी के अहिंसा अथवा प्रेम मार्ग से ही सम्भव है क्योंकि उनका

---

१ पार्वती, पृ०५८४
२. वही, पृ० ३२०

सम्बन्ध जीवन के आन्तरिक पक्षों से है पर समाज की बहिर्मुखी समस्याओं को हिंसा के द्वारा ही दूर किया जा सकता है।

प्राचीन कथा के साथ सामयिकता के विशेष योग के कारण ही कुमार कार्तिकेय एवं जयन्त का प्रेम पूर्ण अभियान आधुनिक जनजागरण अथवा जनक्रान्ति की ओर संकेत करता है, जिसका प्रयत्न आधुनिक युग के अनेक समाज सुधारकों, राजनैतिक नेताओं एवं देश सेवकों ने किया था। कुमार द्वारा जन-जागरण के पश्चात् जिस आदर्श एवं उन्नत समाज की स्थापना कवि कराता है वह आधुनिक समाज के लिए देखा गया भावी स्वप्न है। जो आज नहीं है उसकी भावी कल्पना करके कवि इस युग के लिए सन्देश देना चाहता है। उस काल्पनिक समाज में वृद्ध-बाल, पति-पत्नी, माता-पिता, एवं नवयुवकों की विशेष स्थिति है। विशेषत: नारी की दुरवस्था की ओर कवि का ध्यान अधिक गया है। उस आदर्श समाज में गरिमा-युक्त नारी दूषित बन्धनों से मुक्त है। श्रमिक और किसान अपने द्वारा उत्पन्न फल के अधिकारी हैं। बालकों में नित्य ईश्वर का अवतार होता है। बालकों के लिए बाल मन्दिर है, युवकों के लिए ऐसे स्थल हैं जहां वे ब्रह्मचर्य, ज्ञान, एवं शक्ति का संचयन करते हैं और वृद्धगण भी उस समाज में बहिष्कृत नहीं वरन् अपनी आंखों में अतीत के जीवन की स्मृति को संजोए भावी जीवन का सुन्दर स्वप्न देखते हैं। शारीरिक श्रम के साथ जीवन में उच्च आत्मिक वृत्तियां भी जागृत हैं। कला, धर्म और साहित्य का समुचित महत्व है। वस्तुत: जीवन के विविधतत्वों के समुचित नियोजन के माध्यम से कवि समन्वयपूर्ण समाज की कल्पना करता है। यही समन्वयवादी दृष्टिकोण शिवधर्म है, शिव नीति है अथवा शिवसंस्कृति है —

बना समन्वय नवजीवन का सुन्दर और शिव कर्म
सफल और आनन्द पूर्ण थे जीवन के सब धर्म।[1]

आंबरा[2]—

मनुओं में सातवें मनु वैवस्वत् एवं श्रद्धा की कथा का आधार—

---

१. पार्वती

२. लेखक—श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', सन् १९५७ ई०

ग्रहण करके कामायनी की रचना हुई है। स्वंवरा के कवि ने प्रथम मनु स्वायंभु एवं शतरूपा के वृत्त को ग्रहण किया है। महाप्रलय के पश्चात् बृह्मा की स्थिति स्वायंभु मनु एवं शतरूपा की उत्पत्ति एवं सृष्टि का प्रारम्भ आदि घटनाओं का वर्णन ऋग्वेद, विष्णु पुराण एवं श्रीमद्भागवत के आधार पर है जिसकी ओर कवि ने अपनी भूमिका में संकेत कर दिया है। पर मनु एवं शतरूपा के द्वारा सृष्टि प्रारम्भ के पश्चात् ग्रंथ के उत्तरार्द्ध का कथा-विस्तार कवि की कल्पना का सुपरिणाम है।

कथा का आधार-

१. <u>महाप्रलय और बृह्मा की उत्पत्ति</u>- कामायनी के सदृश कवि ने ग्रंथ का प्रारम्भ जलप्लावन से किया है जबकि सृष्टि केवल एक तत्व के माध्यम से व्यक्त हो रही थी -

जल था जल के ऊपर जल था
जल में जल निस्तल गम्भीर
जल से भिन्न नहीं कुछ भी था
जल असीम था कहीं न तीर। [१]

महाप्रलय वर्णन के आधार-स्वरूप कवि ने ऋग्वेद के जिस सूक्त का उदाहरण भूमिका में दिया है, उसी प्रकार के महाप्रलय की शून्यावस्था का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषद् एवं पुराणों में प्राप्त होता है। [२] बृहदारण्य उपनिषद् में भी सृष्टि के विकास क्रम के पूर्व जलमय रूप एवं एक तत्व का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। [३] पर महाप्रलय के पश्चात् सृष्टि के तत्वों

---

१. एक तत्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन, कामायनी १। पृ० ६
२. तैत्तरीय ब्राह्मण (२, २६)
३. बृहदारण्य उपनिषद् ५, ६

के रचना क्रम में इन ग्रन्थों में परस्पर अन्तर दृष्टिगत होता है। कवि ने सृष्टि रचना क्रम का जो आधार ग्रहण किया है वह मूलतः श्रीमद्भागवत् एवं विष्णु पुराण पर आधारित है।

'महाप्रलय' प्रसंग में सृष्टि तत्वों के संक्रमण, विलयन, आलोड़न विलोड़न के वर्णन में कवि ने विष्णु पुराण एवं श्रीमद्भागवत के अनेक श्लोकों का भावानुवाद सा कर दिया है। उस महाप्रलय में सब कुछ एक ही तत्व में समाहित हो गया था, वहां न रात्रि न थी, न दिन था —

दिन था नहीं रजनी थी
गोधूली थी नहीं, न प्रात
नहीं दृष्टि पथ में आता था
किरणों का बहुरंगी गात।
क्रम समेट कर सब श्वासों के
अपने में कर लीन विलीन
परमशान्त था महाश्वास वह
वह अनन्त वह सीमाहीन।[1]

आगे कवि कहता है कि जिस प्रकार अग्नि पिण्ड में अग्नि का दाह छिपकर रहता है उसी प्रकार वह अविकल अनादि ब्रह्म स्वयं में निहित हो गया था—~~जैसे अग्नि पिण्ड के भीतर~~।

---

१. अंबरा १।४-५
विष्णुपुराण में भी यही कहा है —

नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमिर्नासीत्तमोज्योतिरभूच्च नान्यत् ।
श्रोत्रादिबुद्ध्यानुपलभ्यमेकं प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत् ।।

—विष्णु पुराण १।२ श्लोक २३

छिपकर रहता दारु महान
उसी भाँति अविकल अनादि वह
अपने में था ज्योतिष्मान ।[1]

महाप्रलय के उस शून्यावस्था में उस `महातत्व` की `ईक्षणा` से जल के मध्य कमल एवं कमल से `स्वयंभू` (ब्रह्मा) की उत्पत्ति होती है —

पुन: पूर्ववत् लगी उमड़ने
प्रलय सिन्धु जल राशि विशाल
जिसके स्फुरित फलक पर विजड़ित
कमल,कमल की कोमल नाल
हरा हरा कर सुरभि जाल की
पंखुड़ियों के खोल कपाट
विकल स्वयंभू देख रहे थे
महाशून्य की व्याप्ति विराट ।[2]

श्रीमद्भागवत में विष्णु के नाभि से उद्भूत कमल (जो कि महाप्रलयकालीन जल के तरंग मालाओं के कारण जल के ऊपर आ गया था) से ब्रह्मा के उत्पत्ति का वर्णन इसी रूप में प्राप्त होता है ।[3] विष्णु की

---

१. ऋतंबरा १।६
श्रीमद् भागवत में इसी भाव का श्लोक है —
सोऽन्त: शरीरेऽर्पितभूत सूक्ष्म:
कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणा:
उवास तस्मिन्सलिले पदे स्वे
यथानलो दारुणि रुद्धवीर्य: ।
— श्रीमद्भागवत् ३।८।११

२. ऋतंबरा, १ । पृ० ६

३. श्रीमद्भागवत् ३।८।१३,१४,१५,१६

नाभि से उद्भूत कमल के स्थान पर कवि ने उस महातत्व की 'इंगाणा' को महत्व दिया है। महाप्रलय के समाप्ति के पश्चात् ब्रह्मा के 'विकल्प' एवं समाधि का वर्णन कवि ने दो सर्गों में किया है। सृजन का 'विकल्प' और उससे प्रेरित समाधि अवस्था में लीन होना एवं अपने में अन्तर्निहित सम्पूर्ण विश्व के दर्शन का आधार भी श्रीमद्भागवत् के वे दो श्लोक हैं जिसकी ओर लेखक ने अपनी भूमिका में भी संकेत किया है।[१]

२. पृथ्वी का उद्धार— ब्रह्मा की उत्पत्ति, ब्रह्मा की समाधि-अवस्था में भावी सृष्टि की कल्पना के पश्चात् ही पृथ्वी के उद्धार का वर्णन है। 'पृथ्वी-उद्धार' श्रीमद्भागवत में भी वर्णित है पर कवि ने आधार विष्णु-पुराण का ग्रहण किया है। विष्णु पुराण के अनुसार विष्णु ही वाराह रूप धारण करके पृथ्वी का उद्धार करते हैं। श्रीमद्भागवत् में यह प्रसंग कुछ भिन्न रूप में है। स्वायंभु मनु की प्रार्थना पर ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न वाराह रूप-धारी श्रीहरि जल से पृथ्वी का उद्धार करते हैं। विष्णु पुराण में ब्रह्मा का उल्लेख नहीं है, वहां भी हरि ही शूकर रूप धारण करके जलावस्थित पृथ्वी को बाहर निकालते हैं। पृथ्वी के उद्धार का क्रम कवि ने विष्णुपुराण को स्वीकार किया है किन्तु 'पृथ्वी उद्धार' प्रसंग को नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। यहां वाराहरूपधारी विष्णु (विष्णु पुराण) अथवा ब्रह्मा के शरीर से उद्भूत वाराहरूपधारी विष्णु (श्रीमद्भागवत्) का उल्लेख नहीं किया है वरन् जल में पड़ी भयाक्रान्ता धरा को स्वयं ब्रह्मा ही सहारा देते हैं —

सागर का गर्जन सुन सुनकर
वह कांप रही थी थर थर कर
रुकने देती आंधियां नहीं
आधार दीखता था न कहीं
कोलाहल चारों ओर यही कातर पुकार—
पृथ्वी को कोई महाप्राण लेता संभाल।

---

१. श्रीमद्भागवत, ३।८।१७, २१,२२

ब्रह्मा ने दिया सहारा तब ।[१]

२. व्यवधान— पंचम सर्ग 'व्यवधान' की योजना विष्णु-पुराण के उस प्रसंग[२] पर आधारित है, जबकि सृष्टि विकास के निमित्त प्रजापति के शरीर से उत्पन्न उनकी मानस प्रजा के द्वारा सृष्टि रचना का कार्य आगे नहीं बढ़ता है। तब ब्रह्मा ने भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वशिष्ट—अन्य मानस पुत्रों की सृष्टि की, किन्तु उनके ये संतान भी संसार से विरक्त रहे। उनकी विरक्ति देखकर प्रजापति अत्यन्त क्रोधित हो उठते हैं।[३] प्रजापति के क्रोध से ही 'रुद्र' की उत्पत्ति होती है कवि ने इस 'क्रोध' को ही सृष्टि रचना में व्यवधान जैसे मानसिक वृत्ति के रूप में देखा है, जिसके प्रस्तुतीकरण में भी कवि ने नवीनता से काम लिया है। यहाँ 'व्यवधान' प्रजापति-पुत्रों के विरक्ति के कारण नहीं है, प्रस्तुत प्रलय-कालीन उत्पात से भयभीत जलाविभूत पृथ्वी के मन की शंका, अविश्वास और निस्पृहता है जिसको देखकर ब्रह्मा क्रोधित हो उठते हैं —

कला रसवन्ती यह अनमोल
रुके पर अब भी मधु के बोल
कि अब तक निखर न पाया रंग
पुलक की बने न रोम उमंग
उमड़, उठ, चूम नील आकाश
न मन अब तक दौड़ा है उल्लास
न अब तक सकी हृदय को खोल
कला रसवन्ती यह अनमोल ।[४]

---

१. ऋतंवरा ४/पृ ५२

२. विष्णु पुराण, प्रथम भाग, ७ अ। ६,१०,११

३. इस प्रसंग का वर्णन श्रीमद्भागवत में भी प्राप्त है ३ सं। १२। ६

४. ऋतंवरा ५। पृ० ५६

४. मनु और शतरूपा की उत्पत्ति— प्रथम मन्वन्तर के आदि पुरुष मनु एवं शतरूपा की उत्पत्ति का वर्णन अनेक पुराणों में प्राप्त होता है। कवि ने अपने वर्णन में भी विष्णुपुराण का आश्रयग्रहण किया है। श्रीमद्-भागवत् के अनुसार अपने मानस पुत्रों की विरक्ति देखकर (काव्यग्रंथ में व्यवधान) क्रोधित ब्रह्मा अपने शरीर को दो रूपों में विभाजित करते हैं —ये ही स्वायंभू एवं शतरूपा थे। इनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा उनके निवास के लिए पृथ्वी का उद्धार करते हैं। पर कवि ने विष्णु पुराण का क्रम स्वीकार किया है और पहले पृथ्वी का उद्धार होता है और तत्पश्चात् मनु एवं शतरूपा की सृष्टि होती है। जैसा कि कवि ने भूमिका में कहा है — ` कर्म के बाद कला का यह क्रम मुझे अच्छा लगा।`[१]

प्रसंगों की नवीन योजना— शाश्वत सत्यों की स्थापना के लिए जिस पौराणिक कथा का आधार ग्रहण किया है उसका वर्णन प्रारम्भिक सात सर्गों में हुआ है उसके पश्चात् शेष सर्गों की कथा का विस्तार कवि ने अपनी कल्पना के आधार पर किया है। मनु एवं शतरूपा के आविर्भाव की घटना पौराणिक है, उसके पश्चात् ही सृष्टि रचना का प्रारम्भ होता है। कामायनी में मनु एवं श्रद्धा के पारस्परिक सम्मिलन के पश्चात् ही सृष्टि रचना के जिस सृजनात्मक ` कर्म ` का प्रारम्भ कराया गया था वह वैदिक कर्म-`यज्ञ` था। अंबरा में स्वायंभू-मनु की उत्पत्ति के पश्चात् जिस कर्मशील जीवन का समारम्भ किया गया है वह आधुनिक अर्थ में `शारीरिक श्रम` कहे है। शरीरिक श्रम को हम उस युग के उपयुक्त स्वीकार कर सकते हैं क्योंकि मानव का प्रारम्भिक कृत्य शारीरिक श्रम के रूप में ही प्रकट हुआ था।[२] श्रमक्लान्त, खायल मनु के सात्वना हेतु शतरूपा की आकस्मिक उपस्थिति एवं श्रमक्लान्त `पौरुष` के लिए शतरूपा रूपिमणी `कला` का कोमल आश्रय

---

१. अंबरा—कवि की भूमिका

२. वही, सर्ग ८

४. मनु और शतरूपा की उत्पत्ति— प्रथम मन्वन्तर के आदि पुरुष मनु एवं शतरूपा की उत्पत्ति का वर्णन अनेक पुराणों में प्राप्त होता है। कवि ने अपने वर्णन में भी विष्णुपुराण का आश्रयग्रहण किया है। श्रीमद्-भागवत् के अनुसार अपने मानस पुत्रों की विरक्ति देखकर (काव्यग्रंथ में व्यवधान) क्रोधित ब्रह्मा अपने शरीर को दो रूपों में विभाजित करते हैं — ये ही स्वायंभू एवं शतरूपा थे। इनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा उनके निवास के लिए पृथ्वी का उद्धार करते हैं। पर कवि ने विष्णु पुराण का क्रम स्वीकार किया है और पहले पृथ्वी का उद्धार होता है और तत्पश्चात् मनु एवं शतरूपा की सृष्टि होती है। जैसा कि कवि ने भूमिका में कहा है — " कर्म के बाद कला का यह क्रम मुझे अच्छा लगा।"[१]

प्रसंगों की नवीन योजना— शाश्वत सत्यों की स्थापना के लिए जिस पौराणिक कथा का आधार ग्रहण किया है उसका वर्णन प्रारम्भिक सात सर्गों में हुआ है उसके पश्चात् शेष सर्गों की कथा का विस्तार कवि ने अपनी कल्पना के आधार पर किया है। मनु एवं शतरूपा के आविर्भाव की घटना पौराणिक है, उसके पश्चात् ही सृष्टि रचना का प्रारम्भ होता है। कामायनी में मनु एवं श्रद्धा के पारस्परिक सम्मिलन के पश्चात् ही सृष्टि रचना के जिस सृजनात्मक ' कर्म ' का प्रारम्भ कराया गया था वह वैदिक कर्म-'यज्ञ' था। ऋतंबरा में स्वायंभु-मनु की उत्पत्ति के पश्चात् जिस कर्मशील जीवन का शुभारम्भ किया गया है वह आधुनिक अर्थ में 'शारीरिक श्रम' कहे है। शरीरिक श्रम को हम उस युग के उपयुक्त स्वीकार कर सकते हैं क्योंकि मानव का प्रारम्भिक कृत्य शारीरिक श्रम के रूप में ही प्रकट हुआ था।[२] श्रमक्लान्त, खिन्न घायल मनु के सान्त्वना हेतु शतरूपा की आकस्मिक उपस्थिति एवं श्रमक्लान्त 'पौरुष' के लिए शतरूपा रूपिणी 'कला' का कोमल आश्रय

---

१. ऋतंबरा—कवि की भूमिका

२. वही, सर्ग ८

बनना, जीवन का प्रारम्भ, मनु का श्रम परिश्रम, रमणीरूप धारिणी पृथ्वी, का मनु के मोह को भंग करना, मनु के मन में विषाद की उत्पत्ति निद्रित मनु का स्वप्न में 'सभ्यता' के रूप में पृथ्वी पर व्याप्त विषमता का दर्शन, विक्षुब्ध-मना मनु का मंगल दीप बुझाना, बुद्धा द्वारा सुख-दु:ख के शाश्वत क्रम का दर्शन कराना और मनु का आत्मबोध आदि विविध आन्तरिक भावात्मक संघर्षों एवं सांकेतिक घटनाओं की योजना कवि की अपनी कल्पना है।

प्रसंगों की भावात्मक अभिव्यक्ति--- उपर्युक्त प्रख्यात अथवा काल्पनिक प्रसंगों की योजना में विशेष प्रवृत्ति परिलक्षित होती है कि घटनाओं के स्थान पर विविध अन्तर्भावों का चित्रण, अनुभूतियों की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति, घटनाओं में अन्तर्निहित प्रेरक भावों का अंकन ही इस ग्रन्थ की विशेष कथावस्तु है। अत: पौराणिक प्रसंगों को भी भावानुभूतियों के विशेष योग से आधुनिक बना दिया गया है। बुद्धा की उत्पत्ति के पश्चात् विकल्पात्मक एवं समाधि स्थिति में उनके अन्तरानुभूतियों का विस्तृत वर्णन प्रलय-आक्रान्त, भयाकुल पृथ्वी के मनोभावों का चित्रण (पृथ्वी का मानवीकरण करके) मनु का विषाद, उद्बोधन, भविष्य दर्शन एवं आत्मबोध आदि प्रसंगों के चित्रण में कवि ने तथ्य के स्थान पर भावना का सहारा अधिक लिया है।

प्राचीन कथा और सामयिक उद्देश्य--- प्राचीन पौराणिक कथा के माध्यम से कवि ने सामयिक समस्या के दिग्दर्शन एवं उसके भावी समाधान का यत्न किया है। शाश्वत पुरुष मनु के विषाद की अनुभूति के माध्यम से

ऋतंबरा, सर्ग ८

बनना, जीवन का प्रारम्भ, मनु का अथक परिश्रम, रमणीरूप धारिणी पृथ्वी, का मनु के मोह को भंग करना, मनु के मन में विषाद की उत्पत्ति निद्रित मनु का स्वप्न में `सभ्यता` के रूप में पृथ्वी पर व्याप्त विषमता का दर्शन, विक्षुब्ध-मना मनु का मंगल दीप बुझाना, श्रद्धा द्वारा सुख-दु:ख के शाश्वत क्रम का दर्शन कराना और मनु का आत्मबोध आदि विविध आन्तरिक भावात्मक संघर्षों एवं सांकेतिक घटनाओं की योजना कवि की अपनी कल्पना है।

प्रसंगों की भावात्मक अभिव्यक्ति--- उपर्युक्त प्रख्यात अथवा काल्पनिक प्रसंगों की योजना में विशेष प्रवृत्ति परिलक्षित होती है कि घटनाओं के स्थान पर विविध अन्तर्भावों का चित्रण, अनुभूतियों की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति, घटनाओं में अन्तर्निहित प्रेरक भावों का अंकन ही इस ग्रन्थ की विशेष कथावस्तु है। अत: पौराणिक प्रसंगों को भी भावानुभूतियों के विशेष योग से आधुनिक बना दिया गया है।श्रद्धा की उत्पत्ति के पश्चात् विकल्पात्मक एवं समाधि स्थिति में उनके अन्तरानुभूतियों का विस्तृत वर्णन प्रलय-आक्रान्त, भयाकुल पृथ्वी के मनोभावों का चित्रण (पृथ्वी का मानवीकरण करके) मनु का विषाद, उद्बोधन, भविष्य दर्शन एवं आत्मबोध आदि प्रसंगों के चित्रण में कवि ने तथ्य के स्थान पर भावना का सहारा अधिक लिया है।

प्राचीन कथा और सामयिक उद्देश्य— प्राचीन पौराणिक कथा के माध्यम से कवि ने सामयिक समस्या के दिग्दर्शन एवं उसके भावी समाधान का यत्न किया है। शाश्वत पुरुष मनु के विषाद की अनुभूति के माध्यम से

ऋतंभरा, सर्ग ८

कवि काल की सीमाओं का अतिक्रमण कर आधुनिक जीवन की समस्याओं का चिन्तन करता है। श्रमक्लान्त मनु स्वप्न के माध्यम से जिस विषमता के दर्शन करते हैं वह आधुनिक युग में व्याप्त विषमता है। वह भौतिकता से उत्पन्न यंत्रवादी अभिशाप है —

बोल रही सभ्यता इन्हीं
यंत्रों के क्रूर स्वरों में
और मुग्ध तिरती-फिरती है
शोणित की लहरों में।[1]

दूसरी ओर राजनैतिक जीवन में व्याप्त विषमता का चित्र है —

त्रस्त राजकर से ही जनता
त्राहि त्राहि चिल्लाती
झूम झूम सभ्यता नाचती
नागिन-सी इठलाती।[2]

< < < <

लाज लुट रही वनिताओं की
लुटती वे बाटों में
बिकती मुट्ठी-भर अनाज के
लिए खुले हाटों में।[3]

जिसके कारण के रूप में कवि आधुनिक भौतिकवादिता की ओर संकेत करता है। —

---

१. अंबरा १२।१६२
२. वही १२।१६६
३. वही १२।१६७

दुर्दम मनुष्य जब आत्मा की किरणों को
उर अन्धकार में बन्दी कर लेता है
तब जीवन का जलयान रक्तसागर में
ले प्रतिहिंसा पतवार स्वार्थ खेता है ।
भौतिक बल की चरणों में धर देता है
मानव भविष्य को, वर्तमान को फुककर
कैसी कराहती मानवता बिचारी
वह नहीं देखती कहीं तक पल रुककर ।[१]

पुरातन पुरुष मनु के माध्यम से आधुनिक युग के लिए देखे गए इस स्वप्न का भावी समाधान श्रद्धा एवं स्वयं सृष्टिकर्ता ब्रह्मा द्वारा `भविष्य दर्शन` के रूप में कराया गया है । सुख-दु:ख का दुर्निवार चक्र तो अविरल रूप में सृष्टि के प्रारम्भ से चलता रहा है । पर इस द्वंद्व के मध्य अपराजेय भाव से मानव के आत्मतत्व अर्थात् मानवता की निर्विघ्न यात्रा का दर्शन कराना ही कवि का विशेष लक्ष्य है ——

मनु ने देखा` आत्मा के तट पर महाप्राण ।
है लगा हुआ मानवता का मेला महान् ।[२]

मनु द्वारा प्रदीप्त दीप आत्मा के आलोक का परिचायक है जिसकी प्रेरणा से मानवता की यह यात्रा अक्षुण्ण है ——

मनु ने दीप जलाया जो
वह बुझा नहीं जलता है
मर्त्य लोक यह, मृत्यु वहीं है
पर मानव चलता है ।[३]

---

१. ऋतंभरा १३।१७३
२. वही, १४।१८७
३. वही, १५।२०७

तारकवध[1]--

कथा का स्वरूप-- पुराण की कई नितान्त असम्बद्ध कथाओं में योग स्थापित करके कवि ने उसे एक काल्पनिक कथा के साथ सम्बद्ध कर दिया है। काल्पनिक कथा- वनदेवी और उसके पति के पारस्परिक प्रेम की है, जिसके अनुसार उन्हें एक मुनि के शाप के कारण अनेक जन्मों में (वृक्ष और लता, भौंरा-गुलाब, चातक एवं स्वाति, चकोर और शशि) वियुक्त रहना पड़ता है। अन्तत: मनुष्य योनि धारण करने पर वे अपनी साधना के द्वारा मुनि के शाप से मुक्ति प्राप्त करने का यत्न करते हैं। उनकी साधना का ही रूप तारक वध की कथा का कथन और श्रवण है। अत: तारक वध महाकाव्य का सम्पूर्ण वृत्त वनदेवी के पति द्वारा वर्णित है। ग्रन्थ के अन्त में तारकवध की कथा समाप्ति पर मुनि का अकस्मात् पुनरागमन होता है और उनके वरदान के द्वारा जन्म-जन्मान्तर के वियोगी आत्माओं का मिलन होता है।

असम्बद्ध पौराणिक कथाओं में पहला, आदि तत्व `रुद्र` से `सृष्टि` के सृजन एवं संहार का वृत्तान्त है। इसी तरह दूसरी कथा तारकवध के लिए पार्वती जन्म से लेकर शिव-पार्वती विवाह, कुमार जन्म, एवं तारक वध की है। रुद्र को `आदि तत्व` के रूप में स्वीकार करने के कारण उपर्युक्त कथा में सम्बन्ध है, किन्तु इस कथा के साथ कवि ने दशरथ पुत्री शान्ता तथा श्रृंगी-ऋषि की कथा को भी सम्बद्ध कर दिया है।

कथा का प्रारम्भ सृष्टि के आदि तत्व रुद्र के संहारक महानृत्य से होता है। सृष्टि के प्रारम्भ में कुछ भी न होने के कारण रुद्र द्वारा अपना ही संहार होता है। इसके पश्चात् ही उनके विश्राम का समय आता है। नृत्य के समय रुद्र की `महाशक्ति` अपने आदि तत्वाधार `रुद्र` में समाहित

---

१. लेखक-- श्री गिरिजादत्त शुक्ल `गिरीश` समय सन् १९५८ ई०

हो जाती है किन्तु अपने विश्रामावस्था में रुद्र अकेले हो जाते हैं अत: महाशक्ति का रुद्र से वियोग होता है। महाशक्ति का यह वियोग ही सृष्टि रचना की मूल प्रेरणा है। पति वियुक्ता महाशक्ति संसार के रूप में नित नवीन सृष्टि के द्वारा शृंगार करके अपने प्रियतम को रिझाने का यत्न करती है किन्तु नेति, नेतिवादी प्रियतम को कुछ भी पसन्द नहीं आता। पर एक समय ऐसा आता है कि रुद्र जागृत हो जाते हैं और महाशक्ति को रुद्र का सान्निध्य प्राप्त होता है। महाशक्ति का बार बार का यह संयोग और वियोग ही सृष्टि की रचना एवं संहार है जिसे विभिन्न कल्पों के रूप में व्यक्त किया गया है। उन अनन्त वियोग मूलक `कल्पों` में एक कल्प की कथा अथवा एक समय के वियोग का वर्णन कवि अपने ग्रन्थ में करता है।

कवि द्वारा प्रयुक्त ये विविध पौराणिक कथाएं अनेक पुराणों में प्राप्त होती हैं, पर पुराणों से गृहीत इन प्रसंगों के विकास एवं निरूपण में पर्याप्त नवीनता से काम लिया गया है। वस्तुत: कथा के स्थूल घटनात्मक रूप के साथ ही कथा का प्रतीकार्थ भी है और अपने दार्शनिक मतवाद की स्थापना के लिए कवि ने ग्रन्थ की सम्पूर्ण कथा का द्वयर्थक वर्णन किया है। प्रतीकात्मक अर्थ के साथ प्रत्येक घटना का निर्वाह कठिन होता है। प्रतीकात्मक अर्थ की अभिव्यंजना के साथ घटनाएं वैसे ही अल्प हो जाती हैं। अतएव घटनाओं के स्थान पर विचारों की स्थापना, भावों का चित्रण, प्रकृति चित्रण, अथवा प्रकृति के माध्यम से भावों या विचारों की अभिव्यक्ति ही अधिक प्राप्त होती है।[१] कथा के माध्यम से जिस प्रतीकात्मक अर्थ की मौलिक उद्भावना कवि

---

१. शान्ता के विदा प्रसंग पर शान्ता की माताओं के भावोद्गार का वर्णन, शान्ता के विदा के समय वशिष्ट मुनि द्वारा प्रकृति के विभिन्न स्थलों में शान्ता को देखने का उपदेश या नारद मुनि के मृत्युलोक में जाने पर मार्ग में सन्ध्या आदि से वार्तालाप, दानवराज तारक के कारावास में पड़ी शान्ता के भावों के चित्रण में इसी प्रकार के उदाहरण है जिस पर छायावादी कवियों की काव्यशैली का प्रभाव है।

ने की है उससे कथा के अभिप्राय में ही अन्तर उपस्थित नहीं होता वरन् पौराणिक कथाओं का स्वरूप भी परिवर्तित हो गया है।

कथा का आधार और कवि की मौलिक उद्भावना —

१. अधिकांश पुराणों में सृष्टि-वर्णन प्राप्त होता है और किंचित परिवर्तनों को छोड़ कर उनमें पर्याप्त साम्य भी है। अन्तर केवल सृष्टि के आदि तत्व के रूप में है। सृष्टि के आदि कारण परात्पर ब्रह्म के रूप में विविध पुराणों में विभिन्न देवों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) की स्थापना की गई है। विष्णुपुराण में ये परात्पर ब्रह्म महाविष्णु, श्रीमद्भागवत पुराण में महाविष्णु या श्रीकृष्ण, रामायण में श्रीराम, देवी भागवत में दुर्गा है तो शिव पुराण में उन्हें ही रुद्र अथवा शिव कहा गया है। शिव-पुराण में सृष्टि के आदि कारण के रूप में रुद्र अथवा शिव का अनेक स्थलों पर वर्णन प्राप्त होता है —

> एक एव तदा रुद्रो, न द्वितीयोऽस्ति कश्चन।
> संसृज्य विश्वभुवनं गोप्ता ते संचुकोच यः ।

आदि ब्रह्म के रूप में शिवपुराण की इस धारणा को ही ग्रन्थकार ने स्वीकार किया है। कवि ने उनके संहारक रूप को रुद्र एवं रचना-मूलक रूप को शिव कहा है। रुद्र एवम् शिव सम्बन्धी उक्त धारणा पुराणों में ही नहीं ऋग्वेद में भी प्राप्त होती है। ऋग्वेद में अधिकांश स्थलों पर रुद्र का उग्रदेवता के रूप में अभिवंदना की गई है, पर ऋग्वेद काल में ही रुद्र के इसी उग्र रूप के साथ ही शिव के संकट-शमनकर्ता रूप की धारणा भी प्राप्त होती है। " उन्हें अनेक स्थलों पर उपकारी कहा गया और बाद के वेदों में तुलनात्मक और अतिशय वाचक रूप केवल रुद्र के संदर्भ में मिलते हैं। इनका सरलता से आह्वान किया जा सकता है और यह कल्याणकारी (शिव) हैं। यह 'शिव ' उपाधि अथर्ववेद के समय तक किसी अन्य देवता की विशेषता

नहीं बन पाई थी ।[१] शिव पुराण तथा शिवमतावलम्बी अन्य पुराणों में शिव को कहीं रुद्र तथा कहीं शिव कहा है और उनके सृजन एवं संहार, दो विरोधी कार्यों का भी वर्णन दिया गया है । कवि ने शिव के दो भिन्न प्रवृत्तियों के लिए दो भिन्न नाम दिए हैं — रुद्र, जैसा कि शब्द से ध्वनित होता है, उग्रता बोधक होने के कारण 'संहार' और शिव 'सृजन' के आधार हैं ।

रुद्र एवं महाशक्ति के वियोग, संयोग से सृष्टि के रचना एवं संहार की धारणा सांख्य दर्शन के पुरुष और प्रकृति के सदृश प्रतीत होती है । पुराणों में भी ब्रह्म की इस महाशक्ति को ही वैष्णवी, राधा, सीता, भगवती कहा गया है और यही पार्वती हैं । आदि तत्व 'रुद्र' एवं 'महाशक्ति' (रुद्राणी) के ही सदृश शंकर एवं हिमवान् पुत्री पार्वती से सम्बद्ध शिवकथा का वर्णन अनेक पुराणों में गया है और शिव-पुराण में विस्तार से वर्णित है । तारकवध के लिए (कार्तिकेय जन्म के लिए) पार्वती का हिमवान की पुत्री के रूप में जन्म, उनकी तपस्या, कामदेव का विनाश , किन्तु उनकी ही प्रेरणा ग्रहण करके शिव द्वारा पार्वती की स्वीकृति और विवाह तक का वर्णन कवि ने शिव पुराण के अनुसार किया है जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता है ।

२. एक अन्य कथा ब्रह्मा एवं उनकी पुत्री शारदा तथा कार्तिकेय की है । देवी भागवत में कार्तिकेय की पत्नी देवसेना, षष्ठी अथवा शारदा का उल्लेख है जो बालदा भी है । यह देवी बालकों की रक्षिका हैं । मूल प्रकृति के छठें अंश से प्रकट होने के कारण यह षष्ठी देवी कहलाती हैं ।[२] स्वायंभु मनु के पुत्र प्रियव्रत के मृतक पुत्र की रक्षा के लिए प्रकट होती हैं । यहाँ वह अपना परिचय देती हुई कहती हैं —

---

१. वैदिक माइथालजी, ए०ए० मैकडोनेल (अनु० रामकुमार राय) पृ० १४२

२. देवी भागवत, नवम स्कन्ध, अध्याय १, पृ० ७८-७९

'पहले मैं देवताओं की सेना हुई थी और देवताओं के जय देने के कारण देवसेना हुई। मैं ब्रह्मा की मानसी कन्या हूं। जगत् पर शासन करने वाली मुझ देवी का नाम देवसेना है। विधाता ने मुझे उत्पन्न करके स्वामी कार्तिकेय को सौंप दिया।'[1] आगे चल कर इन्हें ही शारदा कहा है। प्रियव्रत उनकी वन्दना करते समय विभिन्न नामों से सम्बोधित करते हुए कहते हैं —

' माया, सिद्ध योगिनी सारा, शारदा, परा नाम से शोभा पाने वाली भगवती षष्ठी को बार बार नमस्कार है।'[2] इन देवी ने स्वयं सेना बनकर देवताओं का पक्ष ले युद्ध किया था। इनकी कृपा से देवता विजयी हो गए। अतएव इनका नाम 'देवसेना' पड़ गया। ब्रह्म वैवर्त पुराण में यह देवसेना प्रजापति की कन्या है। कार्तिकेय के अभिषेक के समय प्रजापति द्वारा अपनी कन्या देवसेना को अर्पित करने का उल्लेख है।[3]

कवि ने अपने ग्रंथ की भूमिका में शारदा के लिए कहा है —
'शान्ता शारदा की अनुकृति है और शारदा अजर, अमर एवं अजन्मा रुद्र की प्रिया शक्ति, महाशक्ति की अंशभूता वह शक्ति है जिसने कामदेव के बाण से सृष्टिकार की वेदना को मधुर बनाया।' पुराणों में भी शारदा को महाशक्ति की अंशभूता माना गया है। यही महाशक्ति विभिन्न रूप धारण करके प्रकट हुई हैं। वही सरस्वती, गायत्री, पार्वती, लक्ष्मी, राधा, दुर्गा आदि भी हैं। देवीभागवत पुराण में इन विभिन्न देवियों के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

कार्तिकेय जन्म का वर्णन पुराणों में भिन्न रूप में प्राप्त है। कवि ने इस प्रसंग के साथ सम्बद्ध चमत्कारिक घटनाओं को त्याग कर उनके स्वाभाविक जन्म का वर्णन किया है।

---

१. देवी भागवत, नवम् स्कंध, अध्याय ४६।२५-२६

२. मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठी देव्यै नमो नमः ।।
सारायै शारदायै च परादेव्यै नमो नमः ।। —देवीभागवत, नव०स्कंध,

३. ब्रह्मवैवर्त पुराण, गणपति खंड, अध्याय १६।१५-१६

शारदा एवं कार्तिकेय के उक्त पौराणिक आधार को ग्रहण करके कवि ने इस प्रसंग का विस्तार जिस रूप में किया है वह कवि की कल्पना है। कार्तिकेय का भ्रमवश शारदा को शापदेना, उनका पारस्परिक वियोग, उनका मर्त्यलोक में क्रमश: शान्ता एवं श्रृंगी ऋषि के रूप में अवतरित होना, मौलिक उद्भावना है।

३. कवि ने शान्ता का दशरथ पुत्री के रूप में उल्लेख किया है। महाभारत, रामायण एवं पुराणों में शान्ता एवं उनके पति श्रृंगी ऋषि का उल्लेख मिलता है, पर शान्ता का दशरथ पुत्री होने की बात विवादास्पद है।[१] किन्तु यदि शान्ता को दशरथ पुत्री मान भी लिया जाए तो भी शारदा का शान्ता के रूप में अवतरित होने का प्रसंग कवि की मौलिक उद्भावना है।

शान्ता एवं श्रृंगी ऋषि के विवाह प्रसंग का विस्तार भी कवि ने कल्पना के सहारे किया है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार शान्ता दशरथ के मित्र रोमपाद की पुत्री थी। एक बार रोमपाद के राज्य में अनावृष्टि होती है तो ऋषियों की सलाह पर रोमपाद द्वारा प्रेषित वेश्याएं छल से ऋष्यश्रृंग को बहकाकर उनके राज्य में ले आती हैं। ऋषि के आगमन से रोमपाद के राज्य में वृष्टि होती है और रोमपाद अपनी कन्या शान्ता का विवाह ऋष्यश्रृंग से कर देते हैं। दशरथ भी पुत्रेष्टि यज्ञ के अवसर पर श्रृंगी ऋषि एवं शान्ता को अपने राज्य में ले आते हैं। अत: शान्ता के दशरथ पुत्री होने के सम्बन्ध में विवाद है किन्तु विवाह प्रसंग का वर्णन सभी ग्रंथों में इसी रूप में प्राप्त है।

कवि ने उक्त कथा से संकेत ग्रहण करके एक ओर शान्ता को दशरथ पुत्री के रूप में स्वीकार किया दूसरी ओर रोमपाद के राज्य की अनावृष्टि की घटना को दशरथ के साथ ही संयुक्त कर दिया है। शान्ता को अपने पूर्व-

---

१. कामिल बुल्के की पुस्तक `रामकथा` में इस संबंध में विस्तार से विवेचन हुआ है।

जन्म के पति कार्तिकेय का दर्शन स्वप्न में मिल जाता है और वह केवल श्रृंगी ऋषि को वरण (क्योंकि कार्तिकेय ऋषि के रूप में अवतरित होते हैं) का संकल्प करती है। अपने पिता के राज्य में पड़े अकाल से मुक्ति दिलाने के लिए स्वयं शारदा भी ऋषि के आश्रम में जाती है और पूर्वजन्म के सम्बन्ध के कारण ऋषि का स्नेह प्राप्त करके उन्हें अयोध्या में लाती है।

शान्ता की कथा के साथ सीताहरण की भाँति शान्ताहरण का वृतान्त कवि की मौलिकता का परिचायक है। तारक द्वारा शान्ता हरण, कारावास में पड़ी शान्ता का तारक द्वारा हृदय परिवर्तन कराने का यत्न करना आदि प्रसंगों की योजना कवि ने सीताहरण के अनुकरण पर किया है।

४. तारक तथा तारक पुत्रों से सम्बन्धित कथा का पुष्ट पौराणिक आधार प्राप्त है।[१] पुराणों में तारक का बध कुमार कार्तिकेय द्वारा होता है, किन्तु कवि ने 'तारकबध' का वर्णन जिस रूप में किया -वह मौलिक है। यहाँ कार्तिकेय की प्रेरणा से श्रृंगी ऋषि एवं नारद अपने प्रेमसमर में तारक का बध नहीं करते हैं वरन् उसका हृदय परिवर्तित करते हैं। अत: तारक की मृत्यु प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत है। कवि ने भूमिका में इस पर प्रकाश डालते हुए कहा है —' केन्द्रानुसरण प्रवृत्ति का प्रभाव पड़ने से उसमें अपनी नीति के प्रति सन्देह उत्पन्न हो, क्रमश: आत्मग्लानि का संचार हो और द्वैतभावना को त्याग करके अद्वैत साधना की अंगीकृति की ओर बढ़े- एक प्रकार का मरण यह भी है। तारकासुर का मरण भी इसी प्रकार का है।'

यद्यपि कवि ने ऋषि को कार्तिकेय का अवतार माना है अत: कार्तिकेय द्वारा तारकबध (यहाँ हृदय परिवर्तन) की पौराणिक प्रसंग को भी घटित माना जा सकता है पर यह कवि की कल्पना मात्र है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि कार्तिकेय का ऋषि रूप में अवतरित होने की घटना का कोई

---

१. इस पर 'पार्वती' के कथा वर्णन के समय प्रकाश डाला गया है।

पौराणिकआधार नहीं प्राप्त है। तारक,पुत्र तारकाक्ष का पिता-विद्रोह, तारक द्वारा पुत्र तथा पत्नी को बन्दी बनाना— आदि घटनाएं भी काल्पनिक हैं। वस्तुत: अपने दार्शनिक विचारों की स्थापना के लिए कवि इन प्रसंगों की योजना करता है।

कथा की प्रतीकात्मक योजना— कवि ने ग्रंथ की भूमिका में देवत्व तथा दानवत्व की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा है —`जीवन में दानवत्व का क्या स्थान है ? वह अपनी घृणा, हमारे क्रोध का पात्र है, अथवा हमारी करुणा का, दूसरे हमारे प्रेम का ? वह विकृति हिंसक कैसे बना। विकृत हिंसा से उसकी तथा उसके बन्धन में पड़ने वाले लोगों की मुक्ति कैसे होगी ? इस प्रश्न का जो उत्तर 'तारक-बध' में दिया गया है वह यह है कि दानव-मानव देव की आन्तरिक एकता के कारण दानव मूलत: हमारी करुणा, हमारी कृतज्ञता, के ही अधिकारी होने योग्य है, उसे हमारा प्रेम दान ही मिलना चाहिए।`

कवि द्वारा विवेचित यह दानवत्व ही प्रकारान्तर से सृष्टि में व्याप्त असत् अर्थात् अशिव का द्योतक भी है। कवि के मतानुसार एक ही रुद्र तत्व से उत्पन्न देव, दानव अथवा देवत्व तथा दानवत्व में तात्विक एकता है। इस `अभिन्नता` की स्थापना के लिए कवि ने सृष्टि रचना के विभिन्न कल्पों में से एक कल्प के आदि-अन्त के सम्पूर्ण वृत्त को प्रस्तुत किया है। अत: कवि द्वारा वर्णित में विविध प्रसंग एक ओर देव-दानव के पारस्परिक बाह्य संघर्ष को व्यक्त करते हैं, दूसरी ओर उनके मूल में व्याप्त दानवत्व एवं देवत्व के अभिन्नता की `प्रतीकात्मक-अभिव्यंजना` हुई है।

कवि ने ब्रह्मादियों की सदृश सृष्टि रचना का निरूपण कर दानवत्व की स्थिति पर प्रकाश डाला है। कवि के मतानुसार एक ही तत्व रुद्र (अथवा ब्रह्म से) से सृष्टि का विकास अथवा `केन्द्रप्रसरण` (कवि द्वारा प्रयुक्त शब्द) होता है, जिसे कवि ने मार्क्सवादियों की तरह `प्रगति`

कहा है। केन्द्रापसरण में केन्द्र से वियुक्त होकर निरन्तर दूर होते जाना है अत: वह स्वभावत: अधोमुखी है। यह प्रसरण `प्रगति` की चरमसीमा पर पहुँच कर अपने ही विरोधी तत्व `क्रान्ति` को जन्म देती है। यह क्रान्ति वृत्त की ओर उसके तत्वों का केन्द्रानुसरण (वृत्त में उनके तत्वों का समाहित होना) है अत: स्वभावत: यह `ऊर्ध्वमुखी` है। इसी को इस रूप में व्यक्त किया गया है कि `रुद्र` के ताण्डव नृत्य के पश्चात् सृजन का आरम्भ होता है — किन्तु एक सीमा पर आकर वे पुन: ताण्डव नृत्य द्वारा सृष्टि के विभिन्न तत्वों को अपने में समाहित कर लेते हैं। अत: कवि की व्याख्या के अनुसार संहार से सृजन की प्रेरणा मिलती है, अत: रुद्र ही प्रगति हैं। सृजन` क्रान्ति अथवा अविकास का द्योतक है, अत: शिव क्रान्ति हैं। यह क्रान्ति प्रगति शिव की दो स्थितियां हैं। प्रगति के लिए क्रान्ति की सत्ता अनिवार्य है और क्रान्ति भी अन्तत: प्रगति पर निर्भर करती है। इनका परस्पर अन्योन्याश्रित भाव ही सृष्टि का सन्तुलन है, सामंजस्य है, सुख है।

सृष्टि के सृजन एवं संहार के क्रान्ति-प्रगति मूलक इस धारणा के बीच ही कवि ने दानवत्व की स्थिति पर प्रकाश डाला है। सृष्टि रचना के समय ब्रह्मा स्वर्गलोक, भूलोक एवं मृत्युलोक का आधिपत्य क्रमश: देव, मानव एवं दानव को देते हैं। रुद्र विश्राम करने के पूर्व अपने संहार का अधिकार दानव को दे जाते हैं और उन्हें `प्रकृत हिंसा`[1] का अधिकार प्रदान करते हैं। अत: दानव `प्रकृत हिंसा` द्वारा विरोधी तत्वों का सृजन कर निरन्तर प्रगति की प्रेरणा देते हैं —

---

१. कवि ने हिंसा एवं अहिंसा के चारभेद किए हैं — १ प्रकृत हिंसा, प्रकृत अहिंसा, २. विकृत हिंसा और विकृत अहिंसा। `स्वत्व` के लिए की गई हिंसा प्रकृत है, स्वार्थ के लिए की गई हिंसा विकृत है, त्याग और सेवा पर आधारित अहिंसा ही प्रकृत और छल-छद्म और कायरता पर आधारित अहिंसा विकृत है।

दानवत्व से प्राण मिला जगती को गति का ।
उसने ही उत्फुल्ल किया साधक की मन को ।[१]

अतः `प्रगति` के लिए दानवत्व तथा उनकी `प्रकृत-हिंसा` अनिवार्य है किन्तु ये दानव जब प्रकृत हिंसा को भूलकर `विकृत हिंसा` के अनुयायी हो जाते हैं तब वे निःसन्देह त्याज्य हैं। कवि ने जिस कल्प का वर्णन किया है उसमें तारक ही उस विकृत हिंसा का प्रतीक है जो अपने स्वाभाविक रूप को भूलकर अपने स्वार्थ दम्भ के लिए हिंसात्मक साधन का प्रयोग करता है। उसके द्वारा देवताओं को दिया गया त्राण, शान्ताहरण आदि घटनाएं विकृत हिंसा की प्रतीक हैं। अतः इस दानवत्व के विनाश की भी आवश्यकता है जिसके लिए कवि गांधी के अहिंसात्मक साधनों को विशेष उपयुक्त सिद्ध करता है।

सृष्टि रचना में दानव की विशेष स्थिति के साथ ही कवि केन्द्राप्रसरण एवं केन्द्रानुसरण की प्रवृत्ति सूक्ष्म रूप में ग्रन्थ में वर्णित घटना पर घटित होती है —

रुद्र के ताण्डव नृत्य एवं महाशक्ति के वियोग से ही सृष्टि की प्रगति अथवा केन्द्राप्रसरण का प्रारम्भ होता है क्योंकि निरन्तर विकास करते हुए अपने केन्द्र ब्रह्म से निरन्तर दूर होते जाना है। महाशक्ति का कामदेव की शरणग्रहण करना, कामदेव संहरण, ब्रह्मा द्वारा सृष्टि रचना, कार्तिकेय द्वारा शारदा को शाप, अतः उनका मानवलोक से होकर मर्त्यलोक के कारावास तक पहुंचना केन्द्राप्रसरण का ही प्रतीक है। केन्द्राप्रसरण के कारण ही `प्रकृत हिंसा` का अधिकारी तारक `विकृत हिंसा` का आश्रय ग्रहण करता है। कामदेव का तारक के कारावास में बन्दी होना केन्द्राप्रसरण की चरमसीमा है। यहां से ही केन्द्रानुसरण का प्रारम्भ होता है। कामदेव का अनुताप केन्द्रानुसरण

---

१. तारकवध, पृ० १४

प्रवृत्ति की प्रथम गति है। पुत्री वियोग से दुखित ब्रह्मा का नारद को मर्त्यलोक में भेजना, कामदेव के प्रयास से शंकर का पार्वती को स्वीकार करना, कार्तिकेय जन्म, कार्तिकेय प्रेरित भृंगी ऋषि एवं नारद का प्रेमसमर , तारक का पराजय स्वीकार करना, केन्द्रानुसरण की चरमसीमा है। अत: कल्पान्त आता है और कवि ग्रंथ के अन्त में रुद्र के तांडव नृत्य एवं महाप्रलय का वर्णन करके ग्रन्थ की कथा के साथ ही दार्शनिक विचारों की प्रतीकात्मक योजना को पूर्णता प्रदान करता है।

<u>सामयिकता : गांधीवाद का प्रभाव</u>— सृष्टि के तात्त्विक विवेचन के आधार पर एक ओर देवत्व एवं दानवत्व की अनिवार्यता एकता का विवेचन किया है वहां विकृत हिंसा अथवा दानवत्व के अहितकारी तत्वों के विनाश के लिए कवि ने आधुनिक युग के गांधी के अहिंसात्मक साधनों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है —

दानवत्व का वेग अधिक दानव से जानो।
दानवत्व का पौत्र अधिक दानव से मानो।
दानवत्व-रण मरण अधिक भयकारक होगा।
दानवत्व-संहरण अधिक भयकारक होगा।[१]

अत: उसके उपचार के सम्बन्ध में कहते हैं —

इस प्रदाह की एक मात्रहारिणी, उपकारिणी
केवल करुणा देवि सत्व दृग-जल-उदगारिणी
गंगा की ही भांति जगत-जीवन-मनहारिणी।
मरुप्रदेश में नव हरीतिमा इस संचारिणी।[२]

---

१. तारकवध, १३।३६१
२. वही, १३।३६२

शान्त अहिंसा रण-शैली से हो भाई कार्य हमारा ।
रक्तपात की बात करें क्यों । पंथ त्याज्य यह सारा । १

पौराणिक कथा एवं देवत्व और दानवत्व के तात्विकस्वरूप के साथ गांधी के अहिंसावाद को भी संयुक्त करके नहीं देखा गया है बल्कि स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ गांधी के अहिंसात्मक आन्दोलनों के कार्य सरणियों की झांकी भी उसी रूप में मिल जाती है । उस युग का दानवत्व समयान्तर से इस युग की विषमता है । भारत के विशेष संदर्भ में इस दानवत्व का रूप तत्कालीन भारत की परतंत्रता, विदेशी शासन का अत्याचार था । तारक के दानवत्व के तात्विक अर्थ को छोड़ भी दिया जाए तो विकृत अहिंसा के अनुयायी दानवत्व की आश्रयस्थली तारकराज्य का वर्णन आधुनिक युग में पूंजीवाद पर आधारित राज्य के रूप में किया गया है जहां साम्राज्यवाद एवं यंत्रवाद से उत्पन्न कुरीतियों का आगमन स्वत: हो जाता है । वही इस युग का ब्रिटेन भी है । पूंजीवाद अथवा साम्राज्यवाद के विरुद्ध गांधीवाद के समानान्तर विकसित होने वाली हिंसात्मक साम्यवादी मार्ग का प्रतिनिधित्व तारकाक्ष करता है, जिसे पिता का बन्दी बनना पड़ता है । गांधी के अहिंसात्मक समर के प्रतिनिधि श्रृंगी ऋषि एवं नारद हैं । जिन मार्गों से गांधी के अहिंसात्मक-समर को गुजरना पड़ा था उसी की स्पष्ट छाया यहां देवों एवं दानवों के संघर्ष के रूप में देखी जा सकती है । बारहवें सर्ग में अयोध्याराज्य की लोकसभा (नाम भी आधुनिक है) में ~~तारक के राज्य में~~ दशरथ, सुमंत्र एवं श्रृंगी ऋषि के पारस्परिक विचार विनिमय के पश्चात् दशरथ एवं सुमंत्र के उग्रतावादी नीति के विरुद्ध श्रृंगी ऋषि का अहिंसात्मक युद्ध का निर्णय लेना,-स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान गर्मदल के नेताओं के विरोध के मध्य गांधी के अहिंसात्मक समर के निर्णय का स्मरण कराते हैं । गांधी के असहयोग आन्दोलन की स्पष्ट झलक उस समय दिखाई पड़ती है जबकि शोणित-पुर की जनता विद्रोह कर उठती है —

" भाई का संहार अकारण कर न सकेंगे ।" [१]

अपने ही कर्मचारियों द्वारा शासन के प्रति विद्रोह के अनेक दृश्य ब्रिटिश सरकार को भी देखना पड़ा था ।

उर्मिला[२] —

ग्रन्थ-प्रणयन की प्रेरणा के रूप में द्विवेदी जी का उक्त लेख ही माना जा सकता है जिसमें उन्होंने राम साहित्य की उपेक्षिता `उर्मिला` की ओर समसामयिक कवियों का ध्यान आकर्षित किया था । कवि ने `उर्मिला` को स्वीकार करके स्वतंत्र ग्रन्थ की रचना अवश्य की है किन्तु कथा के स्वरूप की दृष्टि से यह द्विवेदी युग के प्रबन्ध रचनाओं से कई अर्थों में भिन्न है । कथा के सम्बन्ध में संकेत करते समय स्वयं कवि ने कहा है —

" मेरी इस उर्मिला में पाठकों को रामायणी कथा नहीं मिलेगी । रामायणी कथा से तात्पर्य है, क्रम से राम लक्ष्मण जन्म से लगातार रावण विजय अयोध्या आगमन तक की घटनाओं का वर्णन है । ...... इस ग्रन्थ को मैंने विशेषकर मन:स्तर पर होने वाली क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का दर्पण बनाने का प्रयास किया है ।" [३]

अत: ग्रन्थ में कथा की जो क्षीण धारा प्रवहमान है उसके लिए किसी ग्रन्थ विशेष को उपजीव्य बनाकर कथा का विकास नहीं किया गया है ।

---

१. तारकवध, ११।५६६

२. श्री बालकृष्ण शर्मा `नवीन` समय १९५७ ई०

३. कवि की भूमिका से ।

यदि सरसरी दृष्टि से देखा जाए तो कथा मानस की भांति है, किन्तु वाल्मीकि रामायण की तरह भी हो सकती है। क्योंकि इन प्रसंगों को ग्रहण करते समय भारतीय वांगमय की रामकथा के विविध ग्रन्थों में किसी का भी आधार कवि ने ग्रहण किया हो,[१] पर उनके द्वारा वर्णित प्रसंग इतने प्रचलित और सर्वमान्य हैं कि इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। कवि भवभूति के 'उत्तररामचरित'[२] की भांति अपने ग्रन्थ में भी उर्मिला द्वारा लक्ष्मण का 'मृगया प्रेमी' के रूप में चित्र खिंचवा कर भावी बनवास की घटना का संकेत दिया है, किन्तु इस प्रकार की परम्परा की पुनर्स्थापना गुप्त जी के 'साकेत' में भी हुई है। इस ग्रन्थ में षट्ऋतु के आधार पर उर्मिला के विरह का वर्णन किया गया है। इस तरह का विरह वर्णन ' ऋतु संहार ' में भी प्राप्त होता है और षट्ऋतु पर आधारित विरह वर्णन की विस्तृत परम्परा संस्कृत साहित्य तथा हिन्दी साहित्य में प्राप्त है। तात्पर्य यह है कि इस काव्य ग्रन्थ के मूल स्रोत के रूप में निश्चितत: कुछ नहीं कहा जा सकता है। वस्तुत: यहां कथा नहीं, भावनाएं हैं, अन्तर्नुभूतियां हैं— जो कवि की मौलिक उद्भावना है।

वस्तुत: कवि का उद्देश्य कथा कहना नहीं है। घटनाओं के स्थान पर पारिवारिक सम्बन्धों की मधुरतम फांकी, विविध पात्रों के अन्तर्मन का चित्रण, विरह वर्णन, आर्य धर्म निरूपण, एवं राम, लक्ष्मण, सीता, उर्मिला, मां सुमित्रा एवं जनक तथा जनक पत्नी सुनयना के दैनन्दिन के व्यवहारों में से कुछ चुन कर उनकी भावपूर्ण फांकी प्रस्तुत की है।

प्रथम सर्ग में जनकपुरी के वर्णन से कथा प्रारम्भ होती है और सीता उर्मिला के बाल्यकाल के वर्णन के पश्चात् ही जनक अपनी कन्याओं के विवाह की चिन्ता करते हैं। उसके पश्चात् ही विवाह से सम्बन्धित प्रसंगों को छोड़कर कवि द्वितीय सर्ग में एकाएक अयोध्या में उर्मिला एवं सीता को पुत्रवधु के रूप में दिखा

---

१. बालकृष्ण शर्मा नवीन 'व्यक्ति और काव्य' के लेखक ने डा० लक्ष्मीनारायण दुबे ने उर्मिला के विविध कथा-स्रोतों के रूप में उत्तररामचरित, ऋतुसंहार, रघुवंश का उल्लेख किया है।

२. 'उत्तररामचरित नाटक' के प्रथम अंक में वर्णन है कि चित्रपट देखते देखते सीता के

(कृपया अगले पृष्ठ पर देखें

देता है । उर्मिला-सीता बधुओं, देवर लक्ष्मण, सास सुमित्रा और नन्द शान्ता को लेकर अयोध्या के राजप्रसाद में कवि ने गार्हस्थिक चित्र खींचने का यत्न किया है । यहीं उर्मिला द्वारा चित्र- अंकन का प्रसंग भी आता है । 'मुकलित कुसुम दर्शन ' के अन्तर्गत उर्मिला-लक्ष्मण के भावों का वर्णन है । इसके पश्चात् ही कैकेयी द्वारा वर याचना के प्रसंग को छोड़कर कवि तृतीय सर्ग में सहसा राम लक्ष्मण के वनगमन प्रसंग की ओर संकेत कर देता है । यहां भी घटना के स्थान पर भावों का ही चित्रण है । सम्पूर्ण तृतीय सर्ग में उर्मिला एवं लक्ष्मण के विछोह जन्य दु:ख तथा स्नेह एवं कर्तव्य के कठोर बन्धन को लेकर उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द का अत्यन्त भावुक-वर्णन हुआ है । अन्त में राम लक्ष्मण एवं सीता के वन प्रस्थान का संकेत मात्र ही कर दिया गया है ।

चतुर्थ एवं पंचम सर्ग को कवि ने विरहिणी, दु:खकातर उर्मिला के लिए समर्पित किया है।अत: दोनों ही सर्गों में किसी भी घटना का उल्लेख नहीं है । चतुर्थ सर्ग में कवि विश्वमात्र में व्याप्त दु:ख के निरन्तर स्वरूप की व्याख्या प्रस्तुत करता है । पंचम सर्ग में उर्मिला का विरह वर्णन है । षष्ट सर्ग में लक्ष्मण एवं उर्मिला के पुनर्मिलन का वर्णन हुआ है, अत: कवि अपनी लेखनी लंका की ओर मोड़ता है । वनवास की अवधि पूर्ण होने पर रावणीय विभीषिका की समाप्ति का संकेत मात्र कर दिया गया है । विभीषण के राज्याभिषेक के पश्चात् पुष्पक विमान में बैठे हुए प्रत्यागत राम, सीता, लक्ष्मण का चित्र प्रस्तुत करके कवि एक दो पंक्तियों में उर्मिला एवं लक्ष्मण के मिलन की ओर संकेत कर देता है ।

---

१. पिछले पृष्ठ का शेष—

मन में तपोवन दर्शन की इच्छा हो आती है । उनकी यह इच्छा ही उनके भावी वनवास की घटना का संकेत देती है ।

मन ही मन थे लखन निछावर, एक उर्मिला की टक पे ।
और उर्मिला न्योछावर थी उनकी एक चरण नख पे ।[१]

सम्पूर्ण ग्रन्थ में उर्मिला की महत्ता का प्रतिपादन कवि का लक्ष्य था । साकेतकार के मन में भी यही लक्ष्य था किन्तु उर्मिला को महत्व देने पर भी वह राम के वृत्त को त्याग नहीं पाया था । पर कवि की विशेष दृष्टि उर्मिला माता की कथा कहने पर है अत: राम के वृत्त के प्रति कवि को विशेष मोह नहीं है । पर संस्कृत साहित्य ही क्या सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में उर्मिला से सम्बन्धित वृत्त का अभाव सा है । अत: कवि को घटना त्याग कर अधिक से अधिक अन्तर्मुखी होना पड़ा है । लक्ष्मण उर्मिला के प्रेम के विविध प्रसंगों, मन:स्थितियों, विरह मिलन के दु:ख एवं सुखात्मक अनुभूतियों, का मनोवैज्ञानिक चित्रण ही ग्रन्थ की कथा-वस्तु है ।

कथागत नवीनताएं—

कवि ने जहां कथा प्रसंगों को स्वीकार किया है वहां कुछ मौलिक उद्भावनाएं भी की हैं —

१. प्रथम सर्ग का सम्पूर्ण वृत्त कवि की कल्पना है । जनक एवं सुनयना के दाम्पत्य भाव का चित्र, सीता और उर्मिला की बाल्यावस्था का वर्णन, पुष्पचयन, दोनों बहनों का परस्पर एक दूसरे को कथा सुनाना, मां के समक्ष बालहठ आदि का वर्णन कवि की मौलिक उद्भावना है । उर्मिला द्वारा वर्णित कपोत-कपोती की कथा एवं सीता द्वारा वर्णित गान्धार राज की कथा कवि की कल्पना है ।

२. धनुर्यज्ञ प्रसंग में कवि परम्परागत रूप को त्याग कर जनक के नवीन

---

१. उर्मिला, पृ० ६१६

अभिप्राय का वर्णन करता है कि वह इनके माध्यम से तत्कालीन आर्यवंशी किशोरों को परखना चाहते थे ।

३. द्वितीय सर्ग में अयोध्या के नागरिक जीवन का चित्रप्रस्तुत करने में नवीनता का परिचय दिया है । सरयू तट पर अयोध्या की नारियां उर्मिला , सीता के सौन्दर्य एवं गुणों की प्रशंसा करती हैं । उनके वार्तालाप के माध्यम से कवि ने अप्रत्यक्ष रूप में उर्मिला के महत्व की स्थापना की है ।

४. उर्मिला द्वारा मृगया प्रेमी लक्ष्मण का चित्र खींचना एवं उसके प्रतीकार्य की योजना नवीन प्रसंग है । यहां कवि अपनी दार्शनिक विचारावली भी व्यक्त करता है ।

५. राम की बहन शान्ता का उल्लेख मानस में प्राप्त नहीं है । वाल्मीकि रामायण से इस प्रसंग का संकेत ग्रहण करके कवि ने इस घटना के माध्यम से ननद-भावज के सम्बन्धों के रूप में मौलिक विस्तार किया है ।

६. विन्ध्याचल-पर्यटन की योजना नवीन प्रसंग है ।

७. उर्मिला की ही भांति कवि ने सुमित्रा का भी विशेष चित्र खींचा है और अन्य माताओं से इन्हें अधिक महत्व प्रदान किया गया है । वस्तुत: अयोध्या के पारिवारिक जीवन का चित्रण करते समय अथवा वनवास प्रसंग में कवि ने मां सुमित्रा को ही उपस्थित किया है, मां सुमित्रा की ही विशेष प्रशंसा की है । कौशल्या एवं कैकेयी यहां एक तरह से उपेक्षित रहती हैं ।

८. वनवास प्रसंग को कवि ने नवीन अर्थ प्रदान किया है । यहां देवताओं की कार्यसिद्धि, मन्थरा की कुबुद्धि, का संकेत नहीं है । कैकेयी द्वारा वर याचना का संकेत है किन्तु उसमें राष्ट्रीय उद्देश्य की योजना करके इस प्रसंग को नवीन अर्थ प्रदान किया गया है । दक्षिण-उत्तर के एकीकरण के राष्ट्रीय उद्देश्य को रामवन यात्रा के साथ संयुक्त करके देखा गया है । अत: रावण यहां

अनार्य वर्ग का और राम-रावण युद्ध आर्य-अनार्य संस्कृतियों के संघर्ष का प्रतीक है।

१०. लंका विजयोपरान्त विभीषण के राज्याभिषेक का वर्णन रामकथा के प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है, पर ग्रन्थ के अन्तिम सर्ग में विभीषण के अभिषेक के अवसर पर राजसभा का आयोजन, सभा में राम द्वारा भारतीय संस्कृति के विविध तत्वों का उद्घाटन करना आदि प्रसंग मौलिक हैं। इस प्रसंग में राम द्वारा की गई 'आर्यधर्म' की घोषणा उस युग के गांधीवादी विचारधारा को प्रतिबिम्बित करता है। राम को दु:ख है कि वह रावण का हृदय परिवर्तन न कर सके।

यही दु:ख है कि मैं वीरवर
रावण हृदय न जीत सका।
इतना भर ही नहीं रह गया
दशरथ नन्दन के बस का।[1]

इतना ही नहीं आधुनिक युग में पश्चिमी सभ्यता—भौतिकता एवं अर्थवाद के विरुद्ध गांधी के आध्यात्मिक सन्देश को कवि ने राम के माध्यम से व्यक्त किया है —

अर्थ प्रगति का चिह्न नहीं है
यह है प्रगतिवाद का फेन।[2]

विज्ञानवाद का विरोध, भौतिक सुखों के विरुद्ध तपस्या, त्याग एवं सेवा भाव आदि आत्मिक गुणों को ही आर्य संस्कृति का मूल मंत्र माना है। गांधी की भी यही धारणा थी।

---

१. उर्मिला, ६।५४२
२. वही, पृ० ५५२

विविध पौराणिक पात्र : द्वंद्वशील नवीन मानव --

आधुनिक युग में पौराणिक चरित्रों के निरूपण की दृष्टि से 'ईश्वरत्व' से 'मानवीयता' की ओर अवरोहण की एक प्रवृत्ति का विवेचन पूर्ववर्ती अध्यायों में किया गया है किन्तु देवत्व के पद से विस्थापित ये पौराणिक पात्र अपने मानवेतर कृत्यों के कारण महान् हैं। देवता न होने हुए भी देवतुल्य हैं। किन्तु पौराणिक चरित्र के उस नवीन स्थापन से भी एक पग आगे 'महामानव' से 'सामान्यमानव' की ओर अवरोहण की एक प्रवृत्ति प्राप्त होती है जिसके मूल में युगीन प्रवृत्तियों के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

इस अध्याय के आरम्भ में ही छायावाद के भावाभिव्यंजक, अनुभूतिपरक प्रतीकात्मक काव्याभिव्यक्ति एवं मनोविज्ञान के प्रभाव की ओर संकेत किया गया है। गत युग में हिन्दी काव्य जगत में मानवतावादी दृष्टि के विकास के कारण विभिन्न पौराणिक पात्र' मानव' रूप में देखे गए किन्तु छायावाद के प्रभाव के कारण जिस व्यक्तिवादी दृष्टि का विकास होता है, उसके परिणामस्वरूप वे स्वतंत्र व्यक्तित्व प्राप्त 'व्यक्ति' हैं-- जिसकी व्यक्तिगत अनुभूतियां, भावनाएं एवं संवेदनाएं भी हैं। अत: एक ओर उक्त काव्य प्रवृत्ति से प्रेरित हिन्दी काव्य क्षेत्र में व्यक्तिगत भावों (सुख, दु:ख, प्रेम, वासना आदि) की विशेष अभिव्यक्ति होने लगी तो मनोविज्ञान का सम्बन्ध भी मानव मन से था। मनोविज्ञान ने स्पष्टत: मानव के बाह्य क्रिया कलाप के स्थान पर अन्तर्मन के विभिन्न स्तरों की स्थापना करके उसके उद्घाटन को अपना लक्ष्य बनाया था। अत: जहां द्विवेदी युग में बाह्य लौकिक-सामाजिक आदर्श-संयुक्त मानवीय चरित्र की कल्पना की गई, जो अपने आदर्शात्मक कृत्यों के कारण महान् थे, वहाँ छायावाद की व्यक्तिवादी दृष्टि एवं मनोविज्ञान के प्रभाव के कारणवैसब, सामान्य एवं प्राणवान है।

अस्तु, `राम की शक्तिपूजा`, `पंचवटी` प्रसंग से लेकर उर्वशी तक के विविध पौराणिक प्रबन्धकाव्यों में चरित्रों के अन्तर्मुखी वृत्तियों के उद्घाटन की विशेष प्रवृत्ति प्राप्त होती है। साथ ही मनोविज्ञान के प्रेरणास्वरूप मन की वृत्तियों के विशेष वर्णन के कारण पौराणिक पात्र मानसिक वृत्तियों के शाश्वत प्रतीक के रूप में भी प्रस्तुत किए गए हैं अत: विभिन्न पौराणिक चरित्रों की प्रतीकात्मक योजना अन्य विशेषता है।

मानव वृत्तियों की इस धारणा के कारण सहज मानवीय धरातल पर पौराणिक पात्रों के स्थापना के रूप में `राम की शक्तिपूजा' के राम सामान्य व्यक्ति प्रतीत होते हैं। तुलसी के पुरुषोत्तम तथा अपनी शक्ति से एक बार सागर को भी झुका देने वाले राम यहाँ रावण की दुर्जेयता से आतंकित हो उठते हैं —

स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर फिर संशय,
रह रह कर जन जीवन में रावण जय भय,
जो नहीं हुआ आजतक हृदय रिपुदम्य-श्रान्त—
एक भी, अयुत-लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार बार
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार हार,[१]

रावण का अट्टहास बार-बार राम को कम्पित कर देता है —

फिर सुना — हंस रहा अट्टहास रावण खल-खल,
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता दल।[२]

राम के मन का अन्तर्द्वन्द, मानवीयता उस समय और भी अधिक व्यक्त होती है जब वह सामान्य संवेदनशील प्राणी के सदृश कह उठते हैं —

---

१. रामकी शक्तिपूजा, अपरा, पृ० ३५

२. वही, पृ० ३६

धिक जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।
जानकी ! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका।[१]

परम्परागत रूप में राम के चरणों पर निर्द्वन्द्व हो समर्पित करने वाले उद्धत, क्रोधी लक्ष्मण भी `उर्मिला` महाकाव्य में दु:ख-सुख, प्रेम-कर्त्तव्य के द्वन्द्व से उद्वेलित व्यक्ति के रूप में चित्रित हैं। यहाँ सामान्य मानव के सदृश लक्ष्मण के पास भी दु:ख-सुख से प्रभावित होने वाला मन है, यौवन का आवेग तथा प्रेम की आतुरता है, किन्तु दु:ख से अतिक्रमण करने का प्रयत्न भी। रामायण तथा ~~प्रेम की अस्तु~~ मानस के लक्ष्मण का व्यक्तित्व केवल एक सीधी रेखा से निर्मित है — वह है इनका अनन्य भ्रातृ-प्रेम! अत: चाहे यह राम-चरित के गायक कवियों का पक्षपात ही हो किन्तु राम विहीन लक्ष्मण के व्यक्तित्व की कल्पना ही असम्भव है। बन्धु के लिए वह एक बार पिता बध के लिए भी तत्पर हो जाते हैं,[२] भाई के लिए वह परशुराम से भी भिड़ जाते हैं, बन्धु के नाते १४ वर्षों का बनवास और पत्नी विछोह का दु:ख सहते हैं तथा राम के नाते ही मेघनाथ के शक्तिबाण के लक्ष्य बनते हैं। अत: राम-लक्ष्मण के सम्बन्धों से व्यक्त लक्ष्मण का व्यक्तित्व अपने पत्नी के निकट भी क्या हो सकता है — इस ओर कवियों का ध्यान नहीं गया? साकेतकार ने जहाँ उर्मिला-रानी के दु:खों को अपनी लेखनी का विषय बनाया वहाँ सर्वप्रथम रामबन्धु लक्ष्मण को भी उर्मिला-पति के रूप में प्रस्तुत किया है। `उर्मिला` में लक्ष्मण उर्मिला पति के रूप में — एक यौवन सम्पन्न युवक के मन की अदम्य प्रेमानुभूतियों के अभि-व्यक्ति के कारण — आधुनिक प्रेमी प्रतीत होते हैं। उर्मिला के लक्ष्मण एक सामान्य मानव के सदृश अपने प्रेमोद्गार व्यक्त करते हैं, साथ ही उच्च प्रेम की

---

१. राम की शक्तिपूजा, पृ० ४४
२. बाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, ३१, श्लोक २१

व्याख्या करते हैं। अपने किंचितमांसल आधार के बावजूद भी वह आदर्श प्रेम है किन्तु उन समस्त वर्णनों में लक्ष्मण रामचरित मानस तथा कुछ अंशों में साकेत की गरिमा से भी स्खलित आधुनिक उपन्यासों के नायक प्रतीत होते हैं —

'उर्मिले' यों अलसाये नैन
सुलक्ष्मण बोल उठे तत्काल
'उर्मिले' तुम भी मेरा धनुष
तुम्हीं हो मेरी असि विकराल।[1]

< < < < < <

अरी रानी क्यों ललचा रही
लाज से क्यों ढाती हो रार
तनिक मुख तो कुछ ऊंचा करो
रंच कर लूं नैनों को प्यार।[2]

लक्ष्मण के स्नेह में इतनी तरलता है तो दुःखानुभूति की स्थिति भी स्वाभाविक है। रामायण के लक्ष्मण के समक्ष केवल कर्तव्य है --कोई द्वन्द्व नहीं। पत्नी वियोगजन्य दुःख की ओर इन कवियों का ध्यान ही नहीं गया था। किन्तु आधुनिक कवि ने जहां मानव मन के विभिन्न आन्तरिक भावों का चित्रण किया है वहां बाहर से कर्तव्य-कठोर और पुरुष- मन के अन्दर फांक कर आन्तरिक उद्वेलन का चित्र न प्रस्तुत करे यह कैसे सम्भव था ? साकेत के लक्ष्मण दुःखी हैं,(किन्तु कातर नहीं) किन्तु तब भी वह कठोर होकर कहते हैं —

वन में तनिक तपस्या करके
बनने दो मुझको निज योग्य,

---

१. उर्मिला, पृ० १३०
२. वही, पृ० १४४

भाभी की भगिनी, तुम मेरे
अर्थ नहीं केवल उपभोग्य ।[१]

किन्तु `उर्मिला` के दुःख कातर, दुःख विह्वल लक्ष्मण के मन में कर्तव्य एवं प्रेम का अन्तर्द्वन्द्व है तथा सामान्य मानव के सदृश वियोग जनित दुःखों को प्रकट भी करते हैं —

सोच रहा हूं कहां मिलेगा
इन अधरों का अमिय यहां
सोच रहा हूं मेरी आकुल--
प्यास बुझेगी कहां वहां ?[२]

साकेत की `उर्मिला वधू` को कविने `उर्मिलामाता` के नाम से अभिवंदित करके चित्रण के स्तर पर सामान्य नायिका के रूप में ही प्रस्तुत किया है । `साकेत` की उर्मिला परम्परा गत रूप से भिन्न अधिक मुखर है, किन्तु अपने प्रेम अथवा दुःख में वह अमर्यादित नहीं होती है, किन्तु लक्ष्मण के वन प्रयाण के समय `उर्मिला` की उर्मिला कर्तव्य एवं प्रेम के द्वन्द्व में पड़ी कमजोर नारी है जिसके अन्तर्मन का दुःख एक बार ऊपर उठकर कर्तव्य पर विजय भी प्राप्त करता है । पितुराज्ञा को मौनभाव से स्वीकार कर लेना रामायण काल का आदर्श रहा होगा किन्तु आधुनिक बौद्धिकता के युग में कैसे स्वीकार्य हो सकता है ? रामायण काल का वह आदर्श आधुनिक कवि की लेखनी से चित्रित उर्मिला के लिए पाखण्ड है । अपने स्वत्व के प्रति सजग आधुनिक विद्रोहिणी नारी की भांति उर्मिला विद्रोह करती है —

वह सब है पाखण्ड प्राणप्रिय
बुद्धि दोष का यह व्यापार

---

१. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २६५
२. उर्मिला, पृ० २१६

जिसके वश नरपति ने खोया
यह समस्त सद्भाव विचार

×× ×× ××

परिमित है, नि:सीम नहीं है —
धर्म वचन प्रतिपालन का,
रखना पड़ता है विचार भी
जन समाज परिपालन का ।[१]

इतना ही नहीं वह लक्ष्मण से विद्रोह करने को भी कहती हैं तथा स्वयं साथ चलने को भी उद्यत हो जाती हैं। किन्तु ऐसा नहीं कि उसे कर्तव्य का बोध नहीं है। मानव-कल्याण के लिए वह स्वयं को न्योछावर कर देगी। यहाँ भी कवि की दृष्टि आधुनिक है। उर्मिला का त्याग प्राचीन आदर्श अथवा परम्परा के लिए नहीं है, वरन् मानवी कल्याण के लिए किया गया त्याग है। नव-मानवतावाद आधुनिक करुणा पर आधारित नवीन भावना है जिसके लिए उर्मिला का त्याग स्वाभाविक है, क्योंकि लक्ष्मण के वन प्रयाण में लोकसेवा रूप का बहुत बड़ा उद्देश्य अन्तर्निहित है।

सामान्य मानवीयता की झलक `पार्वती` के शिव, पार्वती के व्यक्तित्व एवं क्रियाकलापों में मिल जाता है। पुराणों के ये दिव्य पात्र अपनी दिव्यता का आवरण रखते हुए भी अनेक स्थलों पर सामान्य मानव प्रतीत होते हैं। विशेषत: द्वादश सर्ग में शंकर के प्रेमपूर्ण क्रीड़ाओं एवं `दोहदबिहार` प्रसंग में शंकर-पार्वती के प्रेमपूर्ण मनुहार के वर्णन के समय कवि ने उन्हें सामान्य युवक-युवती का व्यक्तित्व प्रदान किया है।

तारकवध में शान्ता, दशरथ, माता कैकेयी, सुमित्रा एवं कौशल्या का चित्रण सामान्य मानवीय धरातल पर हुआ है। शान्ता और श्रृंगी ऋषि

---

१. उर्मिला, पृ० २३६

के पारस्परिक प्रेम वर्णन के समय कवि ने सामान्य प्रेमी प्रेमिका के व्यक्तित्व का आरोपण किया है। यदि `कामायनी` के मनु के व्यक्तित्व द्वारा सुनिश्चित-अभिव्यंजित मानव की मननशीलता के प्रतीकात्मक अर्थ को त्याग दिया जाए तब भी पुराणों के प्रजापालक राजर्षि मनु यहां जीवन के द्वंद्वात्मक वृत्तियों की जाल में पड़े आधुनिक द्वंद्वशील सामान्य व्यक्ति प्रतीत होते हैं।

वस्तुत: छायावादी भावप्रवणता के प्रभावस्वरूप तथा मनोविज्ञान की प्रेरणा से विविध पौराणिक पात्रों के आन्तरिक पक्ष के उद्घाटन के कारण पूर्वयुगीन बहिर्मुखी पात्र अन्तर्मुखी हो गए हैं। यही कारण है कि वे पौराणिक व्यक्तित्व से भिन्न आधुनिक युग के सामान्य जीव प्रतीत होते हैं। `तारकवध` के स्वयम्भू प्रभु-ब्रह्मा के चरित्र में पुत्री वियोग से दु:खी सामान्य पिता-हृदय की कल्पना की गई है इसी प्रकार ऋतंभरा के लेखक ने भी सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की अनुभूतियों का वर्णन `व्यवधान` एवं समाधि प्रकरण में किया है जहां वह सामान्य मानव प्रतीत होते हैं।

मनोविज्ञान का विशेष केन्द्र मन की वृत्तियां हैं जिसके प्रभावस्वरूप इस प्रबन्ध-काव्य में घटना के स्थान पर पौराणिक पात्रों के मन: स्तर पर घटित होने वाली विभिन्न अन्तर्भूतियों का चित्रण अधिक हुआ है। किन्तु उसके साथ छायावाद के विशेष योग के कारण पुराण कथाओं अथवा पौराणिक प्रसंगों के वर्णन के माध्यम से अनेक-मानसिक वृत्तियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी हुई है। अत: विविध पौराणिक पात्र मानसिक वृत्तियों के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत हैं। कामायनी में पुराणों के राजर्षि प्रजापालक-मनु `मन` के प्रतीक हैं और श्रद्धा तथा इड़ा क्रमश: हृदय और बुद्धि की प्रतीक हैं। `तारकवध` का तारक भी प्रकारान्तर से `दानवत्व` का प्रतीक है। `पार्वती` त्रिपुर नायक तारकाक्ष, कमलाक्ष तथा विद्युन्माली भी क्रमश: `ज्ञान` `श्री` एवं `शक्ति` के प्रतीक हैं। कामायनी की प्रतिकार्य का आधार मन की वृत्तियां हैं, किन्तु पार्वती के प्रतीकात्मकता की आधारशिला समाज की वृत्तियां हैं। इसके अतिरिक्त ये पात्र शाश्वत पुरुष तथा शाश्वत नारी वर्ग के प्रतीक भी हैं। विभिन्न भावों के धरातल पर प्रकृत: पुरुष और नारी क्या हैं — इस ओर इन कवियों का

ध्यान गया है। `कामायनी` के मनु के माध्यम से हृदय एवं बुद्धि ,पुरुषत्व एवं मन की कोमलता, अधिकार एवं कर्तव्य के संघर्ष में पड़े `शाश्वतपुरुष` को व्यक्त किया गया है जो अपने दम्भ के कारण नारी को अपनी सम्पत्ति समझता है किन्तु नारी उसके विक्षुब्ध मन की आश्रयस्थली है। `श्रद्धा` के माध्यम से श्रद्धा (हृदय), विश्वास की स्रोतस्विनी चिरन्तर नारी स्वरूप की प्रतीकात्मक अभिव्यंजना हुई है।[१] `अंबरा` के स्वायंभुमनु तथा शतरूपा क्रमश: शाश्वत पुरुष तथा नारी की प्रतीक हैं। मनु `कर्म` है, शतरूपा `कला` है। श्रमक्लान्त पुरुष के लिए कलारूपिणी नारी शान्तिदायिनी है। `उर्वशी` में दिनकर ने पुरूरवा और उर्वशी को `काम` के धरातल पर चिरन्तर पुरुष और नारी के रूप में देखा है[२] ——

संघर्षों में श्रमित श्रान्त हो, पुरुष खोजता विश्वस्त
सिर धर कर सोने को, क्षण भर नारी का वक्षस्थल।[३]

<< << <<

नारी ही वह महासेतु जिस पर अदृश्य से चलकर
नये मनुज, नव प्राण, दृश्य जग में आते रहते हैं
नारी ही वह कोष्ठ, देव, दानव, मनुष्य में छिपकर
महाशून्य चुपचाप,जहां आकार ग्रहण करता है।[४]

---

१. नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग-पग-तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।

—कामायनी, वासना, पृ० ८४

२. मेरी दृष्टि में पुरूरवा सामान्य नर तथा उर्वशी सामान्य नारी प्रतीक हैं।
— श्री रामधारी सिंह`दिनकर` उर्वशी, भूमिका से।

३. उर्वशी, पृ० ३८

४. वही, पृ० १२७

पुराणों के पुरुरवा उर्वशी के प्रेम में विह्वल नृप थे जो आयु पर्यन्त उसकी प्राप्ति के लिए साधना में लीन रहे[1], किन्तु यहां वह चिरन्तर पुरुष है।

मैं मनुष्य कामना वायु मेरे भीतर बहता है।[2]

उर्वशी एक ओर पुरुष की 'कामना' की प्रतीक है दूसरी ओर स्वर्गीय नारी की। देवलोक की नारी उर्वशी अमरलोक की एकरसता, स्थिरता से ऊब कर मानव लोक के चिरन्तर गतिशीलता के प्रति अपनी अकुलाहट व्यक्त करती है। उसकी सापेक्षता में ही पुरुरवा लौकिक धरती का सामान्य नर है जो लौकिक धरातल की सीमाओं से असन्तुष्ट 'देवत्व' के लिए बार-बार अकुला उठता है। एक ओर उर्वशी स्वर्गीय तथा निर्विशेष होकर भी सांसारिकता, लौकिकता, को प्यार करना चाहती है दूसरी ओर पुरुरवा सांसारिक सीमाओं का अतिक्रमण कर स्वर्गीय बन जाना चाहता है। यह दो स्तर के मनोभावों का द्वन्द्व है जो इन दो पात्रों के माध्यम से व्यक्त हुआ है —

---

१. श्रीमद्भागवत में पुरुरवा-उर्वशी के प्रेम से सम्बन्धित उल्लेख है कि जब पुरुरवा को छोड़ कर उर्वशी चली गई तब एक बार कुरुक्षेत्र में उनका परस्पर मिलन हो जाता है। उर्वशी उन्हें एक वर्ष पश्चात् पुन: मिलने का आश्वासन देती है। एक वर्ष पश्चात् उनका पुनर्मिलन होता है। विरह-विकल पुरुरवा से उर्वशी गन्धर्वों की स्तुति करने को कहती है। पुरुरवा की साधना से प्रसन्न गन्धर्व उसे एक अग्निस्थली देते हैं जिसे ही वह उर्वशी समझकर वन में विचरण करते रहे। उसके पश्चात् उस अग्नि स्थली को लेकर ही विविध प्रकार की साधना में लगे रहे और अन्तत: गन्धर्व लोक प्राप्त करते हैं।

—श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ९, अध्याय १४

२. उर्वशी, पृ० ३६

यह भी कैसी द्विधा ? देवता गन्धों के घेरे में,
निकल नहीं मधुपूर्ण पुष्प का चुम्बन ले सकते हैं ।
और देहधर्मी नर फूलों के शरीर को तज कर,
ललचाता है दूर गन्ध के नभ में उड़ जाने को ।[१]

किन्तु औशिनरी यहाँ गृहस्वामिनी पत्नी-रूपधारिणी, नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, जिसके प्रेम में उद्वेलन नहीं शान्ति, ताप नहीं शीतलता, होती है —

गृहिणी जाती हार दाँव सम्पूर्ण समर्पण करके,
जयिनी रहती बनी अप्सरा ललक पुरुष में भर के ।
पर क्या जाने ललक जगाना नर में गृहिणी नारी ?
जीत गई अप्सरा सखी ! मैं नारी बन कर हारी ।[२]

छायावादी भावसंकुलता एवं मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण द्विवेदी-युगीन लोकसेवी, परसेवी, पौराणिक पात्रों के स्थान पर आत्मकेन्द्रित संवेदनशील `व्यक्ति` की स्थापना होती है, किन्तु सामयिकता के धरातल पर (तथा पूर्वयुगीन परम्परा के प्रभावस्वरूप) इन पौराणिक पात्रों के माध्यम से देशसेवा, लोक सेवा के भावों की अभिव्यक्ति भी हुई है । `उर्मिला` के राम पौराणिक अर्थों में उपद्रष्टा, भर्ता, सर्वेश्वर, पूर्णकाम, निष्काम, निरानन्दघन सर्वोत्तम तथा परमेश्वर हैं, किन्तु उनकी ये पौराणिक उपाधियाँ, प्राचीन अर्थों में धर्मरक्षक, अथवा धर्मउद्धारक के रूप में नहीं व्यक्त हुई हैं वरन् उनके इन गुणों में लोकसेवा-भाव क्र एवं समाजसेवा के नवीन भावों का समाहार हुआ है । तारकवध की शान्ता में इसी लोक-सेवा-भाव का आरोपण है । वह भी `प्रियप्रवास`

---

१. उर्वशी, पृ० ४७
२. वही, पृ० ३६

की राधा के सदृश पर दुःखकातर है —

राजमहल का भोग कहां कब तुमको भाया ?
उसको रोग-समान सदा तुमने ठुकराया
हम करती थीं खोज तुम्हें भोजन देने को ।
तुम दुखियों की खोज खबर फिरती लेने को ।[१]

किन्तु पौराणिक चरित्रों के आन्तरिकपक्ष के उद्घाटन के द्वारा सामान्य द्वंद्वयुक्त मानव की सृष्टि हुई हो अथवा लोकसेवी नेताओं के व्यक्तित्व का आरोपण, ~~किन्तु~~ ये कविगण अपने काव्यग्रन्थों में प्रयुक्त पौराणिक देवी-देवताओं की दिव्यसत्ता के प्रति आस्थावान् भी हैं। निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' में राम का चित्रण नितान्त मानवी धरातल पर किया है किन्तु दूसरी ओर उनके अनेक स्फुट पदों में ब्रह्म एवं जीव सम्बन्धी धारणा की अभिव्यक्ति के लिए राम, सीता, शिव एवं पार्वती को माध्यम रूप में स्वीकार किया है साथ ही उनके अर्चना सम्बन्धी पदों में इन पात्रों के देवत्व की अवतारणा हुई है —

अशरण शरणराम
काम के छविधाम
    ऋषि मुनि-मनोहंस
    रवि वंश अवतंस
कर्मरत निश्शंक
पूरो मनस्काम ।[२]

× × × × × × × ×

गरल कण्ठ दे अकुण्ठ
बैठक बैकुण्ठ धाम

---

१. तारकवध, पृ० १८०

२. आराधना, पृ० ५८

जय शिव जय विष्णु, जिष्णु
शंकर जय कृष्ण, राम ।[१]

`उर्मिला` के राम ब्रह्म हैं । उर्मिला की भी कवि ने माता कह कर श्रद्धाभाव से अभिवंदना की है । `पार्वती` के शंकर एवं भक्त पार्वती की दिव्यता को कवि स्पष्टत: स्वीकार करता है और ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही पार्वती की अर्चना की है —

जीवन की पहली उषा सी आदि सर्ग के पल में
हुई हिमालय के गौरवमय उदित पुण्य अंचल में
आदि शक्ति वे विश्व मंगला विश्रुत शैलकुमारी
शंकर वर से आत्म अर्चना करें कृतार्थ हमारी ।[२]

`तारकवध` में पौराणिक पात्रों में दिव्यता की झलक सबसे अधिक प्राप्त है । `कार्तिकेय` का बार-बार दिव्य शक्ति सम्पन्न देवों की भांति आविर्भूत होने का वर्णन किया गया है, साथ ही कवि ने अवतारवाद में विश्वास प्रकट किया है और शान्ता एवं श्रृंगी ऋषि को क्रमश: `शारदा` एवं `कार्तिकेय` का अवतार माना है ।

---

१. आराधना, पृ० ६६
२. पार्वती, पृ० ६

अध्याय — पंचम

नवीन भावबोध और पुराण कथाएं

पुराण-कथाओं के प्रयोग के संदर्भ में जिस नवीन भावबोध की चर्चा की जा रही है उसके स्वरूप-विवेचन के पूर्व उसके मूल में स्थित सांस्कृतिक एवं साहित्यिक कारणों का सर्वेक्षण अति आवश्यक है। क्योंकि परिवर्तन उत्पन्न करने वाले ये साहित्येतर कारण इस वर्ग के साहित्य के संदर्भ में जितना प्रभाव उत्पन्न करते हैं उतना छायावादी तथा प्रगतिवादी काव्यधारा के लिए नहीं कहा जा सकता है। छायावाद या रहस्यवाद के मूल में तत्कालीन परतंत्रता तथा पराजित राजनीति का सूक्ष्म संघात स्वीकार किया भी जाए पर, प्रगतिवादी काव्यधारा को मुख्यत: विदेशी प्रभाव से उत्पन्न कहा जा सकता है।

एक अर्थ में हिन्दी काव्य जगत में विद्रोहात्मक नवीन दृष्टि के मूल कारणों एवं जनजीवन में व्याप्त विचार पद्धतियों के पारस्परिक प्रतिबद्धता को देखकर द्विवेदी युग के काव्य साहित्य का स्मरण हो आता है। द्विवेदी-युग का काव्य साहित्य भी स्वतंत्र युग की विचारधारा को प्रत्यक्ष तथा स्थूल अभिव्यक्ति देने लगा था। उसी प्रकार इस प्रवृत्ति का साहित्य भी युग से उद्भूत चेतना पर आधृत है। यद्यपि दोनों ही युगों की दृष्टि में अन्तर है वैसे ही जैसे कि तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में भेद है। किन्तु समय के प्रति जागरूकता तथा युग के दायित्व का वहन दोनों युगों के कवियों ने किया ~~किया~~ है।

मूल्यगत संक्रमण—

इस नवीन भावबोध को प्राचीन मूल्यों के विघटन के रूप में

समझा जा सकता है। मूल्यों का विघटन या संक्रमण सहसा उद्भूत होने वाली एक दिन की घटना नहीं है, और न केवल भारतीय जन-जीवन के इतिहास में घटित होने वाली एक मात्र घटना है। विश्व इतिहास के रंगमंच पर दो महायुद्धों का अनुभव ऐसी ही प्रभावकारी घटना थी जो पश्चिम में परम्परागत मूल्यों को निरन्तर अर्थहीन बनाती गई। उसका प्रभाव भारत ने न ग्रहण किया हो—ऐसा नहीं कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त स्वयं भारतीय जीवन की वास्तविकता अन्य ढंग से यहां के जन जीवन में विश्रृंखलता उत्पन्न कर रही थी। किन्तु भारतीय जीवन में व्याप्त जिस विश्रृंखलता की चर्चा की रही है, जिस मूल्यगत संक्रमण का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अनुभव किया जा रहा —-वह स्वतंत्र भारत में अधिक तीव्रता से प्रस्फुटित हुआ है। वस्तुत: इसके बीज कदाचित् द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् ही स्पष्ट होने लगे थे किन्तु उस युग का राष्ट्रीय संघर्ष देश की जन-चेतना को एक सूत्र में बांधे रहा। अर्थात् स्वतंत्रता प्राप्ति के अप्रत्यक्ष उद्देश्य ने किसी सीमा तक देश को लक्ष्य-हीन होने से बचा रखा था। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ही स्वतंत्र भारत के रूप में देखा गया स्वप्न दु:स्वप्न बन कर रह गया और स्वराज्य के रूप में गांधी के आदर्शों के माध्यम से जिस रामराज्य की परिकल्पना की गई थी उसका भ्रम भी टूट गया। बढ़ती महंगाई, के रूप में उस आर्थिक संकट को विषमतर रूप में देशवासी झेल रहे थे जिसका प्रारम्भ एक सदी पूर्व ही हो गया था किन्तु आर्थिक अथवा सामाजिक विषमताओं से अधिक, इस युग का मानव, सांस्कृतिक संकट को झेल रहा था। स्वतंत्रता के पश्चात् ही साम्प्रदायिक दंगों के रूप में भयंकर रक्तपात के दृश्यों ने जन मानस को अन्दर से जर्जरित, खोखला, भ्रमित एवं कुंठित बना दिया था। कदाचित् मानव ने सर्वप्रथम अपने को उस यथार्थवादी भूमि पर पाया, जहां स्वप्न या आदर्श नहीं था, प्रत्युत जीवन की कटु वास्तविकता थी। गांधी की हत्या सबसे बड़ा यथार्थ था जिसकी अनुभूति ने भारतीय जनता को सबसे अधिक चौंकाया—" आजादी के उत्सव अभी मनाए ही जा रहे थे और सांस्कृतिक अहिंसात्मक क्रान्ति की ऐतिहासिक विजय पर नेतागण एक दूसरे का जयकार कर रहे थे कि साम्प्रदायिक आधार पर भारत के विभाजन से उत्पन्न कटुता

ऐसी पाशविक हिंसा और रक्तपात में फूट पड़ी जिसकी मिसाल फासिस्ट-वाद ---नस्लवाद में ही मिलती है। और इस निर्मम हत्याकाण्ड में भावना के स्तर पर के सारे आदर्श और सरल विश्वास, जिन्होंने राष्ट्रीय चेतना-आन्दोलनको गरिमा और अर्थवत्ता प्रदान की थी, स्वाहा हो गए। राष्ट्रपिता गांधी की हत्या जन-मानस में उस मानवीय विवेक को नहीं जगा सकी, जो मनुष्य को क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठाता है। बल्कि गांधी की हत्या आदर्शवादी भारत की अकाल मृत्यु और मूल्यों के विघटन का प्रतीक बन गई। [१]

आधुनिक युग की 'बौद्धिकता' के संदर्भ में विज्ञान की चर्चा बार बार हुई है किन्तु इस विज्ञान ने भी मानव मन पर बड़ा संघातक प्रभाव डाला है। अपने प्रारम्भिक रूप में यूरोप का विज्ञान, मानवीय बुद्धि की अनुद्धि अद्भुत सामर्थ्य का प्रतीक बनकर आशाप्रद भविष्य की कल्पनाओं के कारण उल्लसित एवं उत्साहित करता है। परन्तु विज्ञान के क्षेत्र में मानवीय बुद्धि की सफलताओं के प्रतीक विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव को क्रमश: अधिक असमर्थ भी बना दिया। मानव द्वारा आविष्कृत विज्ञान ने सम्पूर्ण मानव जाति को ही विनाश के ऐसे कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है जिसके आगे उसकी नियति विज्ञान के हाथों बंध गई है। उसका अधिक कटु अनुभव द्वितीय महायुद्ध का महाविनाश था। आज भी भावी विनाश की अदृश्य कल्पना हरक्षण व्यक्ति को आतंकित एवं पराभूत कर रही है। एत-दर्थ विज्ञान से उत्पन्न उल्लास, आज निराशा, अनिश्चय, भय एवं शंका में परिवर्तित हो गया है।

लेकिन इस परिस्थिति में जिस प्रकार के साहित्य का विकास होना था उसका दाय क्या हिन्दी साहित्य ने पूरा किया? अन्य विधाओं की बात छोड़ भी दी जाए तो हिन्दी काव्य जगत में इस समय छायावादी तथा रहस्यवादी काव्य-प्रवृत्तियों का प्राधान्य था। विश्व रंगमंच पर द्वितीय

---

१. शिवनन्दन सिंह चौहान, आलोचना, जून १९६४ (संपादकीय से) पृ० ४

महायुद्ध का नृत्य हो रहा था और हिन्दी के अनेक कवि सौन्दर्य-प्रेम के गीत गा रहे थे। किन्तु यह भ्रमजाल भी टूटता है और सन् १९४३ ई० में प्रथम `तार सप्तक` का प्रकाशन ही यह सिद्ध कर देता है कि युग के यथार्थ से प्रेरणा ग्रहण करके नयी काव्याभिव्यक्ति हिन्दी में करवट ले रही है जिसको आगे चल कर प्रयोगवाद की संज्ञा दी गई। किन्तु प्रयोगवादी दृष्टि अभी शंकालु थी, अपने ध्येय के प्रति प्रयोग की प्रारम्भिक भूमिका पूरा कर रही थी और बाद में उसके ही मध्य से ऐसे विद्रोहात्मक, यथार्थवादी, काव्याभिव्यक्ति का जन्म भी होता है जिसे यदि `वादों` की प्रतिबद्धता में देखा जाए तो हिन्दी साहित्य में `नई कविता` के नाम से अभिहित किया जा सकता है। इस नवीन-काव्य का प्रथम स्पष्ट प्रकाशन `नये पत्ते`[1] से (सन् १९५३) माना जा सकता है। पुन: `नयीकविता`[2] के विभिन्न अंकों के माध्यम से यह काव्य प्रवृत्ति अभिव्यक्त होने लगी।

इस नयी काव्यधारा ने अपने पूर्ववर्ती काव्य प्रवृत्ति छायावाद के काल्पनिक कुहाजाल, रहस्यवाद के दार्शनिक वितंडावाद, साथ ही प्रगतिवादी काव्य धारा के यांत्रिक भौतिकवाद, के विरुद्ध विद्रोह किया था — `वस्तुत: परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से नयी कविता उस अभिव्यक्ति का समर्थन है जिसमें उदात्त अनुभूति भावान्तरित होकर रूढ़ि और काव्यचातुरी की अपेक्षा, जीवन की सहजता और स्वाभाविकता पर बल देती है अर्थात् जो रागात्मक रहस्यानुभूति या छायावादी शब्दानुभूति की अपेक्षा सत्यानुभूति के जीवन्त सम्पर्कात्मक तत्वों को प्रतिष्ठित करती है।`[3]

---

१. सम्पादक— पहले श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी, पुन: लक्ष्मीकान्त वर्मा

२. सम्पादक — डा० जगदीश गुप्त, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, पुन: विजयदेवनारायण साही

३. श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा, नयी कविता के प्रतिमान, पृ० ३६

संवेदना का नवीन धरातल—

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि परिवर्तित संदर्भ के परिणामस्वरूप मूल्यों के विघटन के मूल में विद्रोहात्मक भावना है। विद्रोह के मूल में विज्ञान के उत्तरोत्तर बढ़ते प्रभाव से उत्पन्न मानव की विश्लेषणात्मक बुद्धि है (बौद्धिकता है) जो बड़े से बड़े सत्य, परम्परागत मूल्यों या मर्यादाओं को तर्क की कसौटी पर परीक्षण किए बिना स्वीकार करने को तैयार नहीं। आज मनुष्य ने अनुभव किया है कि प्रमाणिकता की सबसे विश्वसनीय तुला विवेक है। दूसरी ओर समय की प्रगति एवं विकास के समक्ष परम्परागत आदर्श (जो अबतक विश्वास के सहारे पलते रहे हैं) अपनी स्थिरता एवं जड़ता के कारण निरर्थक हो गए हैं। आज युग की यथार्थता एवं विज्ञान से उद्भूत जटिल मानवीय बुद्धि ने सिद्ध कर दिया है कि यह युग आदर्शों का नहीं है। अब यह भी सिद्ध हो गया है कि सत्य इतना सीधा नहीं रह गया कि उसे सीधी लकीर की भांति व्यक्त किया जा सके। मानवीय गुणों के आदर्श दया, प्रेम, शान्ति अथवा अवगुण — घृणा, युद्ध भी उतने सीधे एवं सहज नहीं रह गए हैं। प्रेम की भावना के साथ ही सम्बद्ध घृणा के अनेक सतहों का परिचय मनोविज्ञान देता है तो शान्ति के साथ ही युद्ध की पारस्परिक सम्पृक्ति का परिचय इस युग की विश्व-राजनीति। इस युग के मानव जीवन के संदर्भ में सर्वमान्य प्राचीन आदर्शों के खोखलेपन एवं उसकी अपूर्णता ने ही विद्रोह की सृष्टि की है और विद्रोह के लिए युग की बौद्धिकता ने दृष्टि प्रदान की है। विद्रोह एवं बौद्धिकता ही वह धरातल है जिस पर नवीन भावबोध की प्रतिष्ठा होती है।

यह नवीन भाव बोध अपने पूर्ववर्ती काव्य परम्पराओं से भिन्न है। भिन्नता का कारण उसकी आधुनिकता है।[१] आधुनिकता चिन्तन-विधि

---

१. नवचिन्तन में इस आधुनिकता की बड़ी चर्चा रही है और अनेक विचारकों ने अपने ढंग से परिभाषित किया है। डा० जगदीशगुप्त की विचारधारा अनेक

की आधुनिकता है, वह नया सौन्दर्यबोध, नवीन मानवीयता और यथार्थवादी दृष्टि है जो इस युग की सापेक्षता को आत्मसात करते हुए, युग की सम्पूर्ण वास्तविकता को दायित्वपूर्ण स्वीकृति प्रदान करता है। जहाँ तक नये भावबोध का सम्बन्ध है यह निश्चय है कि वह अपनी मूल प्रकृति में परम्परागत और छायावादी भावबोध से भिन्न है। भिन्नता का सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि वह आधुनिक है — "आधुनिक केवल कालगत (Chronological) भाव में नहीं वरन् चिन्तनविधि में, दृष्टिकोण में, विवेक में, जीवन की व्याख्या (Interpretation) में और ऐतिहासिक दायित्व में, आधुनिक इसलिए है कि वह आज के जीवन सत्य को आज के ही संदर्भ में देखने का प्रयास करता है। उसके लिए न परम्परा की रूढ़ि है और न छायावादी भावबोध का मिशन। उसकी दृष्टि अन्वेषण की है, परीक्षण की है — तर्कगत अवलोकन (observation) और उसके आधार पर परीक्षण (verification) और अन्तत: एक निष्कर्ष तक पहुँचने की है।"[१]

नयी काव्य प्रवृत्ति: नयी कविता —

सम्प्रति प्रचलित काव्य की अधुनातन प्रवृत्ति 'नयी कविता' ने उपरोक्त भावबोध के धरातल पर अपने को प्रतिष्ठित किया है।

इस काव्य प्रवृत्ति की बौद्धिकता, तर्कशीलता, अन्वेषण एवं परीक्षण की दृष्टि ने यह उपलब्ध किया है कि जीवन का सबसे बड़ा सत्य 'मानव' है। और इस काव्यधारा में सर्वप्रथम मानव को नहीं वरन् मानव

पिछले पृष्ठ का शेष— दृष्टि से परिपूर्ण है — "आधुनिकता अपने सही अर्थ में उस विवेकपूर्ण दृष्टिकोण से उपजती है जो वास्तविकता युगबोध प्रदान करने के साथ साथ अधिक दायित्वशील सक्रिय और मानवीय बनाता है।"

—नयी कविता, अंक ७, पृ० ६५

१. श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा—नयी कविता के प्रतिमान,पृ० ६४

'व्यक्तित्व' की महत्ता प्रदान की गई है। मानव व्यक्तित्व की महत्व-स्थापना में उसने उन परम्परागत रूढ़ियों, मान्यताओं, आदर्शों को बिलकुल ही अस्वीकार कर दिया है जो मानव को किसी से भी कुंठित एवं महत्वहीन बताते हैं। वह उस 'ईश्वरवाद' का भी निषेध करता है जो कि मानव को ईश्वर के समक्ष अथवा ईश्वरीय कृपा पर आधारित तुच्छ जीव समझता है। इस काव्यधारा में स्वीकृत मानव अपने यथार्थ से जूझता वह संघर्षरत प्राणी है जो अपनी खामियों के कारण उपेक्षणीय नहीं है वरन् अपनी कमजोरियों के साथ भी अपनी सहजता में भी स्वीकार्य है, अपनी लघुता में भी महान् है।

जीवन की ~~जिन~~ विषमताओं, कटुताओं, अनास्था, अनिश्चय और कुंठा के मध्य अपने अस्तित्व के प्रति संशयशील अत: स्वचेता नवीन कवि ने समय की पूर्णता को खंडित करके क्षण की अनुभूति को विशेष महत्व प्रदान किया है। अत: क्षणानुभूति का विशेष महत्व इस काव्य-धारा की विशेषता है। वस्तुत: विशेष या बड़े होने के मिथ्यागौरव के स्थान पर साधारण तत्वों को महत्व देने के आग्रह के कारण महत् या सम्पूर्ण काल के स्थान पर समय के लघुतम खण्डउन 'क्षणों' को विशेष महत्व प्रदान किया है जिसमें व्यक्ति किसी अनुभूति का साक्षात्कार करता है। वस्तुत: क्षणानुभूति के महत्व के आग्रह के मूल में यूरोप के अस्तित्ववादी दर्शन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। यह 'अस्तित्ववाद' भी विज्ञान युग की विषमता से उत्पन्न दर्शन है। मशीनी सभ्यता एवम् वैज्ञानिक आविष्कारों के विनाशकारी प्रभाव ने आज के मानव जीवन को इतना अनिश्चित बना दिया है कि भविष्य के प्रति शंकालु इस युग का कवि वर्तमान् के बीते क्षणों के प्रति जागरूक हो गया है। इसके अतिरिक्त नये कवि की संवेदनात्मक तीव्रता एवं गहराई का आवेग दूसरा कारण है जिससे वह एक 'क्षण' में ही मानव सत्य की बड़ी से बड़ी उपलब्धियों की भी अनुभूति कर लेता है —

एक क्षण में प्रवहमान
व्याप्त सम्पूर्णता

इससे कदापि बड़ा नहीं था महाम्बुधि जो
पिया था अगस्त्य ने ।[१]

अत: इस युग के कवि के लिए मानव यथार्थ ही सबसे बड़ा सत्य है, जिसको भुलकार वह छायावादी और रहस्यवादी काव्य की भांति काल्पनिक लोक के भावों का लेपन नहीं करता है वरन् निर्मम चिकित्सक की भांति उसे उघाड़ कर सामने रख देता है । वह मानवीय यथार्थ को स्वीकृति प्रदान करके उसकी कटुता को उभार कर सामने रखता है, और उसके बीच से ही मानव व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहता है । यथार्थ की यह स्वीकृति ही इस काव्यधारा की वह सचेतन दृष्टि है जो उसे पूर्ववर्ती काव्यधारा से अधिक बौद्धिक एवं आधुनिक बनाती है ।

किन्तु इस युग का यथार्थ क्या है ? जैसा कि ऊपर विवेचन हो चुका है कि इस युग का यथार्थ मूल्यगत संक्रमण में पड़ी मानव पीढ़ी की अनास्था, कुंठा, निराशा, विषाद, लक्ष्यहीनता, व्यर्थता की अनुभूति है जिसकी वास्तविक अभिव्यक्ति प्रदान करके उससे उबरने की प्रेरणा देना ही कवि कर्म है ।

अत: नवीन काव्यप्रवृत्ति अनेक काव्यगत सत्यों को लेकर आगे बढ़ रही है जो सामान्यीकृत होकर अब व्यक्त होने लगी है[2]—

१. सामान्य वस्तुओं तथा अकिंचन परिस्थितियों से रागात्मक सम्बन्ध ।
२. गहरे तथा तीखे व्यंग (*satire, irony*) की प्रवृत्ति, परन्तु ऐसा व्यंग जो जीवन के प्रति एक रचनात्मक दृष्टिकोण दे सके ।
३. नयी छंद योजना, शब्दों के ध्वन्यात्मक तथा आंतरिक अर्थों का समन्वय करते हुए ।

---

१. डॉ० जगदीश गुप्त, नयी कविता, अंक २, पृ० ६७
2. जिसका पुराण-कथाओं के प्रयोग की दृष्टि से विशेष महत्व है ।

४. बिखरे भाव-चित्रों तथा मुक्त साहचर्य का नि:संकोच प्रयोग ।
५. एक नये व्यापक तथा उदार मानवतावादी दृष्टिकोण को विकसित करने का सफल प्रयास--सामान्य जन-जीवन के प्रति एक अनिवार्य `कन्सर्न`-- की भावना । मुर्दारों की संस्कृति के प्रति आशंका और आक्रोश ।[१]

पुराण कथाओं के प्रयोग की दिशा--

प्रबन्ध काव्य का युग द्विवेदी-युग के पश्चात् ही समाप्त हो गया था । छायावाद तथा रहस्यवाद की भांति अधुनातन काव्यधारा भी मुख्यत: मुक्तक परक है । अत: आख्यानक काव्यों के लिए वैसे भी अवकाश नहीं रह जाता है । हिन्दी काव्य जगत में प्रबन्धात्मकता के साथ पौराणिकता का भी ह्रास हुआ है । वस्तुत: इस विज्ञान-युग में अलौकिक पुराण कथाओं का वर्णन व्यर्थ ही समझा जाता है । इसके अतिरिक्त उपन्यास के काल्पनिक कथाओं एवं प्रबन्धकाव्यों में पुराणेतर (अथवा इतिहासेतर भी) विषयों के समावेश के कारण पुराण-कथाओं के कथातत्व के प्रति आकर्षण भी नहीं रह गया है । किन्तु यह उल्लेखनीय है कि इस काव्यधारा के कवियों का ध्यान (द्विवेदी युग की भांति) पुन: पुराणकथाओं एवं पौराणिक चरित्रों की ओर गया है । पौराणिकता के विशेष आग्रह के मूल में इस काव्यधारा की वह व्यंगात्मक दृष्टि है, जिससे प्रेरित होकर जीवन की विसंगतियों को प्राचीन कथा-प्रसंगों एवं पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया गया है । प्राचीन कथा के माध्यम से अभिव्यक्त ये विषमताएं प्राचीन तथा आधुनिक युग के मध्य के समय-अन्तराल एवं मूल्यों के वैषम्य के कारण ही व्यंग बन जाती हैं । यह व्यंग ही वह `टैम्पर ` है जिसके द्वारा आधुनिक कवि युगीन यथार्थ को अधिक गहराई तथा तीखेपन के साथ अनुभूत करना चाहता है । इसके अतिरिक्त पौरा-

---

१. नयी कविता की ये सभी विशेषताएं डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी की पुस्तक-- `हिन्दी नवलेखन` पृ० ४३ से ज्यों का त्यों स्वीकार कर ली गई हैं ।

णिकता के विशेष समावेश के मूल में इस युग के कवियों की विद्रोहात्मक दृष्टि भी है। जहां ये कवि प्राचीन मूल्य, मर्यादाओं के प्रति प्रश्नशील हो उठे हैं, वहां इन पौराणिक तत्वों को भी प्राचीन मान्यताओं का अंग समझ कर नवीन तर्क के आधार पर मूल्यांकन करके, आधुनिकता की सापेक्षता में नवीन संवेदना के धरातल पर स्थापित किया है, अथवा कहीं अस्वीकार भी किया है।

अस्तु, इन दोनों ही रूपों में अधुनातन हिन्दी काव्य में प्रयुक्त पुराणकथाएं अपने मूल धार्मिक अर्थों से च्युत होकर नवीन भावभूमि पर प्रतिष्ठित हैं। इतना ही नहीं पूर्वकालीन काव्य साहित्य में (द्विवेदी युग एवं छायावादी काव्य में) जिन आदर्शों की स्थापना के लिए इनका ग्रहण हुआ था उन्हीं के खंडन के लिए भी इन कथाओं एवं पात्रों को माध्यम बनाया गया है।

इस तरह इस काव्यधारा में पौराणिक संदर्भ अनेक मिल जाते हैं किन्तु इतिवृत्तात्मक कथा वर्णन की अत्याधिक न्यूनता है। वस्तुतः क्षण को विशेष महत्व प्रदान करने के ~~लि-~~कारण विस्तृत वर्णनों के लिए वैसे भी अवकाश नहीं रह जाता है। दूसरे, जिस व्यंगात्मक दृष्टि को लेकर इस नवीन काव्य-प्रवृत्ति का विकास हुआ है, वह छोटे-छोटे खण्डों के माध्यम से अधिक तीव्र एवं घनीभूत होकर व्यक्त हो सकता है। तीसरे, इस नवीन काव्यधारा में भावों अथवा विचारों को एक ~~अखंड~~ स्रोत के रूप में स्वीकार कर उसके पूर्वापर क्रम के निर्वाह की प्रवृत्ति भी नहीं प्राप्त होती है। भावों अथवा विचारों के 'मुक्त-साहचर्य सम्बन्ध' के द्वारा (आन्तरिक रूप में अनुस्यूत) भाव-खण्डों की झलक दिखाकर पूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति का प्रयास मिलता है। अतः इस युग में पुराण कथाओं के प्रयोग की दिशा में कवि द्वारा प्रदर्शित मौलिकता घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या, घटना संक्षिप्ति में ही नहीं है, प्रत्युत पौराणिक प्रसंगों को नवीन अभिव्यक्ति प्रदान करने में भी है।

महाकाव्य-खंडकाव्य के परम्परागत धारणा के प्रति रूढ़ होकर यदि न सोचा जाए तो मन्वन्तर, संशय की एक रात, तथा कनुप्रिया को प्रबन्धकाव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। किन्तु भावों के मुक्त-साहचर्य-सम्बन्ध तथा क्षणानुभूतियों के महत्वशीलता की प्रवृत्ति के दर्शन इन काव्यग्रन्थों में भी प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक स्फुट कविताओं में पुराणकथायें एवं पौराणिक पात्र नवीन संदर्भों की सृष्टि के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

पुराणकथाओं के प्रयोग का स्वरूप---

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि इस काव्य की मूलवर्ती भावना विद्रोह है। अत: पुराण कथाओं के परिवर्तित संदर्भ के मूल में इस युग के कवि का विद्रोह एवं बौद्धिकता है जिसके परिणामस्वरूप पुराणकथाओं एवं पौराणिक पात्रों से सम्बद्ध अलौकिकता और धार्मिकता के प्रति आज कवि आस्थाहीन हो उठता है। जीवन में व्याप्त जिस मूल्यगत-विघटन अथवा अनास्था की चर्चा अनेक प्रसंगों में हुई है वह भी शताब्दियों से चली आती धार्मिकता का भी खंडन करती है। पूर्वनिर्धारित मान्यताओं यहाँ तककी ईश्वर के प्रति भी आज का बौद्धिक कवि संशयशील एवं अश्रद्धावान हो गया है। उपनिषदों की निराकार और शून्य ब्रह्म की धारणा--जिसकी पुनरावृत्ति पुराणों में बार बार हुई है -- आधुनिक कवि[१] के लिए व्यंग का विषय हो गया है। जीवन के कटु यथार्थ के सचेतन अनुभूति के समक्ष वह 'निराकारत्व' विद्रूप की सृष्टि करता है --

राम और दिन
　　　　तुम्हारे दो कान हैं लम्बे चौड़े
एक बिलकुल सियाह
दूसरा कतई सुफ़ेद
　× 　× 　　× 　× 　　× 　×

---

१. आधुनिक कवि से तात्पर्य नवीन काव्यधारा के कवि।

धरती की चीखों के शब्द
पंखदार कीड़ों से बेचैन ,
तुम्हारे कानों के बालों पर बैठते
भिनभिनाते चक्कर करते परन्तु नींद अटूट है ।[१]

युगीन यथार्थ के प्रति सम्पृक्ति— भाव के कारण ही आज का विद्रोही कवि ईश्वरीय सत्ता के स्थान पर जीवन में व्याप्त अकिंचनता की ओर संकेत करता है जो ईश्वर के रक्षक, दयालु होने की आस्था पर प्रश्न चिह्न है—

सई सांझ कदम्ब वृक्ष पास
मन्दिर चबूतरे पर बैठकर
जब कभी देखता हूं तुझको
मुझे याद आते हैं
भयभीत आंखों के हंस
व घाव भरे कबूतर
मुझे याद आते हैं मेरे लोग
उसके सब हृदय रोग ।[२]

जीवन की विकृतियों, कुंठाओं के मध्य टूटने की स्थिति इस युग का यथार्थ है तो उस टूटन से ऊपर उठकर उस टूटन को `झेलने` की महत्ता की स्थापना का भी प्रयत्न हुआ है । यही इस युग के कवि का `अहम्` है, आत्मविश्वास है, दु:ख की ईमानदार स्वीकृति[३] है । जीवन

---

१. श्री गजानन्द माधव मुक्तिबोध, कल्पना, मई १९६० , पृ० ५०
२. वही, पृ०
३. दु:ख सबको मांजता है
और—
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने किन्तु—
जिनको मांजता है
उन्हें यह सीख देता है सबको मुक्त रखें ।

से वहाँ ईश्वर या ईश्वरी कृपा को मानने को आधुनिक कवि तैयार नहीं है—

देवता तू न मुझ पर रीझ
बल थक जाएंगे तेरे
न कर अपमान अपनी लघुकृपाओं से,
मुझे प्रिय दर्द ही मेरे ।[1]

धार्मिक श्रद्धा, महानता के प्रति विद्रोह के विकास के मूल में विज्ञान से उद्भूत बौद्धिकता एवं तर्कशीलता के साथ ही मानव व्यक्तित्व के विशिष्टता की अनुभूति है, जिसने उन महानताओं को अस्वीकार कर दिया है जिसने मानव व्यक्तित्व को छोटा बनाया है। यह धर्म की नवीन व्याख्या है। मनुष्य का आत्मनिश्चय उसका आत्मबल ही सत्य है। धार्मिकता भी मानव की सृष्टि है, उसकी धारणा है—जिसे उसने कभी अपनी सुविधा के लिए निर्मित किया था और आज वही धार्मिकता उसके अस्तित्व को छोटा बनाए हुए है। अत: मानव निर्मित इस 'भव्य-भवन' को भी खण्डित होना चाहिए —

हर अन्धी श्रद्धा की परिणति है या खण्डन ।
हर खण्डित मूर्ति का प्रसाद है यह प्रश्नचिह्न । ।[2]

आज का कवि मूर्ति पूजन के स्थान पर जीवन के यथार्थ से जूझता मानव की आँखों में ही ईश्वरत्व का आभास पाता है —

कहाँ मिलेगा
वहाँ सामने तुमको
अनपेक्षित प्रति रूप तुम्हारा
नर जिसकी अनभिप आँखों में नारायण की व्यथा भरी ।[3]

---

१. कुंवर नारायण : चक्रव्यूह, पृ० ८९
२. भारतभूषण अग्रवाल, नयीकविता, अंक तीन, पृ० ६२
३. अज्ञेय, इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे, पृ० ६२

इस अनास्था एवं अविश्वास के धरातल पर ही विश्लेषणात्मक दृष्टि एवं विद्रोह का स्वर उपजता है जो प्राचीन प्रसंगों में नवीन अर्थ भरता है। यहां पौराणिक कथा प्रसंगों एवं पात्रों के माध्यम से नवीन संवेदना व्यक्त की गई है — इस 'संवेदना' का आधार कहीं मनोवैज्ञानिक आत्मसंघर्ष, कहीं विद्रोह है अथवा कहीं व्यंग। 'सूर्य के तीन मर्म कथन'[१] मे महाभारत के कर्ण के सूत-पुत्रत्व को आधार बनाकर कर्ण के अन्तर्मन में उस विद्रोह की सृष्टि की गई है जो प्रकारान्तर से आधुनिक कवि की अनास्था, आत्मसंघर्ष एवं 'अहं' की सामर्थ्य पूर्ण अनुभूति है। तीन खंडों में अभिव्यक्त इस कविता में प्रथम मर्मपूर्ण (विद्रोहात्मक) कथन कुन्ती के प्रति है जो लोकलाज के भय से एक बार अपने ही पुत्र को त्याग कर पुन: अपने मातृत्व का अधिकार मांगने आती है। कुन्ती के उस कृत्य (कर्ण का त्याग) को 'लोकलाज' की दृष्टि से उस युग का विचारक भले ही मान्यता दे पर, इस युग का कवि उसे कुन्ती के 'कौमार्य की नासमझी' का देन मानता है और कुन्ती के प्रति प्रश्नशील है —

ओ मां
तुमने मुझे आज अपना बेटा कहा है,
तो बताओ, बताओ
यदि तुमने मुझे जन्मा था
यदि मेरे प्रसव की पीड़ा
अर्जुन की प्रसव पीड़ा से कम थी
तो मुझे कैसे चुपचाप बहा दिया।[२]

दूसरा विद्रोह (मर्म कथन) उस अर्जुन के प्रति है जो कर्ण की

---

१. केशु, कल्पना, अक्टूबर, १६५८, पृ० २५
२. कल्पना, अक्टूबर, १६५८, पृ० २५

वचनबद्धता से लाभ उठाकर उसे बार बार उत्तेजित करता है —

तुम गाण्डीव के रुकते हाथों को
उत्तेजित कर रहे हो कृष्ण
तुम संस्कारों के बंधे हुए पानी में
आवेश भर रहे हो—भरो
मैं बाणों से बिंधा
पसीने से लथपथ
अपनी कुंठाओं के दलदल में फंसे हुए
अपने रथ के पहिये को निकाल रहा हूं तुम मुझे
तुम मुझे मारने को कह रहे हो कहो ।

सूर्यपुत्र के तीसरे `मर्म कथन` में निराशा एवं उससे उबरने के अदम्य साहस के पारस्परिक द्वंद्व के रूप में उसके मन के आत्मसंघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है । अपने आन्तरिक पीड़ाजनक अनुभूति के धरातल पर अपने पिता तक के प्रति अश्रद्धालु हो उठा है —

मृत्यु की चेतना शून्य
भीषण खाई में गिरने से पहले
मैं तुम्हें प्रणाम नहीं करूंगा
ओ मेरे तथाकथित पिता ।

विश्लेषण-बुद्धि, विद्रोह का विशेष आग्रह `पाषाणी`[१] एवं `अहल्या के प्रतिवेदन`[२] में प्राप्त होता है । `पाषाणी` में कवि

---

१. नागार्जुन, प्रतीक, शरद, पृ ६

२. नन्दकिशोर मालवीय, ग्रामोदय, जून, १९६२

ने अहिल्योद्धार की पौराणिक कथा को नवीन संवेदनात्मक विस्तार दिया है। परम्परागत रूप में शापित अहिल्या अपने पाप के लिए कहीं क्षमा-याचिका है तो कहीं निरीह; किन्तु नये युग के मानवतावादी एवं व्यक्तित्ववादी धारणा ने अहिल्या में आत्मविश्वास का सृजन किया है। वह अपने प्रति किए अत्याचार के लिए सम्पूर्ण पुरुष जाति के प्रति विद्रोहिणी बन जाती है और पुरुष जाति के प्रति घृणा की बात करती है —

पत्नी के प्रति पति का यह अन्याय,
बनी हुई अहल्या जो पाषाणप्राय,
तात किया तुमने समुचित प्रतिकार।
पुरुषों पर भी मुझको घृणा अपार।

गौतम ऋषि की शाप की घटना को कवि नारी के प्रति किए अत्याचार के रूप में देखता है। अत: एक ओर अहिल्या विद्रोह करती है तो दूसरी ओर नारी के प्रति किए अत्याचार के लिए पश्चाताप् स्वरूप राम नारी के प्रति सहृदय रहने की प्रतिज्ञा करते हैं —

कभी न मेरे अन्त:पुर के मध्य
होगा षोडशियों का जमघट व्यर्थ
नहीं करूंगा सपने में भी अंग,
क्रयक्रीत दासी का भी अपमान....
छूकर देवि, तुम्हारे दोनों पैर
होता हूँ मैं आज प्रतिज्ञाबद्ध।[1]

प्राचीन कथा प्रसंग के माध्यम से नवीन संवेदना की अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी उमाकान्त मालवीय की, 'विद्रोह और समर्पण'[2] कविता

---

१ पाञ्चजन्य, प्रतीक, शरद, पृ १५

२. उमाकान्त मालवीय, नयी कविता, अंक चार, पृ० १३५

द्रष्टव्य है। इस कविता में पुराणों के नितान्त महत्वहीन से प्रतीत होने वाले `शिव-धनुष ` के माध्यम से कवि ने युगीन सत्य को अभिव्यक्ति दी है। शिव-धनुष का विद्रोह जनक के प्रति है, जिसने उसकी शक्ति एवं अस्तित्व को ही दांव पर लगा दिया था। वस्तुत: युगीन यथार्थ के मध्य यह `व्यक्तित्व ` की महत्ता का परिचायक है जबकि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के इस युग में अकिंचन-सा प्रतीत होने वाला `व्यक्ति ` भी अपने अधिकार की ही बात सोचता है —

मानता हूं
नृप जनक
थे गुणी, ज्ञानी प्रजापालक
किन्तु क्या अधिकार उनको था
करें नीलाम
यों सरे बाजार
सामने आहूत अभ्यागतों के
जो कि आये थे
विजय श्री रूप
सीता प्राप्त करने
धनुष मख में। [१]

विद्रोह का स्वर सीता स्वयंवर के इस निर्णय के प्रति है, जिस पर आधुनिक विद्रोही कवि का सर्वप्रथम ध्यान गया है —

नाम रख सीता स्वयंबर(?) का
साथ में प्रण भी किया घोषित
क्या यही था जानकी का स्वयंवरण ?

---

१. नयी कविता, अंक चार, पृ० १३२

सोचता हूं
भूमिजा पर हुए
इस अन्याय का परिहार क्या है ? [१]

'धनुष भंग' के मूल में स्थित राम की दिव्य शक्ति की परम्परागत धारणा के विरुद्ध आधुनिक कवि उसको नवीन मानवीय मूल्य के धरातल पर स्वीकार करता है । वह राम की अलौकिक शक्ति का प्रमाण नहीं वरन् धनुष की आत्मिक उदारता तथा सीता के प्रति सह-अनुभूति की भावना है । अत: वह दो हृदयों के मिलन के लिए सेतु बनकर टूटना भी स्वीकार कर लेता है । प्रसंग प्राचीन है किन्तु संवेदना नवीन है —

मैं बनूं वह सेतु
जिससे दो हृदय आकुल मिलें
और मंजिल हो विवशता
दो तटों की ।
ग्लानि है मन में
मिथ्या हो रहा प्रतिकार मेरा
किन्तु अनुभव कर रहा हूं
सुख समर्पण का
टूटना स्वीकार मुझको
राम के हाथों तनिक
ताकि पर्व सुहाग का
खाली न लौटे द्वार से । [२]

मनोविज्ञान के प्रभावस्वरूप चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में जहां नवीन व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई, वहां घटना के स्थान पर घटना की प्रतिक्रिया

---

१. नयी कविता, चार, पृ० १३२

२. वही, पृ० १३५

सोचता हूं
भूमिजा पर हुए
इस अन्याय का परिहार क्या है ? [१]

'धनुष भंग' के मूल में स्थित राम की दिव्य शक्ति की परम्परागत धारणा के विरुद्ध आधुनिक कवि उसको नवीन मानवीय मूल्य के धरातल पर स्वीकार करता है। वह राम की अलौकिक शक्ति का प्रमाण नहीं वरन् धनुष की आत्मिक उदारता तथा सीता के प्रति सह-अनुभूति की भावना है। अत: वह दो हृदयों के मिलन के लिए सेतु बनकर टूटना भी स्वीकार कर लेता है। प्रसंग प्राचीन है किन्तु संवेदना नवीन है —

मैं बनूं वह सेतु
जिससे दो हृदय आकुल मिलें
और मंजिल हो विवशता
दो तहों की।
ग्लानि है मन में
मिथ्या हो रहा प्रतिकार मेरा
किन्तु अनुभव कर रहा हूं
सुख समर्पण का
टूटना स्वीकार मुझको
राम के हाथों तनिक
ताकि पर्व सुहाग का
खाली न लौटे द्वार से। [२]

मनोविज्ञान के प्रभावस्वरूप चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में जहां नवीन व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई, वहां घटना के स्थान पर घटना की प्रतिक्रिया

---

१. नयी कविता, चार, पृ० १३२
२. वही, पृ० १३५

को ही विस्तार दिया गया है। घटना अनेक नहीं एक है और उसकी प्रतिक्रियास्वरूप मन के अनेक अन्तर्द्वन्द्वों की सृष्टि प्रबन्धकाव्यों में होने लगी। पं० उदयशंकर भट्ट ने अन्तर्द्वन्द्व के अनेक चित्रों में राम, वैदेही, कैकेयी, रावण, द्रोण, अश्वत्थामा जैसे पौराणिक एवं महाभारत के पात्रों के मन की प्रतिक्रिया के उतार-चढ़ाव का वर्णन किया है।[१]

राम के अन्तर्द्वन्द्व-चित्रण में उनके द्वन्द्व के आधार के रूप में रामायण में वर्णित तीन कृत्य हैं — सीता निष्कासन, वालिवध, शम्बूक वध। इस द्वन्द्व के घटनाहीन प्रसंग में स्वयं `कालपुरुष` का अवतरित होकर राम के कृत्यों का समाधान करना— स्थूल घटना न हो कर मनोवैज्ञानिक शैली है, जिसमें उनके अन्तर का भाव ही घनीभूत होकर आत्मसंघर्ष के दूसरे पक्ष का (संघर्ष दो धाराओं का है) प्रतिनिधित्व करता है। राम के द्वारा सीता को पुन: स्वीकृति देने के पश्चात् सीता के मन में अपने ऊपर किए गए (राम द्वारा) अत्याचार एवं दूसरी ओर पति स्नेह को लेकर अन्तर्संघर्ष छिड़ जाता है। इसी तरह रावण के अन्तर्संघर्ष में राम द्वारा घायल , अपनी मृत्यु के आभास से भयभीत रावण अपने कृत्यों के बारे में सोचता है। सीताहरण, बन्धु अपमान, तथा बन्धुवध आदि घटनाएं ही घनीभूत होकर उसके `अहं` को पराजित करना चाहती हैं। कैकेयी का आत्मसंघर्ष राम के वनवास के समय एवं राम के प्रति प्रेम तथा पुत्र भरत के प्रति के प्रेम को लेकर है। तात्पर्य यह है कि ये घटनाएं पुराणों अथवा रामायण,महाभारत एवं इतिहास से संबद्ध हैं किन्तु इसके आधार पर जिस `द्वंद्व` की सृष्टि होती है वह निश्चितत: कवि की मौलिकता है। और यह मौलिकता पुराण में वर्णित घटनाओं तथा पात्रों को नवीन अर्थ तथा अभिव्यक्ति प्रदान करने में है। अत: कथा साध्य नहीं साधन है।

श्री उदयशंकर भट्ट की इन रचनाओं में विश्लेषण बुद्धि, एवं विद्रोहात्मक दृष्टि का प्रभाव देखा जा सकता है। जिसमें उन्होंने राम, रावण, वैदेही,कैकेयी, अश्वत्थामा और द्रोण जैसे प्राचीन पात्रों के कृत्यों

के आन्तरिक खोखलेपन का उद्घाटन करके युग के यथार्थवादी तथा भव्य-मानवतावादी धारणा की नवीन कसौटी पर परखा है। `राम` के अन्तर्द्वन्द्व के चित्र को ही लें। सीता के प्रति किए अत्याचार के मूल में आधुनिक युग में समानाधिकारिणी नारी के अधिकार की बात को लेकर राम के व्यक्तित्व कोपरखा है। रामायणकालीन कवि या हिन्दी साहित्य के द्विवेदी युग का कवि भी उसे औचित्यप्रदान कर सकता है किन्तु अपेक्षाकृत नयेयुग का बौद्धिक एवं (रूढ़ परम्परा के प्रति) विद्रोही कवि स्पष्टत: उसे नारी के प्रति किए अत्याचार के रूप में देखता है ——

वह नारी प्रतीक करुणा की क्षमादया की पावन आभा,
दु:ख की,सहिष्णुता की प्रतिमा, त्याग,समर्पण की ममताकी ।
वह भी नहीं व्यक्ति, निष्ठा थी, नारी के गौरव की गाथा,
मिथ्या न्याय दंड ने जिसकी निर्मम बन हत्या कर डाली ।

<< << << <<

आगत युग की तुम्हें कभी भी नारी क्षमा न कर पायेगी ।

इसी तरह व्यक्ति स्वातंत्र्य में विश्वासी (व्यक्तिवादी दृष्टि) कवि शम्बूक तपस्वीके वध को भी अनैतिक मानता है ——

औ` शम्बूक तपस्वी का वध, निश्चय ही विवेक से खाली
यह आघात व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति दारुण है।[१]

और सीता के `पृथ्वी-प्रवेश` की परम्परागत घटना को कवि `विद्रोह` की नवीन भावभूमि प्रदान करता है —— सीता `धरती का अंक` मांगती है क्योंकि वह राम के व्यवहार से दुखित नहीं है वरन नारीके अत्याचार के प्रति विद्रोहिणी है——

वे नृप हैं नृप बनें रहें उत्तम यही,
नृपति रूप में उनके मैं त्यागी गई
नृपति रूप अभी उनका बदला है,
क्यों न हर सके दोष दुराग्रह प्रजा का ।[२]

<< << << <<

मम जीवन की कथा व्यथा के देश से
मुक्त करे नारी को नर की शक्ति से ।[३]

---

१. अंतर्दर्शन : तीन चित्र, पृ० ७६

२. वही, पृ० ५६

३. वही, पृ० ६०

कनुप्रिया[१]—

आधुनिक युग का नवीन बोध—महत्तु के समस्त सत्य एवम् सामान्य की स्वीकृति तथा `महाकाल` की परम्परागत धारणा के सम्मुख `क्षणानुभूतियों` के महत्व की स्थापना भी है। `इतिहास` के समक्ष व्यक्तिगत भावना की स्थापना की दृष्टि से ही डा० धर्मवीर भारती ने इस रचना में राधा और कृष्ण के प्रेम की परम्परागत पौराणिक कथा का आधार ग्रहण किया है। अतएव जहां सभी सत्यों के मूल्यांकन का प्रयत्न हो रहा है, वहां राधाकृष्ण के प्रेम की भी नवीन मूल्यों के धरातल पर पुनर्स्थापना हुई है — `ऐसे भी क्षण होते हैं जब लगता है कि इतिहास की दुर्दान्त शक्तियां अपनी निर्मम गति से बढ़ रही हैं जिनमें कभी हम अपने को विवश पाते हैं कभी विक्षुब्ध, कभी विद्रोही और प्रतिशोध युक्त, कभी वल्गाएं हाथ में लेकर गतिनायक या व्याख्याकार तो कभी चुपचाप शाप या सलीब स्वीकार करते हुए आत्मबलिदानी उद्धारक या त्राता....... लेकिन ऐसे भी क्षण होते हैं जब हमें यह लगता है कि यह सब जो बाहर का उद्वेग है — महत्व उसका नहीं है — महत्व उसका है जो हमारे अन्दर साक्षात्कृत होता है — चरम तन्मयताका क्षण जो एक स्तर पर सारे बाह्य इतिहास की प्रक्रिया से ज्यादा मूल्यवान् सिद्ध हुआ है, जो क्षण हमें सीपी की तरह खोल गया है — इस तरह की समस्त बाह्य, अतीत, वर्तमान और भविष्य— सिमट कर उस क्षण में पुंजीभूत हो गया है, और हम, हम नहीं रहे।`[२]

सहजता, रागात्मकता, गहरी संवेदना के क्षणों की सार्थकता राधा के व्यक्तित्व के माध्यम से व्यंजित हुई है तो `इतिहास` कृष्ण का व्यक्तित्व है, क्योंकि `इतिहास` को झेलते हुए कृष्ण का वह रागात्मक व्यक्तित्व दब जाता है पर राधा तो वहीं खड़ी है — वहीं अपने प्रेम के धरातल पर —

---

१. ले० डा० धर्मवीर भारती

२. कवि की भूमिका से, पृ० ६

कृष्ण के बाल-गोपाल रूप को समझती हुई, स्मरण करती हुई। अत: वह अपनी 'भावना' के आधार पर ही कृष्ण को व्याख्यायित करना चाहती है।

राधा की सहज तन्मयता के क्षणों की कसौटी पर कृष्ण के व्यक्तित्व अर्थात् 'इतिहास' को व्याख्यायित करने के पूर्व कवि ने राधा एवम् कृष्ण के प्रेम से सम्बन्धित क्षणों का चित्रण किया है। पांच खण्डों में विभक्त इस प्रबन्धकाव्य के प्रथम दो खण्डों— 'पूर्वराग' तथा 'मंजरीपरिणाय' में (तथा किसी सीमा तक सृष्टि-संकल्प में भी) राधा की तन्मयता, प्रेम-विह्वलता के विविध क्षणों को अभिव्यंजित किया गया है।

कृष्ण-राधा के प्रेम से सम्बन्धित अनेकविधि केलि प्रसंगों का वर्णन पुराणों से लेकर आधुनिक युग के कृष्ण काव्य — में प्राप्त होता है। किन्तु नवीन संवेदना के धरातल पर कृष्ण-राधा के प्रेम को लेकर जिस रूप में इन प्रसंगों को रूपायित किया गया है उसमें घटनाएं कम, राधा की (रागात्मक वृत्ति के परिचायक) मन:स्थिति का वर्णन अधिक है। यहां कथा नहीं, विभिन्न घटनाओं के मध्य पड़े कृष्ण के राजनीतिक व्यक्तित्व — जो इतिहास की सार्थक इकाई बनने को तत्पर है — के प्रति राधा की प्रतिक्रिया है। अत: आधार पुराण का है, किन्तु राधा की संवेदना और रागात्मक अनुभूति अथवा तन्मयता के जिन 'क्षणों' का वर्णन कवि करता है वह आधुनिक हैं। यह आधुनिकता ही कवि की मौलिकता है।

'पूर्वराग'[१] में प्रेम के 'पूर्वानुराग' जन्य मन: स्थिति की प्रणय-कामना का सूक्ष्म एवं भावुक वर्णन मिलता है —

यह जो अकस्मात्
आज मेरे जिस्म के सितार के
एक-एक तार में तुम झंकार उठे हो —
सच बतलाता मेरे स्वर्णिम संगीत
तुम कब से मुझ में छिपे सो रहे थे।[२]

---

१. इस 'पूर्वानुराग' का वर्णन परम्परागत राधाकृष्ण से सम्बन्धित अनेक रचनाओं में मिल जाता है।

पूर्वानुराग के पश्चात् ही प्रणयारम्भ होता है । राधा की प्रणयानुभूति का वर्णन 'आम्रमंजरी' के गीतों के माध्यम से हुआ है । प्रणयानुभूति के चित्रण में कवि ने आधुनिक संवेदनाओं को व्यक्त किया है —

यह तुमने क्या किया प्रिय ?
क्या अपने अनजाने में ही
उस आम्र के बौर से मेरी क्वांरी उजली पवित्र मांग
भर रहे थे सांवरे ?

पर मुझे देखो कि मैं उस समय भी तो माथा नीचा कर
इस अलौकिक सुहाग से उद्दीप्त होकर
माथे पर पल्ला डाल कर
झुककर तुम्हारी चरणधूलि लेकर
तुम्हें प्रणाम करने —
नहीं आयी, नहीं आयी, नहीं आयी ।[१]

सम्पूर्णता के क्षणों में सतत् रीतते जाने की अनुभूति,[२] चन्दन बाँहों के कसाव के बिना देहलता के बड़े बड़े गुलाबों का रीसना, निभृत एकान्त में सारे जिस्म में उन्हीं आम्र बौर के टीस का अनुभव करना,इसी तरह की आधुनिक संवेदनाएं हैं । किन्तु राधाकृष्ण के प्रेम के परम्परागत रूप की झलक भी अनेक स्थलों पर मिल जाती है —

---

१. कनुप्रिया, पृ० १५
२. मेरे लीलाबन्धु, मेरे सहज मित्र की तो पद्धति ही यह है
कि वह जिसे भी रिक्त करना चाहता है
उसे सम्पूर्णता से भर देता है ।
— कनुप्रिया, पृ० ३०

घर से लौटते हुए
तीसरे पहर की अलसाई बेला में
मैं ने अक्सर तुम्हें कदम्ब के नीचे
चुपचाप ध्यानमग्न खड़े पाया,
मैं ने कोई अज्ञात वन देवता समझ
कितनी बार तुम्हें प्रणाम कर सिर झुकाया
पर तुम खड़े रहे, अडिग, निर्लिप्त, वीतराग, निश्चय
तुमने कभी उसे स्वीकारा ही नहीं । [१]

इसी तरह यमुना के तट पर सारे वस्त्र किनारे रख कर जल में स्वयं को निहारना, तथा यमुना की श्यामल छाया में कृष्ण के शरीर को अनुभव करना, जैसी अनुभूतियों का चित्रण मध्ययुगीन वातावरण का स्मरण कराती है ——

मानों यह यमुना की सांवली गहराई नहीं है
यह तुम हो जो सारे आवरण दूरकर
मुझे चारों ओर से कण कण रोम-रोम
अपने श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन में पोर पोर
कसे हुए हो । [२]

इसी तरह गृहकाज से अलसाकर अक्सर कदम्ब की छांह में शिथिल, अस्त-व्यस्त, अनमनी सी पड़ी रहना, रास की रात में कृष्ण के नील सजल तन की परिक्रमा देकर नाचने वाले, पुन: घर की ओर लौटने वाले उन्हीं चरणों को कोसने की मन:स्थिति भी राधाकृष्ण के प्रणय के मध्ययुगीन रूप

---

१. कनुप्रिया, पृ० १५
२. वही, पृ० १८

के निकट प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त अर्धोन्मीलित कमल भेजकर राधा को सांझ के विरिया बुलाना या कि अंजुरी भर बेले के फूल को भेजकर राधा को याद करना; आस्त्य के दो कटावदार पुष्प को भेजकर राधा के दोनों पांवों में महावर लगाने की इच्छा व्यक्त करना[१] जैसी स्थितियों के वर्णन में कवि रीतिकालीन सामन्ती वातावरण की सृष्टि करता है।

राधा का प्रेमावेग 'तुम मेरे कौन हो' में चरम सीमा पर व्यक्त होता है। कृष्ण के सृष्टि संकल्प के रूप में अपनी सम्बद्धता को अनुभव करती हुई राधा शक्ति के संचरण में सम्पूर्ण सृष्टि में परिव्याप्त होकर विराट् एवं दुर्दान्त हो उठती है। पुन: कृष्ण की इच्छा पर अकस्मात् सिमट कर सीमा में बंध जाती है। राधा के विराटत्व की यह धारणा पुराणों तथा भक्ति साहित्य में भी प्राप्त होती है, किन्तु यहां कवि उसे नया संदर्भ प्रदान करके नवीन संवेदना की सृष्टि करता है —

तुमने चाहा है कि मैं इसी जन्म में
इसी थोड़ी-सी अवधि में जन्म जन्मान्तर की
समस्त यात्राएं फिर से दोहरा लूं
और इसीलिए सम्बन्धों की इस घुमावदार पगडण्डी पर
क्षण क्षण पर तुम्हारे साथ
मुझे इतने आकस्मिक मोड़ लेने पड़े हैं।[२]

---

१. कितनीबार जब तुमने आस्त्य के दो
उजले कटावदार फूल भेजे
तो मैं समझ गयी कि
तुम फिर मेरे उजले कटावदार पांवों में
— तीसरे पहर—टीले के पास वाले
सहकार की घनी छांह में
बैठकर महावर लगाना चाहते हो। — कनुप्रिया, पृ० २६

२. वही, पृ० ४०

`पूर्वानुराग ` से लेकर `तन्मयता के क्षणों ` की प्रेमानुभूति की इस यात्रा में कवि, राधा के मन को, `सृष्टि-संकल्प` तक पहुंच कर, प्रश्नशील बना देता है और उसकी प्रश्नाकुलता ही वह नवीन संवेदना है जिसे कवि `इतिहास` खण्ड में व्यक्त करता है। परम्परागत रूप में (भक्तिकाव्य में) राधा विरहानुभूति में कृष्ण के अधिक से अधिक निकट होती गई है। `भक्ति` के अन्तर्गत विरह ही लक्ष्य प्राप्ति का साधन होता है। यहां आधुनिक युग की कनुप्रिया को भी विरह के दु:ख में इतिहास की सार्थकता को झेलना पड़ता है। उसका `कनु ` उसे सेतु सा कांपता छोड़ कर दूर चला गया है —

सुनो कनु सुनो
    क्या मैं सिर्फ एक सेतु थी तुम्हारे लिये
    लीला भूमि और युद्ध क्षेत्र में
अलंघ्य अंतराल में।

अब इन सूने शिखरों, मृत्यु घाटियों में बने
सोने के पतले गुंथे तारों वाले पुल-सा
निर्जन
निरर्थक
कांपता-सा, यहां छूट गया — मेरा यह सेतु जिस्म
        — जिसको जाना था वह चला गया। [१]

यहां से ही कनुप्रिया अपने व्यक्तिगत पीड़ा के धरातल पर, अपनी सफलता की कसौटी पर इतिहास को देखती है। प्रेमानुभूति के व्यक्तिगत उपलब्धियों के धरातल पर वह इतिहास को झेलकर उससे बड़ी हो उठती है।

` इतिहास` खंड में पुराणों की लीला भूमि नहीं वरन् महाभारत के युद्ध-भूमि की व्यंजना हुई है। यहां ही कृष्ण की महानता व्यंजित है जो

---

१. कनुप्रिया, पृ० ६४

सखा द्वारिका जाने पर उन्हें मिलती है। जिसकी महानता सूरदास की राधा एवं गोपियों को भी अभिभूत नहीं करती, उनके लिए भी वह माखनचोर कृष्ण है और आधुनिक युग की कनुप्रिया को अभिभूत नहीं करती है। कृष्ण की सख्य-संगिनी केलि-सखि कनुप्रिया कृष्ण की महानता में भी अपने योगदान को नहीं भूल पाती है।[१] परम्परागत राधा की भांति वह विरह में आकुल-व्याकुल होकर आंसू की बाढ़ में सम्पूर्ण ब्रज के बह जाने के भय से भयभीत नहीं होती, वरन् आधुनिक युग की बौद्धिक कनुप्रिया कृष्ण के `विरह` में, अपने प्यार एवं कृष्ण के विराटत्व के मध्य की विसंगति को झेलती है। प्रेम के वर्णन में कवि पुराण, सूरदास और चण्डीदास अथवा रीतकालीन कृष्ण काव्य की भाव-भूमि की झलक दे जाता है, किन्तु `विरह` के वर्णन में (परम्परागत धरातल को छोड़कर) आधुनिक बोध से सम्बद्ध जिन प्रश्नों को राधा के विरह के माध्यम से व्यक्त करता है — वह कवि की मौलिकता है।

इतिहास की जिन घटनाओं का उत्तरदायित्व कृष्ण ने स्वीकार किया है उसके समक्ष राधा अकेली छूट जाती है। वह देखती है कि जिस कदम्ब के नीचे कृष्ण को देखकर कोई ध्यानमग्न देवता समझ प्रणाम करके जिस राह से लौटती थी, उन लता-कुंजों को रौंदती हुई कृष्ण की अठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध में भाग लेने जा रही है, जिस आम्रवृक्ष की डाल को टेककर कृष्ण ने वंशी में उसका नाम बार-बार टेरा था, वह डाल भी काट दी गई क्योंकि कृष्ण के सेनापतियों के वायुवेगगामी यानों की ध्वजाओं में वह नीची डाल अटकती है।

इतिहास की इन घटनाओं को झेलता हुआ कनुप्रिया का `प्रश्न` मुखरित हो उठता है। वह सोचती है कि यह मान लिया जाए कि यह तन्मयता का क्षण रंगे हुए, अर्थहीन, आकर्षक शब्द थे, तो फिर सार्थक

---

१. तुम्हारी महान् बनाने में
   क्या मेरा कुछ टूटकर बिखर गया है कनु !
                    —— कनुप्रिया, पृ० ६७

क्या है ? यदि कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व सत्य है तो भी जिसने तन्मयता के क्षणों को जाना है, भोगा है — उसके लिए यह अर्थहीन है । इसलिए अर्जुन को स्वधर्म पढ़ाने वाले कृष्ण के व्यक्तित्व को चुनौती देती हुई राधा ने कृष्ण के शब्द की सार्थकता को नहीं समझा । उसके लिए केवल कृष्ण की 'वाणी' महत्वपूर्ण है —

> शब्द, शब्द, शब्द.....
> कर्म स्वधर्म, निर्णय दायित्व......
> मैं ने भी गली गली सुने है ये शब्द
> अर्जुन ने इनमें चाहे कुछ भी पाया हो
> मैं इन्हें सुन कर कुछ भी नहीं पाती प्रिय,
> सिर्फ राह में ठिठक कर
> तुम्हारे उन अधरों की कल्पना करती हूं
> जिनसे तुमने ये शब्द पहली बार कहे होंगे ।[१]

राधा के लिए इन शब्दों का अर्थ केवल "मैं" है,[२] मात्र अपने अस्तित्व का बोध है । यही राधा की चुनौती है । यही कवि का अभिप्राय भी है । इसलिए इतिहास के दुर्दम घटनाओं के समक्ष क्षणानुभूतियों के महत्व की स्थापना राधा की इस चुनौती के माध्यम से व्यक्त हुआ है, जिसका विशेष निरूपण 'समुद्र-स्वप्न' में दिखाई देता है । दायित्व के निर्वहण के लिए जिस युद्ध की विभीषिका की

---

१. कनुप्रिया, पृ० ७६

२. तुम्हारे शब्द अगणित है कनु--संख्यातीत
पर उनका अर्थ मात्र एक है -
मैं
मैं
केवल मैं ।
——कनुप्रिया, पृ० ७८

अवतारणा होती है — वह क्या निभ पाती है? स्वधर्म क्या निर्धारित होता है — " और जुए के पासे की तरह तुम निर्णय को फेंक देते हो .

जो मेरे पैताने है वह सुवधर्म
जो मेरे सिरहाने है वह अधर्म .... [१]

यहीं पर कृष्ण दायित्व, स्वधर्म, सत्यासत्य के निर्णायक इतिहास को त्याग कर राधा की आकांक्षा करते हैं। यह आकांक्षा ही `समापन` में व्यक्त हुआ है। यही इतिहास (कृष्ण) का व्यक्तित्व के प्रति (राधा) पुकार है। तन्मयता के क्षणों में प्राप्त व्यक्तिगत उपलब्धियों का आग्रह है जिसके समक्ष इतिहास छोटा है। उसी को व्यंजित करने के लिए कवि श्रान्त, क्लान्त कृष्ण के राधा के आंचलाश्रम में लौटाने की नवीन प्रसंगोद्भावना करता है —

क्या तुमने उस बेला मुझे बुलाया था कनु ?
लो मैं सब छोड़ कर आ गयी। [२]

मन्वन्तर[३] —

ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक में वर्णित विभिन्न मनुओं एवं उनके मन्वन्तरों के माध्यम से मानव-इतिहास की जो कथा वर्णित है तथा मनु, श्रद्धा, इड़ा के माध्यम से मन के जिन वृत्तियों की प्रतीकात्मकता की झलक[४] भी इन

---

१. कनुप्रिया , पृ० ८१
२. वही, पृ० ८७
३. ले० राजेन्द्रकिशोर, निकष ३-४, पृ० १७३
४. मनु, श्रद्धा, इड़ा से सम्बद्ध प्रतीकात्मक अर्थ पर कामायनी के विवेचन के संदर्भ में प्रकाश डाला गया है।

ग्रन्थों में मिल जाती है-- उसको स्वीकार करके `कामायनी` में `प्रसाद` ने मानव जीवन में बुद्धि एवं हृदय की तुलानात्मक अनिवार्यता पर प्रकाश डाला है तथा `संवरा` के लेखक ने भी पुरुष एवं नारी के सापेक्ष महत्व की व्याख्या की है --उसी कथा का आधार मन्वन्तर में भी ग्रहण किया गया है किन्तु इसके माध्यम से कवि ने किन्हीं शाश्वत सत्यों की स्थापना (कामायनी तथा संवरा की भाँति) नहीं की है प्रत्युत बौद्धिकता एवं विद्रोही दृष्टि से प्रेरणा ग्रहण करके युग के कटुयथार्थ को ही अभिव्यक्त किया है। अत: कथा पुराण की है किन्तु कवि ने उसे नवीन अर्थ प्रदान किया है।

जिस क्षणानुभूति की महत्वशीलता की चर्चा की गई है उसका ही परिणाम है कि कथा वर्णित नहीं है और न कथा-निर्वाह कवि को अभिप्रेत ही रहा है। कथ्य को प्रकट करने के लिए यहां कथा` छोटे छोटे संदर्भ चित्रों में ग्रहण (conceive) करके संकेतित की गई है।[१]

पुराणों में मन्वन्तर का प्रारम्भ महाप्रलय द्वारा सृष्टि-संहार तथा मनु द्वारा नवीन सृष्टि-स्थापना से होता है। कवि यहां महाप्रलय के स्थान पर सम्भावित तृतीय महायुद्ध की परिकल्पना करता है। इस कथा के सूत्र ~~के स्थान पर सम्भावित तृतीय महायुद्ध कीकल्पना~~ पुराणों में क्षीण रूप में ही प्राप्त होते हैं, अत: कामायनी तथा संवरा में अन्तर्वृत्तियों तथा भावों का ही वर्णन अधिक होता है। यहां भी कथा-तत्व केवल महाप्रलय है तथा महाप्रलय के पश्चात् मनु-श्रद्धा, इड़ा के त्रिकोण से मानव जाति के प्रारम्भ की घटना का सूक्ष्म संकेत भर ग्रहण किया गया है। इस आधार पर जिन रूपों में कथा का विस्तार होता है --वह कवि की मौलिकता है।

कथा का प्रारम्भ महाप्रलय की घटना से ही होता है। महाप्रलय से उत्पन्न `विध्वंस` के स्थानपर कवि युद्ध से उत्पन्न `अराजकता` को

---

१. कवि की भूमिका से।

स्थापित करता है, क्योंकि उसे महाप्रलय के पश्चात् की नहीं प्रत्युत् महायुद्ध के पश्चात् की नवीन सृष्टि में मनु के स्थान पर मनुपुत्रों की स्थापना करनी है।

पुराणों में वर्णित महाप्रलय में प्रकृति अधिक सचेष्ट रहती है। वहां प्राकृतिक तत्वों का संक्रमण होता है,[१] अत: मनु प्रकृति के विशृंखलित तत्वों के मध्य चिन्तातुर है किन्तु युद्ध अथवा महायुद्ध में मानवीय तत्वों (सामाजिक तथा व्यक्तिगत मूल्य, मानवीय आस्था, मानव भविष्य आदि) का संक्रमण तथा विनाश ही अधिक होता है। अत: `सूचना` के अन्तर्गत कवि ने जिस विनाश की कथा कही है उसमें मनु मूल्यगत संक्रमण तथा आस्था की विशृंखलता में अपने अनास्तित्व का अनुभव करता हुआ विकल है --

कल !
मेरी रोमों में लहर थी।
मेरे प्राणों में उन्माद था।
मेरे व्यक्तित्व में ऐश्वर्य था।
उफ केवल कल, वह आवेगा -- ,
और वह स्थिरता। ध्वनि इतनी ध्वनि
शब्द, शब्द चाहिए ! मैं कहां हूं।[२]

×× ×× ×× ××

अखण्ड ब्रह्माण्ड में और शून्य। शेष अशेष,
जो अहम् है, वह निरर्थक है
...... किन्तु ! अर्थ कहां है ? ..... श्रोता
मैं कौन हूं

---

१. कामायनी में ही महाप्रलय प्राकृतिक तत्वों के संचरण के रूप में व्यक्त है।
२. मन्वन्तर, निकष ३-४, पृ० १७३

आहत ! विकृत । निरावृत ! वृद्ध जीर्ण, मृत
किन्तु स्वर है
मैं हूं । जल है । स्वर है । मैं कौन हूं ।[१]

और इस महाप्रलय में बच रहते हैं मनु, श्रद्धा, और इड़ा । महाप्रलय से उत्पन्न विश्रृंखलता के पूर्व `सूचना` खण्ड में ही श्रद्धा पुत्र के जन्म की ओर भी कवि संकेत कर देता है ---

एक ही झटके में मैं अपने शरीर से अलग हो गई
देखो देखो कपाल के फूटे हुए तौके से
इस शिशु को देखो, जिसके फल बनने की आशा में
मैं लोकगीतों के तोते की तरह प्रतीक्षा करती रही ।[२]

`सूचना` के माध्यम से व्यक्त इस संकेत के पश्चात् मनु, श्रद्धा, संयोग, आकर्षण, इड़ा, द्वंद, त्रिविध तथा मन्वन्तर शीर्षकों के अन्तर्गत कवि अपने विषय को अभिव्यक्त करता है । उपर्युक्त कथा के प्रतीकात्मक अर्थ तथा मनोवैज्ञानिक (मानव मन के प्रवृति मूलक) आशय को भी कवि ने ग्रहण किया है किन्तु कामायनी में श्रद्धा की परम्परा को (अर्थात् मन के हृदय पक्ष को) लेकर इड़ा अपने योग के द्वारा (बुद्धि के योग के द्वारा) जिस मानवपीढ़ी का निर्माण करती है -उसकी घटना में ही नहीं वरन् अभिव्यक्ति में भी अन्तर आ गया है ।

कामायनी में महाप्रलय के पश्चात् मनु-श्रद्धा-संयोग से विकसित सृष्टि के प्रारम्भ में मानव का जन्म होता है किन्तु श्रद्धा से विमुख मनु `इड़ा` (अर्थात बुद्धि) के संसर्ग से सारस्वत प्रदेश में बौद्धिकता से उत्पन्न भौतिक .

---

१. मन्वन्तर, निकष ३-४, पृ० १७४
२. वही, पृ० १७३

यांत्रिक सभ्यता के कुपरिणामों को भोगते हैं। उससे परित्राण के लिए कवि ने मनुष्यों को पुन: श्रद्धा के गोद की ओर ही लौटाया है। छायावादी-भावधारा पर आधारित काव्यरचना कामायनी में यह घटना श्रद्धा अर्थात् हृदय के विजय की गाथा कही जा सकती है। परन्तु बौद्धिकता एवं संवेदनात्मक (भावात्मक नहीं) धरातल पर स्थापित नई काव्यधारा का कवि `बुद्धि` के आधार पर ही इस नवीन `सृष्टि` का आरम्भ करना चाहता है। क्योंकि बुद्धि से ही विवेक की दृष्टि प्राप्त होती है, जो यथार्थ की कटुता में भी सत्य को पहचान सके। `इड़ा` कवि की दृष्टि में इस विवेक की ही प्रतीक है। इसीलिए कवि नवीन प्रसंगोद्भावना करता है कि इड़ा मनुपुत्र को लेकर नव-सृजन का प्रारम्भ करती है — जिसमें मनु श्रद्धा के परम्परा का निर्वाह नहीं होता वरन् श्रद्धा एवं मनु को मनुष्यों की सृष्टि से निष्कासित कर दिया जाता है— क्योंकि यदि युग के यथार्थ को झेलने की शक्ति मनु में नहीं है तो श्रद्धा के पास विवेक दृष्टि नहीं है[1]। `मन्वन्तर` खण्ड में श्रद्धा एवं मनु के निर्वासन के पश्चात् इड़ा द्वारा (अर्थात् बुद्धि अथवा विवेक द्वारा) मनु पुत्रों की स्थापना होती है —

> इसीलिए, आओ मेरे असंख्य लाडलो,
> आज मैं तुम्हें--तुम सब को
> इस उद्घटित भूमिका में
> मनु के स्थान पर स्थापित करती हूं।[2]

---

१. किन्तु मनु-पुरुष
   और श्रद्धा- दुलारी नारी—
   अत्यधिक भोग और भोग से उत्पन्न करुणा से नपुंसक आत्मा।
   —— मन्वन्तर, निकष ३-४, पृ० १८३

२. मन्वन्तर, निकष , ३-४, पृ० १८८

संशय की एक रात[१]—

` संशय की एक रात` में कथा नहीं प्रत्युत कथा का एक अति-लघु प्रसंग है जिसको कवि ने संवेदना एवं चिन्तना के द्वारा नवीन विस्तार प्रदान किया है। रामायण में राम-रावण युद्ध के मध्य चिन्तातुर राम का वर्णन है, किन्तु आधुनिक युग के कवि ने उस चिन्ता को संशय की स्थिति में परिवर्तित कर दिया है।

` संशय` आधुनिक युग के मनोवृत्ति की विशेषता है। संशय ही बुद्धि को वह तार्किक दृष्टि प्रदान करती है जिसके आधार पर किसी कृत्य के औचित्य-अनौचित्य को समझा सकता है। राम का `संशय` युद्ध की अनिवार्यता को लेकर है। दो महायुद्धों से उत्पन्न विषमता एवम् सम्भावित तृतीय महायुद्ध के आतंक के मध्य युद्ध की अनिवार्यता के प्रश्न ने आधुनिक युग के सम्पूर्ण मानव-पीढ़ी को व्याकुल किया है। तथा कथित अधुनातन काव्यधारा के अनेक-कवियों ने युद्ध तथा युद्ध से उत्पन्न विषमता से संतस्त्र मानव तथा मानव समाज का चित्रण किया है। इस समस्या की अभिव्यक्ति के लिए इन कवियों ने महाभारत युद्ध की प्राचीन घटना को विशेष रूप से ग्रहण किया है; किन्तु नरेश मेहता ने राम के जीवन में घटित होने वाले युद्ध के माध्यम से इस समस्या को देखा है।

` निराला ` के `राम कीशक्ति पूजा` की भांति यहां भी कवि ने राम रावण युद्ध के मध्य पड़े राम की मन:स्थिति को काव्य का विषय बनाया है।किन्तु दोनों ही काव्य-रचना की भावधारा में उतना ही अन्तर है जितना कि छायावादी भावसंकुलता एवं नई काव्यधारा में बौद्धिक संवेदनात्मकता में। वहां राम के व्यक्तित्व का द्वंद्व रावण की अपराजेयता के भय से उत्पन्न हुआ है, तो यहां सीता प्राप्ति के लिए होने वाले युद्ध के औचित्य के प्रति राम संशयशील है। वहां भावों की कोमल तथा विराट् अभिव्यक्ति है, यहां चिन्तन है। अत: दोनों रचनाओं की अभिव्यंजना में पर्याप्त अन्तर है।

---

१. श्री नरेशमेहता: प्रकाशन समय सन् १९६२ ई०।

कथा का विस्तार राम के जीवन की एक रात्रि की घटना तक सीमित है। सेतुबंध एवम् लंकाप्रयाण की घटना रामायण तथा पुराणों में भी प्राप्त है। उस परम्परागत घटना के आधार पर संशयात्मक मन के जिन संचारी भावों के रूप में राम के चिन्तन को व्यक्त किया गया है वह कवि की मौलिक उद्भावना है।

महाभारतयुद्ध के बीच संशयशील अर्जुन की तरह युद्ध अभियान के पूर्व राम भी शंकालु हो उठते हैं। अर्जुन का संशय था कि अपने अधिकार के लिए स्वजनों से युद्ध करना क्या उचित है, राम के मन की शंका भी यही है कि पत्नी के लिए इतना इतने बड़े युद्ध को स्वीकार करना क्या उचित है —

अन्य प्रायश्चित करें मेरे लिए,
दु:ख भोगे वनों में भटके कारण ही
बिना बनवास की आज्ञा मिले।

x x x x x x x x

व्यक्ति का बनवास
परिजन और पुरजन के लिए
अभिशाप क्यों बन जाएं ?
व्यक्तिगत मेरी समस्याएं
क्यों ऐतिहासिक कारणों को जन्म दें।[१]

इस संशय के समाधान के लिए कवि ने दशरथ, लक्ष्मण, वानर, विभीषण तथा हनुमान के माध्यम से अनेकवर्गीय विचारधाराओं को व्यक्त किया है। ये पात्र विभिन्न विचारों के प्रतीक हैं। यहीं पर कवि दशरथ की मृतात्मा के आगमन की कल्पना करता है। शिविर में राम चिन्तातुर टहल रहे हैं। उन्हें सूचना मिलती है कि दक्षिण के सेतुबन्धु के पीछे एक अलौकिक छाया घूमती दिखाई

---

१. संशय की एक रात, पृ० २६

दे रही है। यह छाया दशरथ की मृतात्मा है तथा उनकी गोद में फड़फड़ाता पक्षी मृत जटायु है। इस घटना की मौलिक उद्भावना के द्वारा कवि राम के प्रश्नों का उत्तर दिलाना चाहता है[1]। दशरथ `सत्य` के शाश्वत पक्ष के प्रतीक हैं जिसके अनुसार राम का यह संशय असत्य है क्योंकि उन्हें अपनी `अनास्था` अथवा `संशयी वृत्ति` से नहीं वरन् असत्य से युद्ध करना है[2]——

राम !
मोह असत्य है
किसी का भी हो
तुम्हें अपनी अनास्था से नहीं
संशयी व्यक्तित्व से नहीं
तुम्हें लड़ना युद्ध है
असत्य से ।[3]

दशरथ महाकाल की कसौटी बनकर राम के प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करते हैं। महाकाल के समक्ष राम का अस्तित्व `कर्म के प्राण` से अधिक नहीं है[4]——

उस अजन्मे,अमर्त्य महाकाल को
न जन्म से
न मृत्यु से
न सम्बन्धों से

---

१. इसी तरह की घटना-योजना पं० उदयशंकर भट्ट के `अन्तर्द्वन्द्व` के द्वन्द्व-चित्रों में राम के अन्तर्द्वन्द्व के अन्तर्गत मिलती है जिसमें महाकाल स्वयं प्रकट होकर उनके कृत्यों की व्याख्या करता है।

२. गीता में कृष्ण का समाधान भी यही था

३. संशय की एक रात, पृ० ५६

४. संशय की एक रात ६०।

योजित या विभाजित किया जा सकता है
उस महानियम के निकट
हम केवल कर्म के दाता हैं
जो कि बलि पशु से बाधित समर्पित
उस अविनाशी
महाकाशी अग्नि चक्र के ।

इसी प्रकार इस युद्ध में सहयोगी वानरों के लिए(जो साधारण जन के प्रतीक हैं) यह युद्ध विद्रोह का प्रतीक है —'मानव के विद्रोह भाव का
प्रथम
किन्तु अद्भुत प्रतीक है ।'[१]

इस तरह युद्ध का निर्णय केवल राम नहीं लेते हैं । उनका व्यक्तित्व संशयशील होकर इस द्वन्द्व को झेलता है । यह राम का व्यक्तिगत प्रश्न भले ही हो किन्तु असत्य का प्रतीक है, साम्राज्यवाद का प्रतीक है । जिसके विरुद्ध युद्ध करना दायित्व[२] है, संकल्पित प्रज्ञा है, यशस्वी निष्ठा है, उत्सर्गित इच्छा है ।[३]

---

१. संशय की एक रात, पृ० ७६
२. युद्ध दायित्व है ।
किसी भी पीढ़ी के लिए दायित्व है
आवेश नहीं । 'संशय' की एक रात, पृ० ८१

३. हमारी जलती हुई आंखों में
बंधी हुई मुट्ठी में
भिंचे हुए ओठों में
इन उद्धत पैरों में
संकल्पित प्रज्ञा है
यशस्वी निष्ठा है
उत्सर्गित इच्छा है ।
—— संशय की एक रात

युद्ध अधिकार अर्जुन का दर्शन है अत: व्यक्ति का निर्णय ऐसे आधारों में पराजित हो जाता है। राम का संशयशील मन भी पराजित हो जाता है। वह युद्ध को अपने व्यक्तित्व के ऊपर से गुजर जाने देते हैं —

> अब मैं निर्णय हूं
> सबका
> अपना नहीं।[१]

राम ने युद्ध के लिए अपने को समर्पित कर दिया। राम-रावण युद्ध परम्परागत घटना है जिसको कवि असत्य नहीं कर सकता, किन्तु उसके आधार पर जिस द्वन्द्व का वर्णन उसने किया है वह कवि की मौलिकता है।

भावबोध का नवीन धरातल और पौराणिक चरित्र—

१. मानव विशिष्टता की स्थापना—

पौराणिक चरित्रों के स्वरूप-निर्धारण में इस नवीन काव्यधारा की मानव व्यक्तित्व सम्बन्धी धारणा है, जिसकी उत्पत्ति उपर्युक्त मूल्यगत संक्रमण एवम् परिवर्तित भावबोध के धरातल पर हुई है। वस्तुत: (जैसा कि पहले भी कहा गया है) जहां एक ओर इस नवीन काव्य प्रवृत्ति में सर्वप्रथम युग के यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान किया गया वहां दूसरी ओर मानव के स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्थापना भी हुई है। आज मूल्यों के विघटन से उत्पन्न युग की निराशा, कुंठा, अनास्था को झेलता हुआ मानव का जो रूप है उसे 'सत्य' रूप में स्थापित करना इस काव्य धारा की विशेषता है। यह उस

---

१. संशय की एक रात, पृ० ६६

'नये मनुष्य' की प्रतिस्थापना भी है --जो अपनी खामियों एवं महानताओं, अपनी विवशताओं के साथ सामान्य तथा सहज है । नये मानव की सहजता को घोतित करने के लिए उसे 'लघु मानव' की संज्ञा से अभिहित किया गया है । लघुता की धारणा व्यक्ति को छोटा बनाना नहीं है, प्रत्युत महानता के समक्ष 'सामान्य' की स्वीकृति की विशेष दृष्टि का परिचायक है । 'अस्तु जब हम मनुष्य को मनुष्य रूप में ग्रहण करने की चेष्टा करेंगे तो निश्चय ही हमारी दृष्टि में सुपरमैन या अधिनायक का रूप न आकर उस व्यक्ति का रूप आएगा जो अपनी लघुता को लिए हुए अपने लघुपरिवेश में सतत गतिशीलता के साथ अपनी दृष्टि और वाणी में आज अपनी आस्था जीवित रखे है ।'[1]

मानव-विशिष्टता की यह भावना एक अर्थ में द्विवेदी-युग अथवा छायावाद युग के मानवतावाद से भिन्न है, वहां मानव की महत्व स्थापना के लिए ईश्वर को मानवीय धरातल पर अवतरित किया गया है । यहां लघु मानव की स्थापना के लिए पूर्वनिर्धारित महानता और अभिजात्यता का निषेध पहली शर्त थी; वहां समन्वय था-- यहां विद्रोह है । यहां उस परम्परागत धारणा पर युग के सम-सहज मानव का प्रहार है । अपने परिवेश को पूर्णतः स्वीकृति प्रदान करने की ईमानदारी के कारण, अपने दुःख-सुख की अनुभूति को प्रकृतः झेलने के विश्वास के कारण ईश्वर की निरपेक्ष महानता के समकक्ष मानव अधिक बड़ा है । डा० भारती की यह कविता उस परम्परागत महानता के प्रति 'सहज मानव' के विद्रोह की कथा है --

सुनते हैं तुम किसी अवतार में कछुए थे
अपनी इस वज्रोपम पीठ पर
तुमने यह धरती टिकाई थी

लेकिन उपयोग-क्या किया था
सुकोमल मर्मस्थल का ?

---

१. श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा, नयी कविता के प्रतिमान, पृ०१६१

उससे क्या नीचे उतर
बहा था अनस्तित्व का सागर
पतनोन्मुख होकर ?[१]

पूर्वनिर्धारित महानता के खोखलेपन एवं उसकी अर्थहीनता के बोध की सचेतन दृष्टि के मूल में इस युग की विद्रोहात्मक भावना के साथ ही धार्मिक अश्रद्धा, तथा अनास्था भी है। वस्तुत: इस युग के कवि के लिए `यथार्थ` ही सबसे बड़ा सत्य है तथा उसको झेलने की सचेतन एवं उत्तरदायित्व-पूर्ण दृष्टि ही सबसे बड़ी `महानता` है। यथार्थ के प्रति सम्पृक्त भाव ही `क्यूरियोमार्ट में अर्जुन की तलाश` में कृष्णा को अपने अस्तित्व के प्रति भी अविश्वासी बना देता है ——

सारथी पार्थ का
अपने विराटत्व में जन्मा
अपना ही संक्षिप्त रूप
ओ कुरुक्षेत्र
ओ महासमर के ध्वंसशेष
कहाँ हूं मैं........ ?

< <   < <   < <

कहाँ है मेरी स्थापित मर्यादाएं
कहाँ है...... ?
कहाँ है....... ?
कहाँ है....... ?

< <   < <   < <

कहाँ है मेरा विश्व कल्पित चित्र ज्ञान ?[२]

---

१. डा० धर्मवीर भारती, तीन पूजागीत, नयी कविता, अंक ३, पृ० ५७
२. लक्ष्मीकान्त वर्मा, क्यूरियोमार्ट में अर्जुन की तलाश में कृष्णा

युग के यथार्थ के समक्ष पुरातन कृष्ण का व्यक्तित्व अपने अस्तित्वहीनता का अनुभव करता है। महाभारत का अर्जुन यहाँ युग के यथार्थ — अभावों, कुंठाओं, व्यक्तिगत निराशाओं— से जूझता आज का मनुष्य है, जो प्रत्यंचा की डोर को शहर की दुकान पर खरीदता है। बिना कृष्ण के अकेला ही जूझता रहा है, हर विष को स्वयं ही पीता है, विराटत्व की अपेक्षा अधिक प्रज्वलित और प्रकाशवान है। वह `वामन` की भाँति अपनी लघुता में भी विराटत्व को समाहित किए हुए मौन है, अत: उसके समक्ष कृष्ण भी अपने को छोटा अनुभव करते हैं —

मैं नहीं कृष्ण इस अर्जुन का
यह तो स्वयं है वह मृत्तिका पिण्ड
जो इस्पात को झुकाता है
मैं यहाँ कहाँ हूँ।[1]

और यही है अपने लघुपरिवेश में यथार्थ से संघर्षरत लघुमानव सामान्य या सहज मानव का `अहं` तथा उसका आत्म-विश्वास जिसके आधार पर वह पूर्वनिर्धारित महान चरित्रों की महानता को व्याख्यायित करके देखने का साहस करता है। इस नये मनुष्य के साहस के मूल में युग की विश्लेषण-बुद्धि एवं बौद्धिकता ही है- जिसकी कसौटी पर कृष्ण की नैतिकता भी शंकारहित नहीं है —

आज तुम्हारा हर वाक्य धर्म सम्मत है
आज तुम्हारी हर दृष्टि नीतिविहित है
तुम आज उस वर्ग के संचालक हो
जो धर्म और नीति की खोखली मुट्ठी पर
जीता है।[2]

---

१. श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा, अतुरियोमार्ट में अर्जुन की तलाश में कृष्ण, पृ० ४८
२. केशु, सूर्यपुत्र के तीन मर्म कथन, कल्पना, अक्टूबर, १९५८

कनुप्रिया की राधा का व्यक्तित्व भी उस लघुता का द्योतक है, जो अपने व्यक्तिगत भावना की सीमा में ही सम्पूर्ण यथार्थ को व्याख्या-यित करके देखने का साहस करती है। इतिहास की दुर्दान्त शक्तियों के संचालक इतिहास- निर्देशक कृष्ण का व्यक्तित्व भी राधा की लघुता की सापेक्षता में अत्यन्त छोटा हो जाता है जिसको इतिहास के ~~निर्णय के~~ निर्णय को जुए के पांसे की भांति फेंक कर निर्धारित करना पड़ता है —

> और जुए के पांसे की तरह तुम निर्णय को फेंक देते हो
> जो मेरे पैताने है वह स्वधर्म
> जो मेरे सिरहाने है वह अधर्म.... [1]

युग की कटु विषमता की ~~सम्पृक्ति~~ से उत्पन्न यथार्थवादी दृष्टि और विद्रोह ने परम्परागत 'मनु' को शलभ एवम् नपुंसक देखा है और दया, माया, ममता, प्रेम, करुणा की मूर्ति श्रद्धा को विवेकहीन, क्योंकि प्रकारान्तर से वह छायावादी भावसंकुलता की द्योतक है जो युग के यथार्थ को अनुभूत नहीं करा सकती। युग के वास्तविकता की स्वीकृति ही वर्तमान युग के मानव चरित्र की सबसे बड़ी गरिमा हो सकती है। अत: स्वभावत: आज के कवि का ध्यान 'इड़ा' के महत्व की ओर जाता है जो मनु को लेकर-जीवन की अमूर्त आदर्शों या दार्शनिक तत्वों की ओर नहीं मुड़ती वरन् मनु पुत्र को लेकर जीवन के कठोर धरातल पर उतरती है। वह अपने विवेक बुद्धि के कारण इस युग के लिए वरेण्य है, क्योंकि उसके पास युग को समझाने की दृष्टि है —

> मैं ने जो सपने पाले, वे अपनी आवश्यकता से उत्पन्न हुए थे।
> मैं ने जिन सत्यों को उद्भावित किया था, उनमें स्थिति और
> स्थापकता भी थी। [2]

---

१. कनुप्रिया, पृ० ८१

२. मन्वन्तर, निकष ३-४, पृ १८२

२. संवेदना का नवीन धरातल और पौराणिक चरित्र—

पूर्व निर्धारित महानताओं के निषेध के धरातल पर ही वह रचनात्मक नवीन दृष्टि भी उपजती है जिसने प्राचीन महानताओं को भी लघु व्यक्तित्व के विविधगुणों से अनुवेष्ठित करके देखा है। इस लघु व्यक्तित्व के अन्तर्दर्शन की दृष्टि मनोविज्ञान ने दी है । मानव-मनोविज्ञान या फ्रायड के मनोविश्लेषणशास्त्र ने मानव व्यक्तित्व सम्बन्धी धारणा में अन्तर उपस्थित किया है। उसने अखण्ड मानव व्यक्तित्व को खण्डित कर यह सिद्ध किया है कि ऊपर से एक दृष्टिगत होने वाला व्यक्ति भी अनेक व्यक्तित्व को धारण करके चलता है।मानव व्यक्तित्व सम्बन्धी यह धारणा इसके पूर्व भी विद्यमान थी (जिसका विवेचन पूर्ववर्ती अध्याय में हुआ है) परन्तु मनोविज्ञान के पूर्ववर्ती प्रभाव के अनुसार मनुष्य सत्-असत् के दो वर्गीय झूले में झूलता हुआ दृष्टिगत होता है।किन्तु इस युग की जटिल परिस्थितियों के प्रभाव के कारण सत् असत् का यह द्वन्द्व भी अनेक वर्गीय होगया है। वस्तुत: आज का मनुष्य उस नदी के समान है जो कभी टेढ़ी, कभी सीधी, कभी स्वच्छ,कभी पंकिल, कभी गहरी, कभी उथली दिखाई देती है।जो व्यक्ति कभी महान् कार्य कर रहा है वही दूसरे क्षण अविश्वसनीय नीचता पर भी उतर जाता है।-१

अत: 'लघु मानव' की सीमाओं में पौराणिक पात्रों को अवतरित करते समय मानव व्यक्तित्व सम्बन्धी उपर्युक्त धारणा का प्रभाव भी पड़ता है। इसके सबसे उपयुक्त उदाहरण श्री उदयशंकर भट्ट के वे अन्तर्द्वन्द्व चित्र हैं जिसमें राम, सीता आदि पौराणिक पात्रों को भी द्वन्द्वशील प्राणी के रूप में देखा गया है। सत्य या न्याय को सीधे ढंग से ग्रहण करने वाले

---

१. 'A human being, psychology teaches, is more like a river than a bundle of qualities; running now fast, now slow, now clear, now turbid, he presents a different surface at every moment. Capable at one moment of supreme heroism, he is guilty at another of incredible meanness.' – C. E. M. Joad; "Guide to Modern Thought".

इन पात्रों के हाथों की वैशाखी टूट गई है और सत्य एवं न्याय के आधार के बिना सम्बल-हीन ये पौराणिक पात्र स्वयं,अपने समक्ष ही प्रश्नशील हो उठे हैं। अपने कृत्यों के प्रति आस्थावान् अखंडित व्यक्तित्व वाले महापुरुष राम यहाँ द्वन्द्वशील सामान्य पुरुष हैं। यही वह सामान्य भावभूमि है जहाँ आज के कवि ने परम्परागत महान् व्यक्तित्व को भी सामान्य मानवीय धरातल पर अवतरित करके प्राचीन पात्रों में नवीन संवेदना भरी है। यही कारण है कि इस अन्तर्द्वन्द्व के विविध चित्रों के अन्त में कवि,द्विवेदी युग के सदृश,राम के पूर्ववर्ती कृत्यों का विश्लेषण करके उसके औचित्य-स्थापना का आदर्शवादी समाधान देकर उनके परम्परागत गरिमा की रक्षा नहीं करता है, प्रत्युत आधुनिक द्वंद्वशील सहज अथवा सामान्य मानव के सदृश उनके द्वंद्व तथा आत्ममंथन को ही स्वीकृति प्रदान करता है :—

> यह मंथन आत्मा का राघव पंथ प्रशस्त करेगा मन का-
> दुराराध्य मानव के मन को समाराध्य होगा यह चिन्तन ।[१]

आधुनिक कवि इस युग के और मानव के द्वंद्व,उसके आत्मसंघर्ष, युग की विषमता से उत्पन्न उसके मन की निराशा, एवं कुंठा, की अभिव्यक्ति पौराणिक चरित्रों के साथ एक भाव होकर व्यक्त करना चाहता है। `सूर्यपुत्र के तीन मर्म कथन` के कर्ण के आत्म संघर्ष में युग के यथार्थ से जूझता मानव ही अभिव्यंजित हो रहा है —

> एक हाथ में छोटा-सा आकांक्षा का दिया
> और दूसरे में साहस का मजबूत चप्पू लिए
> मैं ने कई बार अँधियारे की नदी पार की है
> कई बार बालू और सीपी के चमकते तट पर आया

---

१. अन्तर्दर्शन : तीन चित्र, पृ० ८२

पर तुम्हारे प्रकाश की नैतिकता ने
हमेशा हमेशा ही मुझे
अंधियारे जल में धकेला
बार बार अकेला
तब एक दिन विवश होकर
मैं ने मुट्ठियां भींची
ओठ काटे
और बम्पू को तोड़ दिया
और तब से लेकर आजतक
रिरियाती प्यास का गला घोंटता
महराते दर्द का पर नोचता
बेचैन विक्षिप्त-सा
अंधेरे में जिया हूं। [१]

द्वन्द्वशीलता आधुनिक मानव के संघर्षरत व्यक्तित्व का आरोपण 'संशय की एक रात' के राम पर भी हुआ है --- जैसा कि कवि ने कहा है कि उसने राम को आधुनिक प्रज्ञापुरुष के रूप में देखा है। यह आधुनिक युग के सम्पूर्ण मानव पीढ़ी की प्रज्ञा है। राम का व्यक्तित्व, राम की शक्ति-पूजा के सदृश, अपने द्वंद के कारण मानवीय है किन्तु युद्ध की अनिवार्यता को भोगते हुए राम के जिस विवश एवं खंडित व्यक्तित्व का चित्रण नरेश मेहता ने किया है वह 'राम की शक्तिपूजा' के राम से भिन्न है। 'राम की शक्ति-पूजा के राम भी चिन्तातुर हैं किन्तु अपनी अद्भुत साधना शक्ति द्वारा अन्ततः वह अपराजेयता की प्राप्ति कर लेते हैं। प्राचीन गरिमा से युक्त पात्रों को भी विघटित दिखाने के विशेष आग्रह को हम संशयशील राम में देख सकते हैं। आधुनिक युग के, मानव-पीढ़ी के सदृश, राम भी इतिहास के समक्ष अपने को

---

१ 'कैशु' सूर्यपुत्र के तीन मर्मकथन

विवश पाते हैं, अकिंचन अनुभव करते हैं —

इतिहास
व्यक्तित्व को व्यक्ति नहीं
शस्त्र मानता है
अपने अन्धे उद्देश्यपूर्ति में ।[१]

<< <<   << <<

अनेक धाराओं में विभाजित मानव व्यक्तित्व रूपी नदी का दर्शन राम के व्यक्तित्व में भी होता है — जिसका परिचय मनोविज्ञान देता है ——

दो सत्य
दो संकल्प
दो दो आस्थाएं
व्यक्ति में ही
अप्रमाणित व्यक्ति पैदा हो रहा है
कौन जाने अप्रमाणित व्यक्तित्व में भी
अन्य आसित हो ।[२]

यही संघर्ष विभीषण के चरित्र के माध्यम से व्यक्त हुआ है । विभीषण भी युद्ध को अनिवार्य मानता है पर राष्ट्र केप्रति का कर्तव्य उसे उद्वेलित करता है ।[३] वस्तुत: इस टूटन को हर मनीषा झेलता

---

१. संशय की एक रात, पृ० १००

२. वही, पृ० ३९

३. अपने राष्ट्र के प्रति
क्या यही कर्तव्य है राम
जब पर हो रहे आक्रमण के साथ हूं ।
—वही, पृ० ८५

है,[१] क्योंकि राम तथा विभीषण का अन्तर्द्वन्द्व इस युग के संत्रस्त मन: स्थिति का चित्र है, जिसकी सज्जता अपने ऊपर से युद्ध को गुजर जाने देती है। यह दर्द झेलना ही आधुनिक मानव की सार्थकता है —

शान्त हो
ओ सूर्यतापी शिला ! शान्त हो।
तुम स्वयं सूर्य नहीं।[२]

x x x x x x x x

अनेक सूर्यों को एक सम्भावना की तरह
घटित हो जाने दो
अपने पाथरत्व में।
सम्भव है
ओ शिला
वह घटना ही सूर्यत्व दे जाए।[३]

आधुनिक युग के मानव की संवेदना का आरोपण `कनुप्रिया` के कृष्ण एवं राधा के व्यक्तित्व में हुआ है। राधा भी आधुनिक युग के व्यक्ति की सज्जता एवं लघुता की प्रतीक है। किन्तु अपनी लघुता के प्रति भी आत्म-विश्वासी राधा इतिहास पुरुष कृष्ण को व्यास्थापित करने अथवा अपनी भावना की तुलना में छोटा सिद्ध करने का अदम्य साहस रखती है। यहाँ पौरा-

---

१. इसीलिए टूटे हुए व्यक्तित्व की यह बात
हर मनीषा को झकझोरती है
राम !
— संशय की एक रात, पृ० ६०

२. वही, पृ० ११०

३. वही, पृ० १११

णिक या परम्परागत रूप में विकसित सूरदास, विद्यापति, अथवा चण्डीदास की राधा के स्थान पर आधुनिक युग की बौद्धिक राधा की स्थापना है, जो एक ओर उस तन्मयता के क्षणों को भोगती है तो दूसरी तरफ उसकी सार्थकता को अनुभव करने की तटस्थ दृष्टि रखती है और अपनी तन्मयता की क्षणानुभूतियों के धरातल पर कृष्ण की महानता को भी चुनौती देती है। पुराणों अथवा भक्ति साहित्य की राधा ने भी भावाकुल तन्मयता, तल्लीनता का आत्मसुख जाना था, तथा कृष्ण के राजनीतिज्ञ, इतिहास प्रवर्तक, द्वारिकाधीश, महाभारत-युद्ध के संचालक, अथवा युग-पुरुष, कृष्ण के व्यक्तित्व को अपने आन्तरिक सम्बद्धता (अपने प्रेम के कारण) के कारण झेला है किन्तु मथुरा-प्रस्थान के पश्चात् वह मौनभाव से इतिहास की इन घटनाओं के लिए कृष्ण को समर्पित करके अपनी अकिंचनता में, अपने भावाकुल प्रेम की असार्थकता में, मौन है। उसका ऐसा यह 'स्व' महत् के लिए स्वयं ही समर्पित था क्योंकि वह महानताओं का युग था -- लघुता या सहजता का नहीं।

नयी भावभूमि पर प्रतिष्ठित राधा के व्यक्तित्व में परम्परागत राधा के व्यक्तित्व को भी कवि ने समाहित करके देखा है। जिन अनेक सम्बन्धों के माध्यम से वह कृष्ण को जानती है वह भी परम्परागत है।[१] वह कृष्ण को बन्धु, आराध्य, शिशु और सखा के रूप में देखती है, तो अपने को बान्धवी, साधिका, माँ, सखी सखी के रूप में देखती है। किन्तु इन सभी सम्बन्धों का राधा के व्यक्तित्व में एक साथ संयोजित करके देखने की मौलिक कल्पना राधा के चरित्र को नवीन गरिमा प्रदान करता है --

और मैं बार-बार नये-नये रूपों में
उमड़-उमड़ कर

---

१. कृष्ण के प्रति रागानुगा भक्ति में इन विविध सम्बन्धों के माध्यम से कृष्ण की आराधना का विधान है--यशोदा का भाव शिशु का, ग्वालों का सखा, राधा, गोपियों का सखी या प्रेमिका भाव था।

तुम्हारे तट तक आयी
और तुमने हर बार अथाह समुद्र की भांति
मुझे धारण कर लिया—
विलीन कर लिया—
फिर भी आकुल बने रहे ।

इसके साथ ही `सृजन संगिनी` के रूप में राधा और कृष्ण के पारस्परिक सम्बन्धों को शक्ति और शक्तिमान पुरुष एवं प्रकृति के पौराणिक धारणा के रूप में देखा है ।

और यह प्रवाह में बहती हुई
तुम्हारी असंख्य सृष्टियों का क्रम
महज हमारे गहरे प्यार
प्रगाढ़ विलास
और अतृप्त क्रीड़ा की अनन्त पुनरावृत्तियां हैं —
ओ मेरे स्रष्टा
तुम्हारे सम्पूर्ण अस्तित्व का अर्थ है
मात्र हमारी सृष्टि
तुम्हारी सम्पूर्ण सृष्टि का अर्थ है
मात्र तुम्हारी इच्छा
और तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छा का अर्थ है
केवलमैं !
केवल मैं ! !
केवल मैं ! ! ! [१]

`कनुप्रिया` के कृष्ण का व्यक्तित्व भी द्वंद्व की दोहरी स्थिति

---

१. कनुप्रिया, पृ० ७४

को भोगता है। परम्परागत कृष्ण ने भी इन दोहरी मन:स्थिति को भोगा था। एक ओर उनका बाल गोपाल, वंशीवादक रूप है, रास की तन्मयता, राधा के प्रति का अनन्य सम्मोहन है, ब्रजबालाओं के प्रति की प्रेमानुभूतियों के ज्वारों को भोगता हुआ उनका लीलापुरुष रूप है तो दूसरी ओर इतिहास की दुर्दान्त शक्तियों को झेलता हुआ महाभारत के कृष्ण का रूप। किन्तु इतिहास की शक्तियों के समक्ष पराजित, अपनी सार्थकता के लिए कनुप्रिया के प्रेमाश्रय के लिए आकुल कृष्ण का रूप निश्चित ही कवि की मौलिक दृष्टि है —

> और तुम उदास होकर किनारे बैठ जाते हो —
> और विषादपूर्ण दृष्टि से शून्य में देखते हुए
> कहते हो- ' यदि कहीं उस दिन मेरे पैताने
> दुर्योधन होता तो.......... आह
> इस विराट समुद्र के किनारे ओ अर्जुन मैं भी
> अबोध बालक हूं। [१]

---

१. कनुप्रिया, पृ० ८२

অধ্যায় - অষ্ট

आधुनिक हिन्दी काव्य में पौराणिक प्रतीक

प्रतीक—

प्रतीक का शाब्दिक अर्थ—चिह्न प्रतिरूप, प्रतिमा अथवा स्थानापन्न माना जाता है। व्यापक रूप में 'प्रतीक' किसी वस्तु का ऐसा दृश्य प्रतिनिधि है जो उस वस्तु के साथ अभेद्य साम्य के कारण निर्मित है जिसको हम दिखा नहीं सकते वरन् उस वस्तु के साथ ' साहचर्य ' के कारण केवल अनुभव कर सकते हैं।[१]

अपने व्यापक रूप में 'प्रतीक' का व्यवहार मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होता है। किसी वस्तु अथवा विचार का प्रतीकीकरण मनुष्य का स्वभाव होता है। प्रतीकों का प्रसार, भाषा, साहित्य, कला, धर्म, दर्शन और विज्ञान से लेकर नित्यप्रति के व्यवहार में देखा जा सकता है। भाषा-वैज्ञानिकों का विचार है कि अपने प्रारम्भिक रूप में मनुष्य ने अपने विविध भावों को व्यक्त करने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया है, वह उस भाव के ज्ञापक प्रतीक थे जो किसी वस्तु के रूप-आकार, और गुण के आधार पर बनाए गए थे।

---

१. ' SYMBOL, the term given to a visible object representing to the mind the semblance of something which is not shown but realised by association with it. ' — The Encyclopaedia Britannica; 14th Edition; Volume 21 - Page 700-701.

'चित्र-लिपि' के विकास में विशेष रूप में यही बात सिद्ध होती है। भाषा में विभिन्न शब्द भावों के वाहक 'प्रतीक' होते हैं। मनोविज्ञान के मनोविश्लेषण-धारा के विचारक फ्रायड मन: विश्लेषण के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि प्रतीक अचेतन मन की दमित भावना की अभिव्यक्ति है जो संतुष्टि के लिए रूप बदल कर प्रतीकों के रूप में प्रकट होता है। युंग के अनुसार प्रतीक दमित इच्छाओं के स्थानापन्न नहीं हैं वरन् इनके माध्यम से हम अचेतन मन की व्याख्या कर सकते हैं।

वस्तुत: मानव ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रतीकों का प्रयोग होता है, कदाचित् प्रतीकों का सबसे अधिक प्रयोग धर्म के क्षेत्र में हुआ है। विश्व के सभी धर्मों में प्रतीकों की अनिवार्य स्थिति दृष्टिगोचर होती है। मूर्ति अथवा मन्दिरों का निर्माण अपना विशिष्ट स्थान प्रतीकात्मक अर्थ रखता है और विशेषत: इनके रूप-निर्धारण में प्रतीकात्मकता का विशेष ध्यान रहता है। निराकार, शून्य, निर्विकार ब्रह्म को 'प्रतिमा' का आकार देना, अनाम-ब्रह्म को नाम-रूप के माध्यम से जानना भी ईश्वर का प्रतीकीकरण है। पुराणों में विभिन्न अवतारों के आधार पर जिन कथाओं का निर्माण किया गया है उसके ऐतिहासिक महत्व को यदि स्वीकार भी किया जाए तो अधिकांश ऐसा बच जाता है जिसका प्रतीकात्मक अर्थ निकाले बिना समझा नहीं जा सकता है। पुराणों के त्रिदेव भी सृष्टि की तीन स्थितियों— सृजन, पालन तथा संहार-के प्रतीक हैं। विष्णु के रूप में संयुक्त कौस्तुभमणि आत्मा की उज्वलता, गदा, बुद्धि, शंख तथा धनुष राजस और तामस वृत्ति के प्रतीक हैं, चक्र काल का प्रतीक है तथा कमल कल्याण वैभव तथा आनन्द का प्रतीक है। इसी तरह शिव का त्रिशूल भी काम, क्रोध, लोभ, का प्रतीक है। तात्पर्य यह है कि मानव ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों से लेकर नित्य-प्रति की क्रियाओं में भी प्रतीकों का आश्रय ग्रहण किया जाता है।

साहित्य और प्रतीक—

शिल्प के क्षेत्र में प्रतीक केवल अदृश्य वस्तु का दृश्य चिह्न नहीं

है वरन् उसका सम्बन्ध काव्य की चेतना तथा अभिव्यक्ति की शैली से भी है। "प्रतीक से अभिप्राय किसी वस्तु की ओर इंगित करने वाला न तो संकेत मात्र है और न उसका स्मरण दिलाने वाला कोई चित्र या प्रतिलिपि ही है। यह उसका एक जीता जागता एवं पूर्णत: क्रियाशील प्रतिनिधि है, जिस कारण इसे प्रयोग में लाने वाले को इसके व्याज से उसके सभी प्रकार के भावों को सरलता पूर्वक व्यक्त करने का पूरा अवसर मिल जाया करता है।"[१] अत: प्रतीक तथा सामान्य भाषा-अलंकरण के उपकरणों में अन्तर है। कवियों द्वारा काव्य-सृजना के क्षण में अनायास अलंकारों का प्रयोग हो जाता है, किन्तु अनेक कवियों की रचनाओं में अलंकारों के सायास प्रयोग में भाषा अलंकरण की प्रवृत्ति मुख्य होती है क्योंकि अलंकारों का सम्बन्ध भाषा की सज्जा से है। प्रतीक का सम्बन्ध भी काव्याभिव्यक्ति के शैली से है किन्तु उसका सम्बन्ध सीधे कवि की अन्त:चेतना से अधिक है सज्जा से कदाचित् उतना नहीं। प्रतीकों में उसके प्रतिनिधित्व गुण के कारण मनुष्य के विचार एवम् भावना निहित रहती है।[२] क्योंकि "एक ओर उसके द्वारा बाह्य सत्य का प्रतिपादन और दूसरे एक ऐसी दशा का द्योतन होता है जो मानव मन की भावनाओं का एक आवश्यक स्वरूप है।"[३]

प्रतीक शब्द का प्रयोग यद्यपि प्राचीन साहित्य में प्राप्त होता है किन्तु वह किसी वस्तु का प्रतिनिधि न होकर अंग या अवयव है —

---

१. परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख, पृ १४२

२. ' The world is a symbol and its meaning is constituted by the ideas, images and emotions which it raises in the mind of the hearers. '
Symbolism its meaning and effects - Whithead.
Page 2.

३. वीरेन्द्रसिंह, हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास, पृ० ५४

"अंग प्रतीकौं अवयव: ।" इस शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में भी प्राप्त होता है — "पृथु प्रतीक मध्येधे अग्नि: (पृथु ने पृथ्वी का प्रतीक बनाया)। इन सब व्याख्याओं से यह प्रतीत होता है कि प्रतीक उसे कहते हैं जो किसी का अवयव हो अंग हो ।'[१] आधुनिक हिन्दी काव्य में `प्रतीक` शब्द का प्रयोग जिस रूप में होता है उसका सम्बन्ध फ्रांस के प्रतीक वादी आन्दोलन से है जिसका जन्म सन् १८८०—१८९० के मध्य विज्ञान के प्रभाव से उत्पन्न तत्कालीन फ्रांसीसी साहित्य में व्याप्त यथार्थवाद एवम् प्रकृतिवाद (Naturalism) की प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न हुआ था । वैज्ञानिक यथार्थवाद के विरुद्ध प्रतीकवादी कवियों की दृष्टि रहस्यवादी थी जो कि `भावनात्मक` विश्व को इस दृश्य जगत की वास्तविकताओं से अधिक महत्व देते थे ।[२] अपने उस अदृश्य जगत के रहस्यवादी भावों को दृश्य जगत की भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग करते थे जिसका सामान्य अर्थ से भिन्न (उनके भावों के द्योतक) सांकेतिक अर्थ था । उस काव्यधारा ने इंगलैण्ड, अमेरिका आदि के काव्य साहित्य को भी प्रभावित किया है । हिन्दी साहित्य में इसका किन रूपों में प्रभाव पड़ा वह अलग से विवेचन का विषय है किन्तु नवीन `अर्थ-संयुक्त` प्रतीकों ` का प्रयोग निश्चितत: इस काव्यधारा का अप्रत्यक्ष[3] प्रभाव है ।

जैसाकि ऊपर कहा गया है कि आधुनिक काव्य साहित्य में प्रतीक जिस अर्थ का द्योतक है वह प्राचीन साहित्य में प्राप्त नहीं (`सिम्बल` के

---

१. हिन्दी विश्वकोश, भाग ७, पृ० ४४८

२. ' Against this Scientific Realism the Symbolists protested, and this protest was mystical in that it was made made on behalf of an ideal world which was in this judgment, more real than that of the success.'

— The Heritage of Symbolism; C. M. Bowra.
Page 2.

३. अप्रत्यक्ष इसलिए कि वह अंग्रेजी साहित्य के माध्यम से हिन्दीसाहित्य में आया ।

" अंग प्रतीकों अवयव: ।" इस शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में भी प्राप्त होता है — " पृथु प्रतीक मध्येधे अग्नि: (पृथु ने पृथ्वी का प्रतीक बनाया)। इन सब व्याख्याओं से यह प्रतीत होता है कि प्रतीक उसे कहते हैं जो किसी का अवयव हो अंग हो ।'[१] आधुनिक हिन्दी काव्य में 'प्रतीक' शब्द का प्रयोग जिस रूप में होता है उसका सम्बन्ध फ्रांस के प्रतीक वादी आन्दोलन से है जिसका जन्म सन् १८८०--१८९० के मध्य विज्ञान के प्रभाव से उत्पन्न तत्कालीन फ्रांसीसी साहित्य में व्याप्त यथार्थवाद एवम् प्रकृतिवाद (Naturalism) की प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न हुआ था । वैज्ञानिक यथार्थवाद के विरुद्ध प्रतीकवादी कवियों की दृष्टि रहस्यवादी थी जो कि 'भावनात्मक' विश्व को इस दृश्य जगत की वास्तविकताओं से अधिक महत्व देते थे ।[२] अपने उस अदृश्य जगत के रहस्यवादी भावों को दृश्य जगत की भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग करते थे जिसका सामान्य अर्थ से भिन्न (उनके भावों के द्योतक) सांकेतिक अर्थ था । उस काव्यधारा ने इंगलैण्ड, अमेरिका आदि के काव्य साहित्य को भी प्रभावित किया है । हिन्दी साहित्य में इसका किन रूपों में प्रभाव पड़ा यह अलग से विवेचन का विषय है किन्तु नवीन अर्थ-संयुक्त प्रतीकों ' का प्रयोग निश्चितत: इस काव्यधारा का अप्रत्यक्ष[३] प्रभाव है ।

जैसाकि ऊपर कहा गया है कि आधुनिक काव्य साहित्य में प्रतीक जिस अर्थ का द्योतक है वह प्राचीन साहित्य में प्राप्त नहीं ('सिम्बल' के

---

१. हिन्दी विश्वकोश, भाग ७, पृ० ४४८

२. ' Against this Scientific Realism the Symbolists protested, and this protest was mystical in that it was made made on behalf of an ideal world which was in this judgment, more real than that of the success.'

— The Heritage of Symbolism; C. M. Bowra. Page 2.

३. अप्रत्यक्ष इसलिए कि यह अंग्रेजी साहित्य के माध्यम से हिन्दीसाहित्य में आया ।

के रूप में अलग` काव्य-रूप` की संज्ञा नहीं मिली है) किन्तु प्रतीक-विधान के माध्यम से जिस काव्य-धर्म का अनुभव किया जाता है —वह अपरिचित नहीं है। प्राचीन साहित्य में प्रतीक विधान का बहुत महत्व रहा है। वेदों का सम्पूर्ण ज्ञान उपनिषदों के जीव, जगत और ब्रह्म सम्बन्धी दार्शनिक विचारधारा का विवेचन प्रतीकात्मक शैली में व्यक्त है। हिन्दी -भक्ति-साहित्य विशेषत: संत-साहित्य की रहस्य-साधना में प्रतीकों का आश्रय सर्वाधिक ग्रहण किया गया है।` भारतवर्ष में वेदों से लेकर आधुनिक युग तक प्रतीकों की परम्परा अविकल रूप में पाते हैं। इतने लम्बे समय में यदि सबसे कम प्रयोग कहीं पाते हैं तो वह रीतिकालीन युग है। प्रतीकों की परम्परा संस्कृत के अपभ्रंशों के द्वारा लोक कथाओं में सबसे अधिक प्राप्त होता है।`[1]

प्रतीक और अन्य अलंकार—

भारतीय साहित्य शास्त्र में जहां काव्याभिव्यक्ति के अंग-उपांगों के बारे में विस्तृत विवेचन हुआ है वहां प्रतीक का उल्लेख (नवीन अर्थ में) नहीं है किन्तु `भारतीय साहित्य-शास्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों में हमें परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप में ऐसे संकेत मिल जाते हैं जो प्रतीकात्मक स्थिति को स्पष्ट करते हैं। रस, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति और अलंकार सम्प्रदायों के अनेक तत्वों में प्रतीक भावना का स्वरूप मुखर हो जाता है।`[2] प्रतीक को यदि अलंकार शास्त्र के अन्तर्गत समाहित करके देखा जाए तो प्रतीक से मिलते हुए गुणों के वाहक अनेक अलंकार— उपमा, रूपक आदि — मिल जाएंगे, किन्तु इन अलंकारों एवं प्रतीक में तात्विक अन्तर है।` प्रतीक ` एवं उपमा में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि उपमा के लिए सादृश्य के आधार की आवश्यकता

---

1. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, आत्मनेपद, पृ० ६१
2. वीरेन्द्र सिंह:हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास, इस पुस्तक के लेखक ने रस, ध्वनि, रीति, अलंकार आदि की दृष्टि से प्रतीकात्मकता का विस्तृत विवेचन किया है।

होती है पर प्रतीक में सादृश्य की स्थिति भी हो सकती है किन्तु उसकी अनिवार्यता नहीं है। सादृश्य न होने पर भी उसमें भावोद्बोधन की शक्ति मात्र होनी चाहिए। अत: प्रतीक उपमा से अधिक व्यापक शब्द है और सादृश्य, साधर्म्य के साथ प्रभाव-साम्य अथवा केवल प्रभाव-साम्य के आधार पर भी प्रतीक की योजना हो सकती है। रूपक में भी प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत का आरोपण होता है। किन्तु उसमें उपमेय और उपमान का समान महत्व होता है। वस्तुत: जब उपमेय का उपमान में विलयन हो जाता है और उपमान ही सम्पूर्ण तत्व को घोतित करने लगता है तो वह प्रतीक कहलाता है। कथा-रूपक में(Allegory सम्पूर्ण कथा का प्रतीकीकरण होता है अत: कथा रूपकों के निर्वाह में प्रतीक की अनिवार्यता की स्थिति है तथा अन्योक्ति अलंकार से भी प्रतीक का निकट सम्बन्ध है। अन्योक्ति के लिए बहुधा जिस वस्तु को ग्रहण किया जाता है उसका प्रतीकात्मक महत्व होता है और उस वस्तु की प्रतीकात्मक अर्थ-योजना ही पूरे संदर्भ को नवीन अर्थ प्रदान करती है।

प्रतीक और बिंब—

आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक के समानान्तर बिम्ब की चर्चा हो रही है। बिम्ब में किसी एक वस्तु, भाव और विचार का कुछ दूर तक चित्रात्मक वर्णन होता है। अत: बिम्ब में विस्तार होता है किन्तु प्रतीक की सार्थकता उसकी संक्षिप्तता तथा सांकेतिकता में है। बिम्ब के लिए अनेक प्रतीकों को ग्रहण किया जाता है। बिम्ब का मुख्यकार्य अनुभूत वस्तु का प्रस्तुतीकरण (presentation) है और प्रतीक की सार्थकता किसी विचार के प्रतिनिधित्व (representation) में मानी जाती है।[१] एक ही बिम्ब की जब एक ही संदर्भ में बार-बार आवृत्ति होती है तो वह भी प्रतीक बन जाता है किन्तु

---

१. डा० जगदीश गुप्त, काव्य बिम्ब समस्या और स्वरूप, नयी कविता ७, पृ० १६५

उस प्रतीक की जब बार-बार आवृत्ति होती है तो वह अपनी अर्थवत्ता खोकर मात्र काव्य-रूढ़ि रह जाती है।

प्रतीक का सीमा-विस्तार और पौराणिक प्रतीक —

किसी भी भाव, विचार, वस्तु को अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीक का ग्रहण जीवन के किसी भी क्षेत्र से हो सकता है। प्रकृति के विविध उपकरणों, जीवन के दिन-प्रतिदिन की वस्तुओं, ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों, पौराणिक कथाओं और चरित्रों, धार्मिक-दार्शनिक विचारों, वैज्ञानिक उपादानों, यहाँ तक की कवि अपने व्यक्तिगत चिन्तन के धरातल पर किसी भी प्रतीक का प्रयोग कर सकता है। इस आधार पर प्रतीकों का वर्गीकरण भी किया गया है और उन्हें प्राकृतिक, राजनैतिक, दार्शनिक, धार्मिक, पौराणिक राजनैतिक जैसी श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

काव्य में पौराणिक उपकरणों (कथा, चरित्र या अन्य तत्व) का प्रतीक रूप में ग्रहण--पौराणिक प्रतीक कहलाता है। हिन्दी काव्य में ही नहीं वरन् विश्व के प्रत्येक काव्य-साहित्य में पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग होता है। पुराणों में वर्णित विभिन्न लौकिक, अलौकिक, कथाओं का विशिष्ट, सांकेतिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं नैतिक अर्थ है। किन्तु साहित्य में प्रयुक्त ये पौराणिक प्रतीक सर्वत्र ही अपने पौराणिक ~~सांकेतिक धार्मिक~~ अर्थ के वाहक नहीं होते हैं। वस्तुतः पुराणों से गृहीत ये प्रतीक कवि की चिन्तनधारा के अनुसार पौराणिक धार्मिक अभिव्यंजना से भिन्न संदर्भों से संयुक्त होकर नवीन अर्थ की प्रतीकात्मक अभि-व्यंजना भी कर सकते हैं।

पौराणिक कथाओं के प्रति जनमानस में एक सहज आकर्षण होता है। पौराणिकता का सम्बन्ध परम्परा से होने के कारण (पौराणिक कथाओं की भांति ही) पौराणिक प्रतीक के माध्यम से अभिव्यक्त कवि-कथ्य अधिक लोकग्राह्य होता है। दूसरी ओर 'परम्परा' के प्रति सम्पृक्ति-भाव के कारण कवि कथन को अधिक सांस्कृतिक गहराई प्राप्त होती है। प्रतीकों में

अनेक अर्थों की अभिव्यक्ति की क्षमता होती है और पुराणकथाएं स्वयं ही अन्य अर्थों की अभिव्यक्ति का निर्देश करती हैं। अत: पौराणिकता से संयुक्त प्रतीक अनेक नवीन अर्थों की दिशा का मार्ग खोल देती हैं। अत: जीवन के अन्य क्षेत्र तथा पुराणों से गृहीत प्रतीकों में अर्थक्षमता की दृष्टि से अन्तर है, जो उसे `अधिक सक्षम प्रतीकात्मक काव्याभिव्यक्ति` के गुण से विभूषित करती है।

आधुनिक हिन्दी काव्य में पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग की दिशा--

जैसा कि पूर्ववर्ती अध्याय में वर्णन किया गया है कि पुराण-कथाओं का प्रयोग दो रूपों में हुआ है -प्रथमत: कथाओं का सीधा प्रयोग, दूसरा विभिन्न कथा प्रसंगों एवं चरित्रों का प्रतीकात्मक रूप में प्रयोग। यद्यपि सीधे कथाओं के प्रयोग में भी विशिष्ट प्रतीकात्मक-अभिव्यंजना संभव है, किन्तु पौराणिक-प्रतीक से आशय उस लघु` पौराणिक-संदर्भ ` से है जो इन कथाओं से भिन्न स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त हुआ है। क्योंकि जैसा कि पूर्ववर्ती विवेचन से स्पष्ट हो जाता है प्रतीकात्मक अभिव्यंजना से भिन्न` प्रतीक ` वह अभिव्यक्ति शैली है जिसका सम्बन्ध कवि की अन्तर्प्रेरणा से भी है।

आधुनिक हिन्दी-काव्य साहित्य में पौराणिक कथाओं के प्रयोग की दिशा में विकास की अनेक श्रेणियाँ हैं -- जिसमें देखा गया है कि पुराण-कथा-प्रयोग की दिशा में उत्तरोत्तर कथा तत्व का तथा उनके धार्मिक अर्थ का ह्रास तथा पुराणेतर अन्य सामयिक, सामाजिक, राष्ट्रीय दार्शनिक तत्वों का समावेश होने लगा था। पौराणिक कथा-प्रयोग के विकास की एक दिशा यह भी है कि जहां एक ओर ये पुराणकथाएं अपने व्यापक पौराणिक संदर्भ से विरहित होकर युगीन-तत्वों की अभिव्यक्ति के लिए नवीन संदर्भों की सृष्टि करते हैं, वहां दूसरी ओर कथाएं क्रमश: अपने व्यापक पौराणिक परिवेश से विछिन्न मात्र` प्रतीक` रह गई हैं। वस्तुत: सच्ची पौराणिकता धीरे-धीरे चरित्रों को प्रतीकों में परिवर्तित कर देती है।`[१] प्रतीक रूप में पौराणिक

---

१. अंचल, धर्मयुग, ८ सितम्बर, १९६६

संदर्भ का ग्रहण कथाओं के प्रयोग का सबसे संक्षिप्त माध्यम है। अत: पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग के आग्रह के मूल में अन्य कारण और क्या है इसका विचार यथास्थान होगा किन्तु इतना तो सत्य है कि कवि की क्रमश: विकसित होती हुई सूक्ष्मताविधायिनी बुद्धि भी उसके मूल कारणों में से है — जो वृहत् कथा वर्णनों के स्थान पर पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग को अधिक महत्व देती है। इसीलिए अधुनातन काव्यधारा `नयीकविता` में (जो हिन्दी काव्य साहित्य के विकास का अबतक का अंतिमचरण है) पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है।

प्रतीकों का सम्बन्ध काव्याभिव्यक्ति की शैली तथा भाषा से भी है। इसका स्पष्ट उदाहरण हिन्दी के रहस्यवादी कविता में प्रतीकों के प्रयोग-बाहुल्य से भी समझा जा सकता है, जिसमें लोकोत्तर रहस्यवादी भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए सामान्य अलंकारों के परिधान को त्यागकर प्रतीकों के समर्थ माध्यम को स्वीकार किया गया है किन्तु `पौराणिक-प्रतीक` के प्रयोग की दिशा में यह नियम प्रत्येक पक्ष को पूर्णत: उद्भासित नहीं करता है। प्रकृति अथवा भौतिक जीवन के उपकरणों का ग्रहण मात्र उपकरण के रूप में हो सकता है किन्तु जाति विशेष अथवा देश-विशेष का जनमानस पौराणिक पात्रों अथवा उनसे सम्बद्ध कथाओं के प्रति धार्मिक श्रद्धा, अपनत्व तथा निकटता का अनुभव करता है। अत: पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग में कवि की `परम्पराबोध` की सचेतन दृष्टि भी काम करती है, जिसका अनिवार्य सम्बन्ध (मात्र भाषा या शैली से न होकर) कवि की अन्तर्प्रेरणा से है।

हिन्दी काव्य के विशिष्ट संदर्भ में प्रयुक्त पौराणिक प्रतीकों के रूप में परिवर्तित इतिहास का एक क्रम मिलता है। आधुनिक हिन्दी काव्य के प्रारम्भिक युग से लेकर अबतक, पुराणकथाओं के साथ पुराणेतर विषयवस्तु के समावेश का सम्बन्ध काव्य में विकसित चिंतन पद्धतियों से है[१] इसी प्रकार पौराणिक प्रतीकों के चयन उसके स्वरूप तथा अर्थनिरूपण का अनिवार्य सम्बन्ध भी विकसित चिन्तन पद्धति से है। अपने प्रारम्भिक रूप में पौराणिक प्रतीक

राष्ट्रीय भावों के उद्बोधक थे, क्रमश: काव्य प्रवृत्ति के विकास के साथ ही प्राकृतिक-उपकरणों तथा अन्तर्भावों की अभिव्यक्ति के माध्यम बने और अधुनातन काव्य प्रवृत्ति (प्रयोगवाद और नयी कविता) में व्यंगात्मक संदर्भों की सृष्टि करते हैं। अत: काल क्रम की दृष्टि से हम उन्हें निम्न-लिखित रूप में विभाजित कर सकते हैं —

१. राष्ट्रीय-भावना और पौराणिक प्रतीक।
२. छायावादी काव्य और पौराणिक प्रतीक।
३. प्रगतिवादी कविता और पौराणिक प्रतीक।
४. नयी कविता और पौराणिक प्रतीक।

इस दृष्टि से आधुनिक हिन्दी काव्य में पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग की एक स्पष्ट रेखा मूर्तिमान हो उठती है। यदि इन प्रतीकों के स्वरूप पर दृष्टिपात किया जाए तो यह भी स्पष्ट होगा कि अपने प्रारम्भिक रूप में ये पौराणिक प्रतीक अधिकतर सरल एवं सीधे हैं किन्तु विकास के अन्तिम चरण में उनका प्रयोग जटिल सत्यों की अभिव्यक्ति के लिए जटिल रूपों में हुआ है।

राष्ट्रीय भावना और पौराणिक-प्रतीक—

भारतेन्दु युग में उद्भूत एवम् द्विवेदी युग में पल्लवित होने वाली राष्ट्रीय भावना की काव्याभिव्यक्ति के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम पुराण-कथाएं थीं। द्विवेदी युग में पौराणिक प्रबन्धकाव्यों के बाहुल्य की ओर संकेत पूर्ववर्ती अध्याय में हो चुका है। उस युग के स्वातंत्र्य-आन्दोलन की अनेक स्थितियाँ एक ओर पुराण-कथाओं के माध्यम से (सीधे प्रबन्धात्मक रूप में) प्रस्तुत हुई हैं तो दूसरी ओर कथा-प्रतीकों और पात्र-प्रतीकों के सबसे लघुतम किन्तु सशक्त माध्यम का सहारा उस युग में अनेक कवियों ने लिया है। तत्का-लीन राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से सबसे अधिक

श्री माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं में हुई है। पौराणिक-प्रतीकों की भाषा में बात करना और जैसे उनकी विवशता थी जो अपनी देश प्रेम की भावना को बिना पौराणिक (अथवा ऐतिहासिक भी) संदर्भ लिए बात नहीं कर सकते थे। पौराणिकता से ओत प्रोत श्री मैथिलीशरण गुप्त का वैष्णव-व्यक्तित्व पौराणिक-प्रबन्धकाव्यों के माध्यम से अपेक्षाकृत अधिक व्यक्त हुआ है।

तत्कालीन विदेशी शासन चक्र के अत्याचारों से पीड़ित जनता को अपने पूर्वकालीन इतिहास और पुराण में वर्णित क्रूर आततायी सत्ता कंस और रावण तथा सुरों को निरन्तर पीड़ित करने वाले असुरों का स्मरण हो आना स्वाभाविक था। अत: स्थितियों की समानता (कालगत नहीं भावगत) स्वयं पुराणों में वर्णित पूर्वानुभव के कारणतत्कालीन ब्रिटिश शासन को दु:शासन, अंग्रेज शासकों को कंस और रावण, अंग्रेजों को राक्षसकुल या दानवकुल के नाम से अभिहित करके प्रतीकात्मक शैली में बात करने की सामान्य प्रवृत्ति प्राप्त होती है। स्वतंत्रता संग्राम ने महाभारत का प्रतीक ग्रहण किया तो भारतवर्ष का जहां एक ओर मानवीकरण (दैवीकरण) करते समय उन्हें देवकी या द्रौपदी कहा गया है; महाभारत की द्रौपदीकाचीर खींचकर दु:शासन उसे निरावरण करना चाहता था, तो यहां ब्रिटिश-शासन रूपी दु:शासन द्रौपदी माता रूपी भारत देश को पददलित कर रहा है। तत्कालीन स्वातंत्र-आन्दोलन को विशेष अवलम्ब प्रदान करने वाले भारत के सपूत श्री गांधी ही 'मोहन' अथवा कृष्ण हैं जो देश का उद्धार करने अथवा देश रूपधारी द्रौपदी के चीर का उद्धार करने को कटिबद्ध हैं ---

यह प्रियतम भारतदेश,
सदा पशुबल से जो बेहाल
'कैसे ?' --यदि वृन्दावन में रहे,
कहा जावे प्यारा गोपाल।

द्रौपदी भारत मां का चीर
बढ़ाने दौड़े यह महराज
मान ले तो पहनाने लगूं
मोर पंखों का प्यारा ताज ।[1]

समय के लम्बे अन्तराल को भुलाकर तत्कालीन कवियों ने देशवासियों की यंत्रणा को (विदेशी शासकों द्वारा प्राप्त) कृष्ण जीवन की विषम स्थिति के साथ समन्वित करके देखा है । उनके हाथ की हथकड़ियां कृष्ण के गले के हार की सदृश हैं तथा कृष्ण का जन्म स्थल होने के कारण (कंस का कारागार) यह कारावास भी उन्हें सहर्ष स्वीकार्य है —

प्यार ? इन हथकड़ियों से और
कृष्ण के जन्म स्थल से प्यार,
`हार` ? कंधों पर चुभती हुई
अनोखी जंजीरें हैं हार ।[2]

इन भारतवासियों के कारावास का कष्ट देवकी एवं वसुदेव के `यातना` का प्रतीक बन गया था जिसके माध्यम से स्वातंत्र्य-कृष्ण का जन्म होगा —

देश के बन्दनीय वसुदेव कष्ट में ले न किसी की ओट
देवकी माताएं हों साथ पदों पर आऊंगा मैं लोट
जहां तुम मेरे हित तैयार सजोगे कर्कश कारागार ।
वहां बस मेरा होगा वास, गर्भ का प्रियतर कारागार ।
वर्ष टल गये महीने शेष, साधना साधो रक्खो होश ।
इन्हीं हृदयों में लूंगा जन्म, जहां हो निर्मल जीवित जोश ।[3]

---

१. श्री माखनलाल चतुर्वेदी, हिमकिरीटनी, पृ १८४
२. ,, ,, ,, पृ १८६
३. ,, ,, माता जीवित जोश, पृ ६६

स्वतंत्रता के जन्मस्थल के रूप में कृष्ण का कारावास उस युग का एक सामान्य प्रतीक बन गया था तथा कृष्ण का जन्म स्वतंत्रता के जन्म का — जिसके आगमन के साथ ही परतन्त्रता का कपाट स्वयं ही खुल जाता है। यही भाव निम्नलिखितपंक्तियों में व्यक्त है —

होती हुं अवतीर्ण वर्हा में आपही
खुल जाते हैं आप एक निमिषार्ध में
वे अति विकट कपाट बन्द जो आप भी
रहते हैं परतंत्र जनों को बन्द रख
स्वयम परतंत्र जनों की गोद में
होते हैं झट प्रकट, मार्ग खुलते सभी ।[१]

गांधी के चरित्र को कृष्ण के साथ एकाकार करके `प्रतीक` का सृजन नीचे की पंक्तियों में अधिक स्पष्ट होता है। अंग्रेजों ने भी युरोपीय युद्ध में भारत की सहायता मांगी थी। उनका यह भिक्षादान दुर्योधन के भिक्षा-दान के साथ सामान्यीकृत होकर व्यक्त होता है और कृष्ण के प्रतीक `गांधी ने भी शस्त्र देकर दुर्योधन रूपी अंग्रेज शासकों की सहायता की थी। किन्तु कृष्ण के सदृश सत्य, अहिंसा के सेनानी गांधी ने भी क्या हाथों में अस्त्र ग्रहण किया था ——

उधर वे दु:शासन के बन्धु, युद्ध-भिक्षा की झोली हाथ।
इधर धर्म-बन्धु नय-सिन्धु `शस्त्र लो` कहते हैं — दो साथ`।
लपकती हैं लाखों तलवार मचा डालेंगी हा-हाकार,
मारने-मरने की मनुहार, खड़े हैं बलि पशु सब तैयार,
किन्तु क्या कहता है आकाश, हृदय हुलसो सुन यह गुंजार
पलट जाये चाहे संसार, न लुंगा इन हाथों हथियार ।[२]

---

१. रायकृष्णदास, स्वतंत्रता का जन्म स्थल
२. श्री माखनलाल चतुर्वेदी

इसी तरह गांधी के सत्याग्रह को प्रह्लाद के ईश्वरीय आस्था की दृढ़ता के प्रतीक के माध्यम से व्यक्त किया गया है—

किया आत्मबल से पशुबल का विग्रह अपने आप
बिठा तू छूरी पर भी छाप
प्रेम सहित, आतंक रहित था उसका सबल प्रताप
पुण्य पुण्य है, पाप पाप है
कभी किसी का चला न चारा
सत्याग्रह था उसे तुम्हारा ।[१]

इस तरह उस युग के कवियों की विवशता थी कि वह तत्कालीन स्वतंत्रता-संग्राम को पौराणिक संदर्भ के साथ रखे बिना राष्ट्रीयता की बात नहीं कर पाते थे । वस्तुत: देशवासियों के परतंत्रताजनितकष्ट तथा जनता के जीवित जोश को (अर्थात् राष्ट्रीय भावना की विभिन्न स्थितियों को) पौराणिक आवरण के माध्यम से व्यक्त करके उसे अधिक लोकग्राह्य एवम् साधारणीकृत कर सके , साथ ही उस संघर्ष को वह सांस्कृतिक गरिमा दे सके जो कि तत्कालीन संघर्ष को पवित्रता की भावना से संयुक्त कर अधिक गहरी अर्थवत्ता प्रदान करता है ।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने परतंत्र भारत के अनेक स्थितियों का सफल आरोपण श्री मद्भागवत तथा महाभारत के प्रसंगों अथवा चरित्रों पर किया है —एक स्थल पर द्रौपदी भारतमाता है तो अन्यत्र वह मानवता की प्रतीक है ।[२] देश के तत्कालीन मतभेद को कैकेयी-कलह की संज्ञा दी है ।[३]

---

१. श्री मैथिलीशरण गुप्त

२. रे भाई मदमाते भाई
मानवता की द्रुपद सुता का
चीर खींच मुस्काते भाई । —— माखनलाल चतुर्वेदी, माता, पृ० ६०

३. किन्तु कैकेयी-कलह मचा है
राष्ट्र नगर घर घर में
देश निकाले की आज्ञा दु
प्यारे किसी उदर में । —— माखनलाल चतुर्वेदी,माता, पृ० २३

राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति की इस सामान्य भावभूमि पर जहां एक ओर देशकाल के भेदभाव को भुलाकर दो समान स्थितियों को एकाकार कर राष्ट्रीय प्रतीकवाद की सृष्टि की गई वहां इसी समानता की भूमि पर 'व्यंग' की सृष्टि होती है जिसमें कवि पुराणों के विविध निन्दनीय पात्रों के रूप में विदेशियों को स्थापित करके करारी चोट देता है। इस दृष्टि से श्री प्रतापनारायण मिश्र की 'तृप्यताम्' कविता उल्लेखनीय है जिसमें कविने अंग्रेज-शासकों को कभी असुर कुल अथवा कभी वृकोदर तो कभी मृत्युदेवता कह कर व्यंग किया है। एक स्थान पर उन्हें 'यक्षगण' के प्रतीक के रूप में लिया है जो इंगलैण्ड रूपी अलकापुरी को त्याग कर इस देश में आए हैं जिनके स्वागतार्थ इस गरीब देश में कुछ भी नहीं है —

अलकापुरी त्यागि इत आये बड़ी दया कीन्हीं परनाम।
कछु धनपति ने दियो होय तो भोजन को कीजे इतमाम।
तुम्हे समर्पें कहा हमारी पूंजी में नहीं एक छदाम
हां यह जल (यह जव) ये तन्दुल लेहु यक्षगण तृप्यताम्।[१]

एक अन्य स्थल पर उन्हें दैत्यकुल का प्रतीक माना है —

जब लगि हरि अवतार लेत नहिं तब लगि सुरकुल निबल निकाम।
तब लगि सुवरनपुर सम्पति तुम्हरे ही आधीन तमाम
निज रुचि जैहि बारो तेहि त्रासो दुखहु नासो करो आराम
काज कहा हमरे कहिबो को है रासकगण तृप्यन्ताम्।[२]

राष्ट्रीय, सांस्कृतिक भावों को अभिव्यक्त करने वाले इन पौराणिक प्रतीकों की स्थिति वस्तुतः सीधे एवं सुलझे हुए प्रतीकों की है

---

१. तृप्यन्ताम्, पृ० ७
२. वही, पृ० ८

जो प्राचीन आदर्शों की भूमि पर समान भावों के कारण सहज ही स्थापित हो जाते हैं।

छायावादी काव्य और पौराणिक प्रतीक--

द्विवेदीयुगीन काव्य साहित्य की प्रतिक्रियास्वरूप या अन्य कारणों से छायावादी काव्य किस प्रकार अन्तर्मुखी भावाभिव्यंजनापरक हो गया था इसका परिचय चतुर्थ अध्याय में दिया गया है। छायावादी काव्यधारा विषय और शैली दोनों ही दृष्टियों से नवीनता की द्योतक थी। राष्ट्रीयता के बाह्य स्थूल धरातल के स्थान पर आत्म-तत्व को प्रधानता देने वाले इस व्यक्तिवादी काव्य में काव्य-उपकरणों के प्रयोग की दृष्टि से भी अन्तर आ गया था। प्रबन्धात्मकताके स्थान पर मुख्यत: मुक्तकपरक काव्य होने के कारण`वर्णना` के स्थान पर `अभिव्यंजना` को प्रमुखता देनेवाली इस काव्यधारा में प्रतीकों का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है, किन्तु प्रतीकों के आग्रह का तात्पर्य पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग के आग्रह से नहीं है। द्विवेदीयुग का कवि बिना पौराणिक आख्यान के अपनी बात नहीं कर सकता --- चाहे वह प्रबन्धकाव्य के रूप में हो अथवा प्रतीक के रूप में। पुराणकथाएं उनके लिए भावगत तथा भाषागत विवशता थी। अपनी दृष्टि प्रकृति के व्यापक एवं विस्तृत क्षेत्र की ओर मोड़ने के कारण, इन कवियों ने अपने भावों की अभिव्यंजना के लिए, प्रकृति क्षेत्र से लिए गए, प्रतीकों का प्रयोग सबसे अधिक किया है। किन्तु पौराणिक कथा काव्य की सापेक्षता में इस काव्य धारा में काव्य उपकरण के रूप में पौराणिक प्रतीक का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। किन्तु पौराणिक उपमानों के ग्रहण की दिशा में इन कवियों की दृष्टि अपने पूर्ववर्ती कवियों से एक अर्थ में भिन्न है। द्विवेदी युग में प्राय: बहिर्मुखी भावों तथा आदर्शों की अभिव्यक्ति के लिए जिन पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग हुआ है वह सामान्यीकृत होकर अनेक कवियों की लेखनी से व्यक्त होने लगे थे।पर छायावादी काव्य में व्यक्तिगत भावों, प्रेम और सौन्दर्य के वर्णन में यहां तक कि प्रकृति-वर्णन के लिए भी, कहीं पौराणिक प्रतीकों को स्वीकार किया गया है;, कहीं उपमा के रूप में; ~~कहीं~~ तो कहीं अन्यत्र उपमा, प्रतीक आदि के सहारे " रूपक " की सृष्टि की गई है। अत: पुराण-कथाएं और चरित्र यहां (छायावादी काव्य) नूतन भावों से संयुक्त होकर

नवीन धरातल पर स्थापित हैं। जहाँ इस काव्यधारा के कवियों ने बृहत् या लघु प्रबन्धकाव्यों की सृष्टि की है वहाँ भी उन कथाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति ही इन कवियों का मुख्य प्रेय था। राम की शक्तिपूजा, यमुना के प्रति, ~~अशोक वन की सीता~~ और कामायनी आदि में स्थूल कथा से भिन्न सूक्ष्म आशय की प्रतीकात्मक अभिव्यंजना हुई है।

छायावादी कवियों में निराला के काव्य में पौराणिक उपमानों का ग्रहण सबसे अधिक हुआ है। एक स्थल पर उन्होंने सर्वथा नवीन प्रतीकों के सहारे 'रूपक' की सृष्टि की है। पतझड़ में बसंत की प्रतीक्षा में तपस्यारत सूखी डाल के वर्णन में कवि ने (शिव की शक्ति के लिए) तपस्यारत पार्वती के स्वरूप का आरोपण किया है —

सखी री यह डाल बसन बासंती लेगी।
देख खड़ी करती तप अपलक
हीरक-सी समीर माला जप,
शैल-सुता, अपर्णा अशना,
पल्लव वसना बनेगी।[1]

यहाँ सूखी डाल का बसन्त में पल्लवित पुष्पित होना एवम् कामदेव द्वारा शंकर के तपभंग एवम् पार्वती के शंकरवरण का कवि द्वयर्थक आरोपण करता है —

हार गले पहना फूलों का
ऋतुपति सकल सुकृत-कूलों का
स्नेह सरस भर देगा उर-सर
स्मर हर को वरेगी
बसन बासन्ती लेगी।[2]

---

१. गीतिका, पृ० १६
२. वही, पृ० १६

रहस्यवाद के अन्तर्गत आत्मा, परमात्मा के सम्बन्धों तथा ब्रह्म की प्राप्ति के लिए जीव की साधना के अतीन्द्रिय, अलौकिक तथा उदात्त भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग उपयुक्त तथा समर्थ माध्यम का कार्य करता है। एक स्थल पर निराला ने परमात्मा रूपी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए महाभारत के निम्नलिखित रूपक में कई प्रतीकों का आश्रय ग्रहण किया है —

चक्र के सूक्ष्म छिद्र के पार
बेंधना तुझे मीन, शर मार
चित्त के जल में चित्र निहार
कर्म का कार्मुक कर में धार
मिलेगी कृष्णा सिद्धि महान
खोजता कहाँ उसे नादान ?[1]

अर्जुन ने चक्र के ऊपर नाचती मछली का जल में प्रतिबिम्ब देखकर उसकी आँख को अपने बाण का लक्ष्य बनाकर द्रौपदी को प्राप्त किया था। अर्जुन के उस उत्कट साधना के द्वारा कवि जीव के साधना मार्ग की एकाग्रता की ओर संकेत करना चाहता है। यहाँ आत्मा-परमात्मा की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने जिस रूपक की सृष्टि की है उसमें अनेक पौराणिक प्रतीकों का सहारा लिया है। अर्जुन यहाँ उस आत्मा का प्रतीक है जिसे परमात्मा की प्राप्ति करनी है। 'कृष्णा' ब्रह्म का प्रतीक है। 'चक्र' मानव शरीर स्थित वे विविध चक्र हैं जिनको पार करके आत्मा का ऊर्ध्वमुखी होना ही साधना की चरम सीमा है। जल में प्रतिबिम्बित मीन का चित्र अपनी आत्मा में लक्ष्य की एकान्तानुभूति एवम् ध्यानावस्था का प्रतीक है। कर्ममार्ग का ग्रहण ही धनुष का प्रतीक है जिसके माध्यम से लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है। अतः कवि ने उपर्युक्त चित्रण में योग-साधना तथा कर्म-

---

१. गीतिका पृ० २८।

मार्ग को एक साथ संयोजित करके भी देखा है । इसी तरह अपनी रहस्यभावना में आत्मा-परमात्मा के लिए शिव-पार्वती, राम-सीता, कृष्ण-राधा के युगल सम्बन्धों का प्रतीक भी ग्रहण किया है ।[1] एक स्थल पर माया का स्वरूप वर्णन करने के लिए कवि ने कई पौराणिक उपमानों का एक साथ उपयोग किया है —

यदा विरही की कठिन विरह व्यथा
या कि तू दुष्यन्त कांत शकुन्तला
या कि कौशिक मौन की तू मेनका
या कि चित चकोर की तू विधु लता ।[2]

छायावादी काव्य प्रेम-परक भी है। अत: कवियों ने लौकिक प्रेम के धरातल पर भी पौराणिक उपमानों को ग्रहण किया है । अपनी प्रेयसी के लिए शकुन्तला, उर्वशी, मेनका, यक्षिणी, राधा, प्रिय के लिए श्याम, घनश्याम तथा प्रेम अभिव्यंजना के लिए उर्वशी-पुरूरवा और यक्ष-यक्षिणी के पौराणिक प्रसंगों का आधार भी यत्रतत्र प्राप्त होता है । निराला ने कहीं अपनी प्रेयसी को यौवन वन की शकुन्तला के रूप में देखा है[3] तो कहीं प्रेयसी के प्रेमावेग से परिपूर्ण शरीर को `नन्दन निकुंज` तथा उसके

---

१. तुम शिव हो मैं हूं शक्ति
तुम रघुकुल गौरव रामचन्द्र
मैं सीता अचला भक्ति ।
अपरा पृ ७२

२. परिमल, माया, पृ० ६१

३. यौवन के वन की वह मेरी शकुन्तला—
शारदीय चन्द्रिका दग्ध मल के लिए। स्मृति-चुम्बन
परिमल, पृ०२१४

खींच लो इसका कहीं क्या छोर है
द्रोपदी का यह दुरन्त दुकूल है
फूलता है हृदय नभ में बेलि सो
खींच लो इसका कहीं क्या मूल है ।[१]

पंत के काव्य में पौराणिक प्रतीकों के स्थान पर `उपमा` रूप में पौराणिक संदर्भों का ग्रहण अधिक है । अत: पुराणों के प्रति सम्पृक्त भाव के कारण जो गहराई निराला के काव्य में प्राप्त है वह पंत में नहीं है ।

नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में भी यत्र तत्र पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग प्राप्त हो जाता है । विशेषत: प्रकृति के रूप निरूपण के लिए पौराणिक उपमानों का ग्रहण अधिक हुआ है । कभी वह कदलीवन के वर्णन में रति की कल्पना करते हैं ---

फैला है योजन भर कदली-वन शीतल
नागदंत खंभों पर मदन मस्त चम्पा
रति को अति सुख से ज्यों आई हो कम्पा ।[२]

कहीं कदली दल को राधिका के शयन के रूप में[३], तो कहीं बादल को राधारानी का केशपाश तथा नटनागर के सर्प-बन्धन के रूप में देखा है---

---

१. पल्लव, उच्छ्वास

२. कदलीवन, पृ० १

३. सावन की मन भावन की
यह प्रतीक है पावनता का
स्वप्न अर्पण के नयनों का
साज राधिका के शयनों का
हरित भरित अम्लान ।
--- कदली-दल कदलीवन, पृ० ३

सुत सागर के
बालक माधव की गागर के,
मणि इन्द्रनील नीलागर के,
राधारानी के केश-पाश,
बांधव सवर्ण नट नागर के ।[१]

एक स्थल पर उन्होंने ` पंत के प्रति ` नामक अपनी कविता में अनेक पौराणिक प्रतीकों के सहारे रूपक बांधा है —

हिन्दी के तेजस्वी लक्ष्मण
की धाय बनी यह कौसानी
छिनगई गोद जब जननी की
थी यह कौशल्या कल्याणी
हिन्दी का तेजस्वी लक्ष्मण
कौशल्या के आंचल में पल
बन गया राम सा विनयशील
विक्रमी मनस्वी धीर अचल
जब मिली चुनौती रूढ़िग्रस्त
शिव धन्वा पल में तोड़ दिया
शत परशुराम नित क्रुद्ध हुए
उसने कविता पथ मोड़ दिया
कर धनुष भंग पल्लव पिनाक रहा
कवि ने नव निर्माण किया
फिर काव्य सुनीता सीता का
जब वरण किया वनवास लिया ।[२]

---

१. बादलदल, कदलीवन, पृ० ६२
२. पलाशवन, पृ० ३०

इस रूपक में कवि ने राम के जीवन की अनेक घटनाओं की-पंत की काव्यसाधना के साथ संयुक्त करके-प्रतीक योजना की है। सुमित्रानन्दन पन्त (यहां नाम से `लक्ष्मण` होकर) यहां कर्मों में राम की तरह सिद्ध होते हैं जिसके रूप निर्माण में ` कौसनी ` अंचल मां कौशल्या की प्रतीक है। 'शिव-धन्वा' परम्परागत काव्य प्रवृत्तियों का प्रतीक है। राम ने धनुष तोड़ा था । यहां पंत ने परम्परागत कविता की धारा को नवीन दिशा प्रदानकी थी । 'परशुराम' आलोचकों के प्रतीक हैं जिनका कोपभाजन पंत को बनना पड़ा । 'सीता का वरण' नवीन काव्य साधना की स्वीकृति है तथा कवि के जीवन की साधना `वनवास` है, जिसको 'काव्य सुनीता सीता' के वरण के पश्चात् कवि ने ग्रहण किया है।

<u>प्रगतिवादी काव्य धारा और पौराणिक प्रतीक</u> —

प्रगतिवादी काव्यधारा ने साम्यवादी चिन्तन के आधार पर जिस भौतिकता के धरातल पर स्थापित किया है, उसमें पौराणिक प्रतीक (उपमा रूपक आदि भी) नवीन अर्थ से संयुक्त होकर व्यक्त हुए हैं। इस काव्य-धारा में पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग दो रूपों में हुआ है। पहला रूप उन सीधे प्रतीकों का है जो पूर्ववर्ती पौराणिक प्रतीकों के विकास का अगला चरण है, दूसरा जटिल प्रतीकों का है।

सत्-असत् के वाचक दो वर्ग सुर-असुर द्विवेदी युग में देशवासी और विदेशी थे। छायावादी काव्य में मन की दो वृत्तियों (देवत्व-दानवत्व) के प्रतीक थे । किन्तु इस काव्य प्रवृत्ति की विशिष्ट चिन्तनधारा के अनुरूप विदेशी शासक के प्रति का आक्रोश पूंजीपतियों के प्रति तथा सहानुभूति `श्रमिक-वर्ग ` के प्रति हो गयी है जो इन धनपतियों की धनलोलुपता, आर्थिक एकाधिपत्य, के कारण अभावों के चक्र में निरन्तर पीसे जा रहे हैं। अत: स्वभावत: असुरत्व के पौराणिक-प्रतीक का जो वस्त्र अब तक विदेशी शासकों को पहनाया जा रहा था उससे इन धनपतियों को विभूषित किया जाने लगा। मजदूर और किसान जैसे निर्धन वर्ग सुर और नर है। समाज को दो श्रेणियों में विभाजित करके देखने

वाले इन कवियों की रचनाओं में यह प्रतीक अधिक चित्रित था—

जागो दधीचि की अमर अस्थि
फिर से सुरत्व का मूल प्रश्न
सामूहिक शक्ति पुकार उठे
हो जाएगा यह वृत्र भग्न ।[1]

यहां सुर मजदूर-किसान वर्ग का, वृत्रासुर राक्षस पुंजीपति वर्ग का तथा दधीचि की अस्थि क्रान्ति का प्रतीक है। इसी तरह पुराणों के अनेक आततायी चरित्र को पुंजीपति-वर्ग के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है —

शक्ति लग आहत पड़ा है आज भारत
रो रहा है राम सत्यों का प्रदर्शक
भूल मत संजीवनी है आज जनता
रावणों का ध्वंस ही है लक्ष्य प्रेरक
सेतु बांधेंगे अतल पर धीर निश्चय
आह ले पाषाण भी चिल्ला उठे हैं।[2]

पददलित भारत शक्ति-बाण से आहत लक्ष्मण तथा राम सत्य के प्रतीक हैं। लक्ष्मण को जिलाने वाली संजीवनी जनता की शक्ति के प्रतीक है जो भारत की रक्षा करेगी। सेतु-निर्माण क्रान्ति तथा ~~[illegible]~~ पाषाण जनता का प्रतीक है।

शोषक वर्ग के प्रति प्रतिकार तथा शोषित वर्ग के उद्धार का मार्ग क्रान्ति है। अत: वह पौराणिक प्रसंग जिनमें ओज है, असत् का दमन् है, कवि की कल्पना को अधिक उद्बोधित करती है। इसीलिए रुद्ररूपधारी शिव क्रान्ति के रूप में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुए हैं —

---

१. रांगेय राघव, चुनौती, पिघलते पत्थर, पृ० १६
२. वही, पृ० १६

नाचो शिव इस निर्धन जग पर
अन्यायी के आडम्बर पर ।[१]

कहीं इस क्रान्ति को कृष्ण के कालियदमन के रूप में ग्रहण किया है ---

झूमे जहर चरण के नीचे मैं उमंग में गाऊं
तान तान फण व्याल कि मैं तुम पर बांसुरी बजाऊं ।

x x   x x   x x

विषधारी ! मत डोल कि मेरा आसन बहुत बड़ा है,
कृष्ण आज लघुता में भी सांपों से बहुत बड़ा है
आया हूं बांसुरी-बीच उद्धार लिये जनगण का,
फन पर तेरे खड़ा हुआ हूं भार लिये त्रिभुवन का ।
बढ़ा बढ़ा नासिका, रन्ध्र में मुक्ति-सूत्र पहनाऊं
तान तान फण-व्याल कि तुझ पर मैं बांसुरी बजाऊं ।[२]

क्रान्ति के द्वारा नवजीवन के आगमन के रूप में इन कवियों का देखा गया स्वप्न भी अनेक पौराणिक बिम्बों के सहारे व्यक्त हुआ है ।

गूंजेगी दूर कहीं कुंजों में मरण वेणु
छायेगी गोपथ पर करुणा की कनक रेणु
~~छायेगी गोपथ पर करुणा की कनक रेणु~~
आयेगी जीवन की सन्ध्या जब बनी धेनु
रम्भ-रम्भ रंभा मुक्ति गीत गाती हुई ।[३]

---

१. नरेन्द्र शर्मा, प्रभातफेरी, पृ १०३
२. दिनकर, नीलकुसुम, पृ० ११
३. नरेन्द्र शर्मा, पलाशवन.

कृष्ण कथा के इस प्रसंग में निहित कोमल तत्व से विरत इस बिम्ब में कृष्ण का वेणुवादन पूंजीपति के अन्त का प्रतीक है। गोपथ जगत का (कवि द्वारा विस्तृत तथा संकुचित दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त हो सकता है) तथा कृष्ण के आगमन पर ब्रज की वीथियों पर उड़ने वाली धूल 'करुणा' की प्रतीक है, धेनु जीवन के सुख रूपी सन्ध्या की तथा धेनु का रंभाना मुक्ति-गीत का प्रतीक है। अन्यत्र रूप में पूंजीपति वर्ग को ज्येष्ठ के मध्याह्न के रूप में देखा है।

पौराणिक प्रतीकों का दूसरा रूप उन जटिल प्रतीकों का है जिसमें प्रचलित भावादर्श से भिन्न विपरीत अर्थ में 'पौराणिक-चरित्रों' अथवा कथा-प्रसंगों का प्रयोग किया गया है। पौराणिक प्रतीकों के सामान्य सुलझे अर्थों से जटिल अर्थों की ओर संचरण की एक विशेष दिशा है जिसके मूल में बुद्धिवादिता से उद्भूत धर्मनिरपेक्ष दृष्टि एवं विद्रोह की भावना है -- जो कवि को पुराण के विविध प्रसंगों का उसके धार्मिक एवम् पुराण निर्धारित अर्थ से भिन्न विपरीत-धर्मा अर्थ से संयुक्त करके देखने की दृष्टि प्रदान करता है। अनेक प्रकार की महानताओं के वाहक राम तथा द्रोण को कवि अत्याचारी तथा सामंती वर्ग के रूप में देखता है जो अपने स्वार्थ के लिए शम्बूक अथवा एकलव्य जैसे निर्धन पीड़ित वर्ग की निरीहता का उपयोग करते रहे हैं --

> मैं वही शम्बूक हूं
> तूने दिया था रोक उस दिन
> स्वर्गपथ पर मुझे जाते देख
> मैं वही एकलव्य हूं
> कि धनुर्धारी वीर अर्जुन
> हर गया था
> और तूने ले लिया था अंगूठा
> याद रख।[1]

---

१. रांगेय राघव, पिघलते पत्थर, आततायी, पृ० ११५

जन शक्ति को गंगा की वेगवान् धारा के रूप में देखना सीधे अर्थ की अभिव्यक्ति करता है, किन्तु उसको रोकने वाली शिव की जटाएं यहां विपरीत अर्थ की व्यंजना कर रही है —

आज भगीरथ सफल श्रम
ध्येय पूर्ण बना रहा है
आज जन गंगा प्रवाहित
वेग बढ़ता जा रहा है
ढह रहे हैं स्वप्न कल के
चूर्ण है चट्टान के कण
है कहां शिव की जटाएं
रोक ले जो एक भी क्षण [1]

इसी प्रकार युग के `यथार्थ` की अभिव्यक्ति के लिए विषम रूप में पौराणिक उपकरणों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है —

व्यास मुनि को धूप में रिक्शा चलाते
भीम अर्जुन को गधे का बोझ ढोते देखता हूं
सत्य के हरिश्चन्द्र को अन्याय घर में
झूठ की देते गवाही देखता हूं
द्रौपदी और शैव्या औ शची को
रूप की दुकान खोले
लाज को दो-दो टके में बेचता मैं देखता हूं। [2]

पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग की दिशा में सीधे पौराणिक प्रतीकों से जटिल पौराणिक प्रतीकों की ओर संचरण की दिशा है —जिसका विशिष्ट विकास आगे के युगों में होता है।

---

१. शिवमंगल सिंह `सुमन`, प्रलय-सृजन, पृ० ६

२. शिवमंगल सिंह `सुमन`, विश्वास बढ़ता ही गया, पृ० ६७

नयी कविता और पौराणिक प्रतीक--

उपर्युक्त सर्वेक्षण से स्पष्ट होता है कि पौराणिक-कथा-प्रयोगों के समानान्तर ही युगीन वास्तविकता की अभिव्यक्ति के लिए तत्कालीन कवियों ने पौराणिक-प्रतीकों का भी प्रयोग किया है। किन्तु नयी कविता में पौराणिक-प्रतीकों के प्रयोग के मूल में कवि की विशेष `सचेतन दृष्टि` है जो पूर्ववर्ती काव्यधाराओं से भिन्न धरातल पर उसे स्थापित करती है। नयी कविता के जन्म के पश्चात् ही पौराणिक-प्रतीकों के प्रयोग की दिशा में बाढ़ आ जाने के मूल में कदाचित् युरोपीय अधुनातन काव्यधारा में प्रयुक्त पौराणिक प्रतीकों का प्रभाव भी है। विशेषत: इलियट की कविताओं से इस धारा के कवियों ने अधिक प्रेरणा ग्रहण की है और इलियट की कविता में भारतीय धर्मग्रंथ, वेद, उपनिषद् तथा बौद्धधर्म आदि से भी प्रतीक ग्रहण किये गए हैं। किन्तु विदेश के प्रभाव ने एक दिशा का संकेत मात्र किया था। वस्तुत: युगीन परिवेश तथा पूर्ववर्ती हिन्दी काव्य साहित्य की सापेक्षता में पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग इस काव्यधारा के कवियों की काव्याभिव्यक्ति की विवशता बनगई थी।

युग के मूल्यगत संक्रमण, तज्जनित कुंठा, विवशता, क्षोभ, निराशा, अनास्था की भावना अर्थात युगीन जटिल परिस्थितियों से उत्पन्न जटिल भावों तथा संवेदनाओं (जिसकी चर्चा पिछले अध्याय में हुई है) की अभिव्यक्ति के लिए इन कवियों ने पौराणिक प्रतीकों का आश्रय ग्रहण किया है। पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग के विशेष आग्रह के मूल में `प्रतीकों` की वक्रअभिव्यक्ति-सामर्थ्य है जो उसे काव्याभिव्यक्ति की अन्य शैलियों से भिन्न सिद्ध करती है। वस्तुत: `प्रतीक` वह संघटित लघुवेशधारी किन्तु विशेष प्रभावशाली माध्यम है जो जटिल से जटिल भावों को उसके जटिलता के परिप्रेक्ष्य को उद्भासित करती हुई अधिक सूक्ष्म ढंग से व्यक्त कर देती है। दूसरी ओर पौराणिकता से संयुक्त पौराणिक-प्रतीक द्विगणित अर्थ क्षमता की वृद्धि करते हैं। तीखी

अभिव्यक्ति का गुण प्रतीक की विशेषता है तो पौराणिकता से संयुक्त होकर व्यक्त होना उस तीखेपन को सांस्कृतिक-गरिमा प्रदान करना है। इस तरह पौराणिक प्रतीकों का ग्रहण इस कार्य को दो स्तर पर कार्यान्वित करता है —एक ओर जटिल भावों का वहन तथा दूसरी ओर ऐतिहासिक (विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त शब्द) परिपेक्षप्रदान करके उस कथन को विशेष गाम्भीर्य प्रदान करना।[1]

पूर्ववर्ती काव्यधारा की सापेक्षता में नयी कविता में पौराणिक प्रतीकों के आग्रह को इस रूप में समझा जा सकता है कि जिस युगीन यथार्थ के नवीन धरातल पर इस अधुनातन के काव्यधारा ने अपने को स्थापित किया था उसकी अभिव्यक्ति के लिए अबतक प्रयुक्त काव्य उपकरण अपर्याप्त सिद्ध हो रहे थे। अत: अभिव्यक्ति के धरातल पर नवीनता के अन्वेषण के मार्ग में पौराणिक-प्रतीकों का ग्रहण स्वभावत: और अधिकता से होने लगा।

पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग के मूल में ये शैलीगत कारण हैं, किन्तु इन प्रतीकों का काव्य की अन्तर्प्रेरणा से भी सम्बन्ध है —इस पर प्रकाश डाला गया है। नयी कविता के संदर्भ में अन्तर्प्रेरणा के धरातल पर पौराणिक प्रतीक दो रूपों में अपना कार्य कर रहे हैं —एक ओर विघटित मूल्यों के माध्यम के रूप में पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग हुआ है, दूसरी ओर पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग स्वयं ही मूल्यों के विघटन का द्योतक है। पौराणिक प्रतीकों का आधुनिकता के संदर्भ में धर्म-निरपेक्ष तथा पुराण विरोधी रूप में प्रयोग होना ही परम्परागत मूल्यों के विघटन का प्रतीक है। यही कारण है कि केवल अभिव्यक्ति के धरातल पर पन्नों को दुर्वासा[2] के रूप में देखा गया है

---

१. यही कारण है कि इस काव्यधारा में छायावादी काव्य की भाँति उपमा, रूपक, काव्यालंकारों के स्थान पर पौराणिक प्रतीकों तथा प्रतीकों पर आधारित पौराणिक बिम्बों की सृष्टि अधिक हुई है।

२. पन्नों का दुर्वासा, नरेश, नयी कविता ५—६, पृ० १६६

और पंडों की हवेली को पृथुल गणेश[1] के रूप में। कहीं नया कवि अपनी कुंठा को क्वांरी कुन्ती के प्रतीक का वस्त्र पहनाता है[2] अथवा अन्धे तपस्वी को अजन्मी पीढ़ियों के शाप के रूप में देखता है। —

कब तलक यह पूर्वजों से मिली प्रतिहिंसा
कब तलक अन्धे तपस्वी कब तलक
अजन्मी पीढ़ियों पर ?
कब तलक नतशीश कन्धों पर चढ़ा यह तीर्थ संयम ?
कब तलक यह हर नयी आवाज़ का बनवास ?[3]

अत: दोहरी स्थिति के वाहक ये पौराणिक प्रतीक अनेक स्तर पर आधुनिक संवेदना के वाहक हैं —

(क) विद्रोह की स्थिति : पौराणिक प्रतीक--

जैसा कि पूर्ववर्ती अध्याय में कहा गया है कि नयी काव्यधारा की मूल दृष्टि विद्रोहात्मक है। विद्रोह उन परम्परागत मान्यताओं के प्रति है जो इस युग के मानव को अन्दर से कुण्ठित अथवा जर्जरित कर रही है। विविध पौराणिक पात्रों से सम्बद्ध ईश्वरत्व अथवा महानता की पूर्वनिर्धारित धारणा को भी परम्परा के रूप में देखा गया है, जिसके प्रति विद्रोह की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति पौराणिक-प्रतीकों के माध्यम से हुई है —

कितने अगस्त्य आयेंगे गुरु का वेश धरे,
आशीष वचन कहने वाले
फिर विनत तुम्हारा मस्तक यों ही झुका छोड़
ये गुरु पर वापस नहीं लौट कर आयेंगे।[4]

---

१. पृथुल गणेश जैसी
आलोक पूजित
भव्याकार
हवेली
वह पंडा की। श्री राम वर्मा, नयी कविता, ४, पृ० १६६

२. दुष्यन्त कुमार, निकष, ३-४, पृ० ३५६

३. विजयदेवनारायण साही, नयी कविता, ४, पृ० २००, ४. विजयदेव नारायण साही

ख. व्यंग विपर्यय की सृष्टि--

उपरोक्त विद्रोह की भूमि पर ही नये कवि की वह व्यंगात्मक मुख्यदृष्टि है जिसने सामाजिक स्तर पर युग की विशेषता विषमता और विरूपता तथा व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्ति की कुंठा, निराशा अनास्था, मन के विषाद् के तीव्रतम एवं तीखी अनुभूति कराने के लिए पौराणिक-- प्रतीकों के सहारे व्यंग-विपर्यय की सृष्टि की है। परम्परागत अलौकिक, धार्मिक परिवेश से अलग करके पौराणिक उपकरणों को युग के यथार्थ के समकक्ष रख कर विषमता की सृष्टि करना ही व्यंग है। दो युगों के मध्य समय के अन्तराल को मिटाकर दो विषम स्थितियों को एक साथ रख कर सोचने की यह दृष्टि ही उस विद्रूप अथवा व्यंग-विपर्यय की सृष्टि करती है जो कि युग की विरूपता को अधिक तीखेपन से अभिव्यक्त कर जाती है--

कल रात मैंने स्वप्न देखा :
मैं ने देखा है मेनका अस्पताल में नर्स हो गई है
और विश्वामित्र ट्यूशन पढ़ा रहे हैं
उर्वशी ने डान्स स्कूल खोल दिया है
नारद गिटार सिखा रहे हैं
गणेश बिस्कुट खा रहे हैं
और
बृहस्पति अंग्रेजी से अनुवाद कर रहे हैं। [१]

इस तरह का व्यंग-विपर्यय मुख्यत: यांत्रिक सभ्यता की अभिव्यक्ति के लिए अधिक प्रयुक्त हुआ है। एक ओर मशीनी युग का कटु यथार्थ है, तो दूसरी ओर पुराणों की अलौकिकता अथवा दिव्यता की धारणा है। दो विपरीत स्थितियों को एक साथ संयोजित करके सोचने के प्रयास में (परस्पर एक दूसरे

---

१. भारत भूषण अग्रवाल।

की सापेक्षता में) एक ओर पुराणों की अलौकिकता की धारणा ही व्यंगात्मक लगती है तो दूसरी ओर मशीनी-सभ्यता का यथार्थ अधिक तीखेपन से अभिव्यक्त हो जाता है —

मत्स्यावतार में उन्होंने जमशेदपुर के बड़े कारखानेको डूबनेसे बचाया था,
कच्छपावतार में उन्हीं के कन्धों पर मन्दराचल द्वारा समुद्र मंथन से
फाइव इयर प्लान निकला था
वाराह अवतार में उन्होंने राजस्थानको पिछड़ेपन से निकाला था
हलधर रूप में ब्रह्मपुत्र नहीं बांधी
बुद्धावतार में उन्होंने दूसरे सबों की निन्दा की
और अब कल्कि-अवतार लेकर कारखाने में पधारे थे।[१]

यही सामाजिक विसंगति की व्यंगात्मक अभिव्यक्ति है — जिसमें प्राचीन चरित्रों को नवीन संदर्भ में संयुक्त करके देखा है।

यहां पुराणों की 'उर्वशी' 'कैटकैली उर्वशी' है, वह समाज की वह 'मोज़ेक की नाली है' जो गन्दगी अपने अन्दर से बहा ले जाती है —

नाली तो मोज़ेक की है
नक़्शे तिल्ले वाली,
सभी-कभी
सारी बू अपने अन्तर में समेट कर
छिपाकर बहा देती है —
इतनी कृपालु
कैटकैली उर्वशी है
समुद्र से उत्पन्न वह उर्वशी नहीं।[२]

---

१. मदन वात्स्यायन, निकष, भाग २, पृ० १६३
२. वही, नयी परकीया, नयी कविता ३, पृ० ९८

इसी तरह राम की बानर सेना मुंडेरों पर रोटी की तलाश में है अथवा कृष्णा क्युरियोमार्ट में अर्जुन की तलाश में हैं। व्यंग-विपर्यय की यह दृष्टि केवल दो विषम स्थितियों को एक साथ संयोजित करके व्यंग करने मात्र में ही नहीं है वरन् आन्तरिक रूप में यह परम्परागत मूल्यों के परीक्षण एवं विश्लेषण का द्योतक भी है। युगीन यथार्थ के मध्य पौराणिक चरित्रों को रखकर आदर्श एवं यथार्थ की दो विषम स्थितियों को समानान्तर स्थापित करके व्यंग-विपर्यय की सृष्टि करता है। यथा: दुष्यन्त की अंगूठी को इस युग की मछलियाँ नहीं निगलती हैं वरन् गिरवी रखी जाती है।[१] वीर कर्ण मारे जाने के भय से कवच कुंडल का दान नहीं देता है।[२] अथवा जन्माष्टमी की रात जन्मा कवि अपने को कृष्ण के रूप में देखता है —

मैं कृष्ण हूं।
आज भी कोई जरासंध नगर घेर लेता है
मेरे पुरुषत्व को ललकारता है
मैं चुपचाप भाग निकलता हूं
अर्जुन जब हारने लगते हैं
धोखे से भीष्म मरवा देता हूं
असत्य को जिताने के लिए
'अश्वत्थामा हतो' कहते शंख बजा देता हूं
मैं कृष्ण हूं
जन्माष्टमी की रात जन्मा हूं।[३]

---

१. लक्ष्मीकान्त वर्मा, नयी कविता, ४, पृ० १९७
२. अजितकुमार, निकष २, पृ० ५६
३. गंगाप्रसाद श्रीवास्तव, कल्पना, जुलाई १९५७, पृ० २७

ग. सहभाव की अनुभूति और पौराणिक प्रतीक--

जैसा कि उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि नयी कविता में व्यंग-विपर्यय की सृष्टि के लिए पौराणिक उपकरणों को प्रतीक-रूप में स्वीकार किया गया है किन्तु इन प्रतीकों को मात्र व्यंगात्मक रूप में विवेचित करना नयी कविता को सांस्कृतिक-गरिमा से विच्छिन्न करना है। वस्तुत: व्यंग से अलग इस धारा के कवियों की सचेतन-दृष्टि भी है जो यथार्थ को भेलते हुए विवेक के धरातल पर अपने को परम्परा से संयुक्तकरके देखते हुए अपने ऐतिहासिक दायित्व को पूरा करता है। यह भी अपने को परम्परा से संयुक्त करके देखने की स्थिति है जब कि कवि समय के लम्बे अन्तराल को मिटाकर पुराणों में वर्णित अनके स्थितियों में संचरण करता हुआ अपने को अनेक पौराणिक-प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करता है। कालातीत इस सम्पृक्त भाव की अनुभूति एवं इस संचरण के मूल में आज के कवि ने स्थितियों की समानता का भी अनुभव किया है।[१] महाभारत में वर्णित विविध घटनाओं एवं महाभारत के चरित्रों के साथ इस युग के कवि ने सबसे अधिक सह-अनुभूति का अनुभव किया है। युग के आत्मसंघर्ष एवं बाह्य संघर्ष को चक्रव्यूह में घिरे अभिमन्यु की विवशता से तुलना करना अनुभूति की समान भावभूमि है, जहां कवि दो स्थितियों में कहीं न कहीं सामंजस्य तथा सह-भाव का अनुभव करता है, जिसके आधार पर इन पौराणिक उपजीव्यों को नवीन स्थिति तथा नवीन संवेदना से संकलित करके व्यक्त किया है। समानता की अनुभूति प्रथम स्थिति है और उसके आधार पर भिन्न-भिन्न संदर्भों में इन पौराणिक उपकरणों का ग्रहण द्वितीय स्थिति है। यह द्वितीय स्थिति युग की चेतना विशेष के जन्म के साथ नवीन रूप धारण करके अनेक प्रकार की प्रतीकात्मक अभिव्यंजना का मार्ग खोल देती है।

पौराणिक चरित्रों के साथ सामंजस्य, सद्भाव अथवा समानता की अनुभूति द्विवेदी युग की राष्ट्रीय कविताओं में प्रयुक्त पौराणिक उपकरणों

---

१. व्यंग की सृष्टि विषमता के अनुभव की है।

में भी प्राप्त होती है जिसमें कृष्ण के आदर्श को सच्च ही देश के नेताओं के जीवनादर्श से जोड़ दिया गया था, क्योंकि दोनों की ही वृत्ति 'अन्य' के लिए 'स्व' का समर्पण था। परन्तु द्विवेदी युग के कवि की दृष्टि सीधे प्रतीकों की थी। किन्तु यहां युग के जटिल यथार्थ से संयुक्त होकर ये प्रतीक जटिल अर्थों के वाहक बने हैं। महाभारत की कथा के माध्यम से जहां उस युग के कवि ने आदर्श की अभिव्यंजना की है वहां नया कवि अपने विश्लेषण बुद्धि तथा तार्किकता के विशेष आग्रह के कारण (उसके मूल में गहरे पैठकर) महाभारत की घटनाओं के माध्यम से उस 'अन्धयुग' की अभिव्यंजना करने लगा है जो युगीन-यथार्थ की सापेक्षता में विशेष अर्थ रखता है। यह धार्मिक श्रद्धा से अधार्मिक बौद्धिक दृष्टि तथा आदर्श से यथार्थ की ओर अवरोहण की दिशा है। अस्तु,

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि मूल्यों के विघटन के स्तर पर एक ओर सामाजिक विषमता की अभिव्यक्ति के लिए पौराणिक कथा-प्रतीकों का व्यंगात्मक प्रयोग हुआ है वहां इस विसंगति को व्यक्तिगत स्तर पर झेलने वाले भाव, मानव की आत्मपीड़ा, उसकी निराशा, मन के एकाकीपन, किन्तु उससे भी अधिक दु:ख झेलने की कटिबद्धता में इस युग के कवि ने अनेक पौराणिक पात्रों के साथ एकात्मकभाव का अनुभव किया है। 'चक्रव्यूह' इस युग का सबसे प्रचलित प्रतीक है जिसके माध्यम से कवि आत्मसंघर्ष तथा युगीन परिवेश के मध्य पड़े मानव की विवशता को अभिमन्यु के संघर्ष से व्यक्त किया है —

मेरा बाप अर्जुन नहीं था
मेरी मां सुभद्रा नहीं थी
और मैं अभिमन्यु नहीं हूं
इतने पर भी मुझ अबोध को
दुर्भेद्य चक्र में फांस दिया गया है।[१]

---

१. श्रीराम वर्मा, निकष २

<< << << <<

मैं नवागत वह अजित अभिमन्यु हूं
प्रारब्ध जिसका गर्भ से ही हो चुका निश्चित ।[१]

कवि इस संघर्ष को नल-दमयन्ती के संघर्षमय-दुखात्मक गाथा के माध्यम से व्यक्त किया है ---

मैं हूं
मैं ही नल हूं
अगर ही चाय की पत्तियां निगलता हूं
मैं ही अपने विष से स्टोव को ठंडा कर जीता हूं
मैं ही शराब की बोतल से
रामायण से गीता तक जीता हूं
मैं लक्ष्मीकान्त, सत्यवान्, नल, दुष्यन्त, आक्रान्त ।[२]

अथवा महाभारत-युद्ध के भीषण चक्र में पड़े अर्जुन के रूप में देखता है जो इस युग की विषमताओं के मध्य हताश और विवश है ---

यह गलत है -
कि मेरा कोई निजी व्यक्तित्व है
यह गलत है
कि मेरे पिता पाण्डु हैं
जिनके अपरिमेय पौरुष से सूर्य, इन्द्र आदि
विभिन्न रूपों में ग्रहण किया गया है
यह गलत है कि मेरी मां कुन्ती है ।.......

<< << <<

---

१. कुंवरनारायण चक्रव्यूह, पृ० १२८
२. लक्ष्मीकान्त वर्मा, नयीकविता, ४, पृ० ११६

मैं एक खिलौना हूं— संदिग्ध
द्वारिकाधीश कूटनीतिज्ञ कृष्ण या
महाभारत विजयी युधिष्ठिर का ।[१]

संघर्ष की यह स्थिति ही नहीं प्रत्युत स्थितियों को झेलनेका उत्कट आत्मविश्वास भी अनेक पौराणिक-प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त हुआ है। वह कहीं पिता द्वारा तिरस्कृत और अभिशापित नचिकेता के रूप में देखता है, जो परम्परागत मान्यताओं की निर्वीर्य मूर्तियों को तोड़ने का वरदान मांगता है ——

अत:
ओ कालदेव
इस भूत से वर्तमान से महान्
उस भविष्य का तीसरा वरदान मुझे दो
कि वे मुझको नहीं
मेरी निष्ठा नहीं मेरी पीड़ा नहीं—
अपने आप को देखें
उन निर्वीर्य नपुंसक मूर्तियों को तोड़ें
जिनके अपराध में नेत्र उनके मुंदे हैं —
तोड़ने को जिन्हें मैं ही
मैं ने बाहें उठाई थीं ।[२]

अथवा वह 'राहु के बेटे '[३] के रूप में कुंठा का, पीड़ा, विवशता की पीड़ा को विनत शर ग्रहण करने को तत्पर है। यहां दधीचि हड्डियों के हर दाह में तपने के माध्यम से कवि अपने आत्मविश्वास को व्यक्त करना चाहता है—

---

१. राजेन्द्रकिशोर, कल्पना, मार्च १९५७, पृ० ४१-४२

है मुझे स्वीकार
मेरे वन, अकेलेपन, परिस्थितियों के सभी काँटे
ये दधीची हड्डियाँ
हर दाह में तप लें
न जाने कौन दैवी आसुरी संघर्ष बाकी हो अभी
जिसमें तपायी हड्डियाँ मेरी
यशस्वी हों ।[1]

कभी कवि ने अभिमन्यु के संघर्ष के साथ एक-भाव हो मानव व्यक्तित्व के पैतृक युद्ध को झेलने की कटिबद्धता को प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त किया है—

कौन कब बन सकेगा कवच मेरा ?
युद्ध मेरा मुझे लड़ना
इस महाजीवन समर में अन्त तक कटिबद्ध
मेरे ही लिए यह व्यूह घेरा,
मुझे हर आघात सहना,
गर्भ निश्चित मैं नया अभिमन्यु पैतृक युद्ध ।[2]

तो कहीं अपनी अकिंचनता अथवा लघुता की महत्व स्थापना के लिए अपने को महाभारत के महान् व्यक्तियों के भीड़ में नितान्त महत्वहीन से प्रतीत होने वाले 'रथ के टूटे पहिये' के रूप में व्यक्त किया है —

मैं रथ का टूटा पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत !

---

१. कुंवर नारायण, उत्सर्ग, नयी कविता, २, पृ० ६६
२. वही, चक्रव्यूह, पृ० १०३

क्या जाने कब
इस दुरूह चक्रव्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाय ।

< < < < < < < <

मैं रथ का टूटा पहिया
उनके हाथों में ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता हूं ।[१]

घ. सामान्य भावों के प्रतीक—

उपरोक्त पौराणिक प्रतीकों की स्थिति जटिल प्रतीकों की है जिनका सम्बन्ध युग के जटिल परिवेश से है । इन जटिल पौराणिक प्रतीकों के साथ ही अनेक सीधे एवं सरल पौराणिक प्रतीकों की योजना भी हुई है। निम्नलिखित पौराणिक बिम्ब में सुख के भावों की अभिव्यक्ति के लिए 'कंचन-मृग' का प्रतीक ग्रहण किया है ––

सुख का यह कंचन मृग
छलता है छलता है
मन का धनुर्धर यह--
हाथ ले कुटिल कमान
तनी डोर कर
धरे नुकीले बान
पीछे पीछे उसके चलता है –चलता है ।[२]

---

१. डा० धर्मवीर भारती, सात गीत, पृ० ६३
२. डा० रमासिंह, समुद्रफेन, पृ० ११

इससुख रूपी कंचन मृग के पीछे दौड़ने में शान्ति रूपी सीता का हरण होता है — यहाँ सीता शान्ति की प्रतीक है —

मन ने जब पीछा किया
उस मृग सोने का
सोने का हरण था वह
कुछ अनहोने का
सभी तभी
शान्ति सहचरी हरी गई ।[1]

इसी तरह कहीं प्रकृति-चित्रण के लिए पौराणिक प्रतीकों के सहारे 'बिम्ब' का सृजन किया गया है —

इन्द्रधनुष अम्बरा
कण्व प्राण पुत्री-सी
शस्य श्यामला धरा
उसके आसपास ये
दुखियारे कुंठागति
नमित नयन
सावनघन
साँवले बारह सिंघे
आश्रम के मुक्त हिरन ।[2]

किन्तु इस तरह के सीधे प्रयोग बहुत अल्प संख्या में प्राप्त होते हैं ।

---

१. डा० रामसिंह, समुद्रफेन, पृ० ११
२. राजेन्द्र अनुरागी, कल्पना, सितम्बर, १९६१ पृ० ६०

पुस्तक सूची

काव्य-ग्रन्थ

१. अंतर्दर्शन : तीन चित्र — पं० उदयशंकर भट्ट, प्रथम संस्करण, सन् १९५८ ई०, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़

२. अद्भुत रामायण — लाला लालमणि, चतुर्थ संस्करण, सन् १९१४ ई०, मुंशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

३. अनिरुद्ध परिणय — लछन मिश्र, प्रथम संस्करण, सन् १९०३ ई०, मुंशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

४. अपरा — पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' सं० २००३ वि०, महिला विद्यापीठ, प्रयाग

५. आराधना — निराला, प्रथम संस्करण, २०१० वि०, साहित्यकार संसद, प्रयाग

६. आल्हारामायण — (किष्किन्धाकांड) श्री चतुर्भुज मिश्र, सन् १८८४ ई०, खंग विलास प्रेस, बांकीपुर

७. आल्हारामायण — श्री बालमुकुन्द शर्मा, संवत् १९५५ वि०, वेंकटेश्वर मुद्रण यंत्रालय

८. आल्हारामायण — श्री चतुर्भुज मिश्र १८९० ई०, खंग विलास प्रेस, बांकीपुर

९. आल्हारामायण — श्री चतुर्भुज मिश्र सन् १८९२ ई०, खंगविलास प्रेस, बांकीपुर

१०. इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये — अज्ञेय, प्रथम संस्करण, १९५७ ई०, सरस्वती प्रेस, प्रयाग

११. उर्वरा — श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' प्रथम संस्करण, १९५७ ई०, अजन्ता प्रेस, पटना ।

१२. उत्तरा — श्री सुमित्रानन्दन पंत, प्रथम संस्करण, संवत् २००६ वि०, भारती भण्डार, इलाहाबाद

१३. उर्मिला — श्री बालकृष्ण शर्मा`नवीन` , प्रथम संस्करण, सन् १९५७ई० अतरचन्द कपूर एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली

१४. उर्वशी — डा० रामधारी सिंह `दिनकर` प्रथम संस्करण, सन् १९६१ उदयाचल, आर्य कुमार रोड, पटना- ४

१५. उषा — श्री शिवदास गुप्त`कुसुम`, प्रथम संस्करण, संवत् १९८२ वि० गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

१६. उषा अनिरुद्ध व्याह— श्री रामचरण वैश्य, सन् १९०२ ई०, छोटेलाल लक्ष्मी-चन्द्र, अयोध्याय

१७. उषा हरण — श्री रामबलराम शास्त्री, प्रथम संस्करण, संवत् १९७४ वि० यदु ग्रन्थमाला, कार्यालय, कलकत्ता

१८. कृष्ण चन्द्रिका — गुमान मिश्र, संवत् १९५२ वि०, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

१९. कामायनी — श्री जयशंकर प्रसाद, चतुर्थसंस्करण : सन् १९४३ ई० , भारती भंडार, इलाहाबाद

२०. कनुप्रिया — डा० धर्मवीर, भारती, प्रथम संस्करण, सन् १९५९ ई०, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

२१. कृष्णायन — पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र, हिन्दी विश्वभारती कार्यालय, लखनऊ (प्रकाशन समय नहीं दिया है)

२२. कौशल किशोर— पं० बलदेवप्रसाद मिश्र, प्रथम संस्करण, सन् १९३४ ई०, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद

२३. कंसबध — श्यामलाल पाठक, प्रथम संस्करण, सन् १९४६ ई०, विद्या मंदिर लिमि०, नयी दिल्ली

२४. कंस-बध — निहालचन्द्र भट्टा, संवत् २०१२ वि०, लालपुर की गली, बनारस

२५. कविता-कलाप — सम्पादित पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, १९२१ ई०, इं०प्रेस, प्रयाग

२६. कविता कौमुदी — द्वितीय भाग, संपादित– पं० रामनरेश त्रिपाठी, तीसरा संस्करण, संवत् १९८३ वि०

२७. कृष्ण सुदामा — श्री शिवनन्दन सहाय, सन् १९०७ ई०, बाबूरामशरण विजय-सिंह

२८. कृष्ण सागर — मुंशी जगन्नाथ सहाय, तीसरा संस्करण, सन् १८८५ ई०, मुंशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

२९. कृष्ण सुदामा — श्री शिवनन्दन सहाय, सन् १९०७ ई०, बाबू रामशरण विजय सिंह

३०. कदलीवन — नरेन्द्र शर्मा, प्रथम संस्करण, सन् १९५५ ई०, किताब महल, इलाहाबाद।

३१. कैकेयी — श्री केदारनाथ मिश्र`प्रभात`, संवत् २००७ वि०

३२. कृष्णमानस — श्री रामप्रसाद कसार, विशारद, संवत् १९५७ वि० ,शंकर प्रिंटिंग प्रेस,बालघाट,म०प्र०

३३. कृष्ण चरित–माला — काशीदीन शुक्ल, प्रथम संस्करण, संवत् १९८७ वि०

३४. कृष्ण दर्शन — श्री मंगलाप्रसाद गुप्त`श्रीबाल` संवत् १९८२ वि०, कृष्ण दर्शन पुस्तकालय, जौनपुर

३५. कृष्ण रामायण — घनाराम कवि, १८९४ ई०

३६. गीतिका — पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला`, प्रथम संस्करण, संवत् १६६३ वि०, भारतीय भंडार, इलाहाबाद

३७. गौरी रामायण— श्री गौरीप्रसाद मिश्र, प्रथमसंस्करण, सन् १८६७ ई०, व्यासि यंत्रालय, काशी

३८. गौरी विवाह — श्री गौरीप्रसाद मिश्र, प्रथम संस्करण, सन् १६०२ ई०, सेंट्रल प्रेस यंत्रालय, भागलपुर

३६. चक्र व्यूह — श्री कुंवरनारायण, प्रथम संस्करण, सन् १६५६ ई०, राज० पब्लि०, लि०, बम्बई

४०. चित्राधार — श्री जयशंकर प्रसाद, १६८५ वि०, भारतीय जीवन पुस्तकालय, काशी

४१. छन्द रामायण— श्री महावीरदास मालवीय, सन् १८६४ ई०, मुंशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

४२. तारक बध — श्री गिरिजादत्त शुक्ल `गिरीश` प्रथम संस्करण : सन् १६५८ ई०, भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग

४३. तृप्यन्ताम् — पं० प्रतापनारायण मिश्र, खंग विलास प्रेस, बांकीपुर (प्रकाशन समय नहीं दिया है)

४४. दैत्यवंश — श्री हरिदयालु सिंह, प्रथम संस्करण, संवत् १६६७ वि०, इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग ।

४५. द्वापर — श्री मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम संस्करण, संवत् १६६३ वि०, चिरगांव, झांसी

४६. ध्यान मंजरी — अग्रदास, संवत् १६६३ वि०, राय विश्वेश्वर शरण, पेंशनर—पुलिस इन्सपेक्टर, गया ।

४७. नदी में दीन — श्री भगवानदीन 'दीन' प्रथम संस्करण, संवत् १९८२ वि०, हिन्दी पुस्तक भंडार, लेहरियासराय

४८. नहुष — श्री मैथिलीशरण गुप्त, नवम संस्करण, संवत् २०११वि०, चिरगांव, झांसी

४९. निकष — भाग १-४, १९५५ ई०, साहित्य भवन, लिमिटेड, प्रयाग

५०. नीलकुसुम — डा० रामधारी सिंह दिनकर, प्रथम संस्करण, सन् १९५४ उदयाचल, पटना-४

५१. नयी रामायण-वार्ता काण्ड — बाबा गोमती दास, संवत् १९८८ वि०

५२. पार्वती मंगल — तुलसीदास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, १९९९ वि०

५३. पद्माकर ग्रन्थावली — पद्माकर, सं० २०१६ वि०, नागरी प्रचारिणी, सभा, काशी

५४. प्रियप्रवास — पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', चतुर्थ संस्करण, खंग विलास प्रेस, बांकीपुर

५५. पार्वती — श्री रामानन्द तिवारी शास्त्री, 'भारती नन्दन', प्रथम संस्करण, संवत् २०१२ वि०

५६. पार्वती तपस्या — श्री रामचन्द्र शुक्ल 'सरस' प्रथम संस्करण, सन् १९५१ ई०, प्रतिभा मंडल, बैंक रोड, प्रयाग

५७. प्रेमघन सर्वस्व (भाग १) — प्रेमघन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सं० १९९६ वि०

५८. पंचवटी — श्री मैथिलीशरण गुप्त, बीसवां संस्करण, संवत् २०१२वि०, चिरगांव, झांसी

५६. प्रह्लाद चरित्र — श्रीमान् दुर्गा सिंह जू देव, सन् १६०० ई०, रसिक यंत्रालय, कानपुर

६०. परिमल — पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', प्रथम संस्करण, संवत् २००७ वि०, गंगाग्रन्थागार, लखनऊ

६१. प्रलय सृजन — श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन', सन् १९४४, प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद

६२. पिघलते पत्थर — डा० रांगेय राघव, सन् १६४६ ई०, भारती भवन, आगरा

६३. पलाश वन — श्री नरेन्द्र शर्मा, द्वितीय संस्करण, सन् १६४६ ई०, भारतीय भंडार, प्रयाग

६४. प्रभात फेरी — श्री नरेन्द्र शर्मा, प्रथम संस्करण, १६३६ ई०, प्रकाशगृह, कालाकांकर

६५. बृजचन्द्रविनोद (दो भाग)— किशोरचन्द्र कपूर, प्रथम संस्करण, सन् १६६२ ई०, मोहनचन्द्र कपूर एडवोकेट, लाठी मोहाल, कानपुर

६६. बावन चरित्र — श्री दुनियापति सिंह, संवत् १६८० वि०, ग्रन्थ प्रकाशक, कम्पनी, कानपुर

६७. बेला — निराला, निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग

६८. भारतेन्दु ग्रन्थावली—भाग १—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ; सं० २००७ वि०

६६. भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग २—नागरी प्रचारिणी सभा काशी, द्वितीय संस्करण, संवत् २०१२ वि०

७०. माता — श्री माखनलाल चतुर्वेदी, प्रथमसंस्करण, संवत् २००८ वि०, पंकज मुद्रण, खंडवा

७१. मतिराम ग्रन्थावली— सम्पादित- पं० कृष्णबिहारी मिश्र एवं पं० बृजबिहारी मिश्र, प्रथम संस्करण, संवत २०२१ वि०, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

७२. मधुपुरी — गयाप्रसाद द्विवेदी 'प्रसाद', १९५५ ई०, भारतीय ज्ञानपीठ-दय, प्रयाग

७३. रीतिकाव्य संग्रह — संकलित--डा० जगदीश गुप्त, प्रथम संस्करण, सन् १९६१ ई० साहित्य भवन प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

७४.

७४. रघुराज विलास— महाराजा रघुराज सिंह, चतुर्थ संस्करण, सन् १९२४ ई०, नवलकिशोर प्रे।

७५. रुक्मिणी परिणय — महाराजा रघुराज सिंह, संवत् १९८१ वि०, लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई

७६. राम स्वयम्वर — महाराजा रघुराज सिंह, सन् १९२३ ई०, लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेम, मुंबई

७७. रत्नाकर (काव्य-संग्रह)— नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् १९९० वि०

७८. रामचरित चिन्तामणि— श्री रामचरित उपाध्याय, प्रथम संस्करण, सन् १९२० ई० ग्रन्थमाला कार्यालय, बांकीपुर

७९.

७९. रामचरित-चन्द्रिका— श्री रामचरित उपाध्याय, प्रथम संस्करण, सन् १९१९ ई०, ग्रन्थमाला कार्यालय, बांकीपुर, उत्तर प्रदेश

८०. रामराज्य — श्री बलदेवप्रसाद मिश्र, प्रथम संस्करण, संवत् २०१७ वि०, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, श्री-केदारनाथ-मिश्र 'प्रभात'

८१. राधामुख षोडशी— श्री गोविन्द गिल्लाभाई, सन् १८९४ ई०, भारत जीवन प्रेस, काशी

८२. रावण महाकाव्य — श्री हरिदयालु सिंह, सन् १९५२ ई०, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

८३. राम पंचाशिका — श्री हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ, संवत् १९४० वि०, आर्य दर्पण, यंत्रालय शाहजहांपुर

८४. राम चरित दर्पण — श्री बच्चूलाल शर्मा, प्रथम संस्करण, सन् १९०१ ई०, हित-चिन्तक प्रेस, बनारस

८५. रामराज्याभिषेक — श्री शिवप्रसाद कवीश्वर, संवत् १९५५ वि०, अमर यंत्रालय, बनारस

८६. रामायण तत्व— श्री देवकीनन्दन त्रिपाठी , सन् १८९३ ई०

८७. रामायण — श्री राधेश्याम कथावाचक, सन् १९३९ ई०, बरेली

८८. रामायण लय राधेश्याम— श्री गोविन्ददास जी 'विनीत' सन् १९३९ ई०, बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, राजा दरवाजा, बनारस सिटी

८९. रामचरितमानस — तुलसीदास, तृतीय संस्करण, १९२७ ई०, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

९०. राधाकृष्ण ग्रन्थावली— श्री राधाकृष्णदास, सं० श्याम सुन्दर दास, प्रथम संस्करण १९३० ई० इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

९१. लंका दहन — चौधरी लक्ष्मीनारायण सिंह 'ईश', प्रथम संस्करण, संवत् २००७ वि०, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

९२. लवकुश चरित्र — श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेव बिहारी मिश्र, प्रथम संस्करण, संवत् १९५६ वि०

९३. विश्वास बढ़ता ही गया— शिवमंगल सिंह 'सुमन' प्रथम संस्करण, सन् १९५५ ई०, सरस्वती प्रेस, बनारस

९४. विदेह — पोद्दार, रामावतार अरुण, किरण कुंज, समस्तीपुर

९५. विश्राम सागर — बाबा रघुनाथ दास 'रामसनेही' १५ वां संस्करण, सन् १९०४ ई० , मुंशी नवल किशोर प्रेस, लखनऊ

९६.

९६. वीर पंचरत्न — श्री भगवानदीन 'दीन' , द्वितीय संस्करण, संवत् १९७८ वि० रामलाल वर्मा, प्रोप्राइटर, वर्मन प्रेस, कलकत्ता

९७. वीर सतसई— श्री वियोगीहरि, १९९५ वि०, साहित्य प० लि०, प्रयाग

९८. वैदेही बनवास — पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वितीय संस्करण, संवत् १९९७ वि०, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस

९९. संशय की एक रात— श्री नरेश मेहता, प्रथम संस्करण, सन् १९६२ ई०, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई

१००. साकेत सन्त — श्री बलदेवप्रसाद मिश्र , प्रथम संस्करण, सन् १९४६ ई०, विद्या मंदिर लिमिटेड, नयी दिल्ली

१०१. साकेत — श्री मैथिलीशरण गुप्त, संवत् २०१४ वि०, चिरगांव, झांसी

१०२. सुदामा चरित्र — नरोत्तम दास, संवत् १९६८ वि०, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

१०३. श्री सावित्री — श्री प्रसिद्ध नारायण सिंह , प्रथम संस्करण, सन् १९०३ ई० चन्द्र प्रभा, यंत्रालय, काशी

१०४. सुदामा चरित्र— लाला शालग्राम जी वैश्य, प्रथम संस्करण, संवत् १९५० वि० वैंकटेश्वर यंत्रालय, बम्बई

१०५. सात गीत वर्ष— डा० धर्मवीर भारती, प्रथम संस्करण, सं० १९५९ वि०, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

१०६. समुद्र फेन — डा० रमा सिंह, प्रथम संस्करण, सन् १९५७ ई०, उदय प्रकाशन, लखनऊ

१०७. स्याम संदेसो — श्री अमृतलाल चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, सन् १९५० ई०, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग

१०८. सुन्दरी तिलक— सम्पादित— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, संवत् १९९४ वि०, श्री वेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई

१०९. शंकर सर्वस्व — संपादित-हरिशंकर शर्मा, प्रथम संस्करण, संवत् २००८ वि०, गयाप्रसाद एण्ड संन्स, आगरा

११०. श्रीकृष्ण चरित या रुक्मिणी-मंगल — रूपनारायण पाण्डे, प्रथम संस्करण, सन् १९५७ वि०, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ

१११. श्रीकृष्ण कौस्तुभ — डा० बालमुकुन्द चतुर्वेदी, 'मुकुन्द', प्रथम संस्करण, संवत् २०११ वि०, गीता ज्ञानमंडल, मथुरा

११२. श्रीकृष्ण जन्मोत्सव— शिवप्रसाद कवीश्वर, संवत् १९५१ वि०, कानपुर

११३. शिव रहस्य — श्री रामचरन वैश्य, प्रथम संस्करण, सन् १८८३ ई०, ग्रन्थकार, शिवपुर, काशी

११४. श्रीकृष्ण खण्ड और रुक्मिणी स्वयंवर — प्रथम संस्करण, ~~बनारस~~ श्री रूपनारायण पांडे, सन १९५७ई० हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ

११५. श्री सुदामा चरित्र— श्री विनायकराव भट्ट, प्रथम संस्करण, सन् १९३६ ई०

११६. श्रीकृष्ण विलास— श्री सीताराम सिंह वर्म्मा, द्वितीय संस्करण, सन् १९२६ई०

११७. श्रीकृष्ण जन्म सी — गोविन्द, संवत् १९८३ वि०, गोविन्द पुस्तकालय, सीरीज़

११८. हृदयतरंग— संपादित—बनारसीदास चतुर्वेदी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (प्रकाशन समय नहीं दिया है)

११९. हिम किरीटिनी— श्रीमाखनलाल चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण १९९८ वि०, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद

आलोचना तथा अन्य

१२०. आधुनिक भारत- श्री शंकर दत्तात्रेय जावडेकर, अनु० हरिभाऊ उपाध्याय, सन् १९५३ ई०, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली

१२१. आधुनिक हिन्दी काव्य- डा० कुमार विमल, प्रथम संस्करण, १९६४ ई०, अर्चना, प्रकाशन

१२२. अष्टादश पुराण दर्पण- श्री ज्वालाप्रसाद मिश्र , संवत् १९६२ वि०, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

१२३. आधुनिक हिन्दी कविता में परम्परा और प्रयोग — डा० गोपाल दत्त सारस्वत, प्रथम संस्करण, जून १९६१, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद

१२४. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रथम सं० १९५२ ई०, हिन्दी परिषद्, प्रयाग

१२५. हिन्दी काव्य शैलियों का विकास — डा० हरदेव बाहरी, सन् १९५६ ई० भारती प्रेस, प्रयाग

१२६. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास — डा० श्रीकृष्णलाल, सन् १९५३ ई०, हिन्दी परिषद्, प्रयाग

१२७. आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं — डा० निर्मला जैन, प्रथम संस्करण, १९६३ ई०, हिन्दी अनुसंधान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय

१२८. कबीर साहित्य की परख — श्री परशुराम चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, सं० २०११, भारतीय भंडार, काशी ।

१२९. कामायनी-सौन्दर्य— डा० फतह सिंह, सं० २०१३ वि०, सुमति सदन, कोटा

१३०. नयी कविता के प्रतिमान— श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा, प्रथम संस्करण, १९५७ ई०, भारतीय प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद

१३१. पुराण विमर्श— डा० बलदेवप्रसाद उपाध्याय, सं० २०२१ वि०, चौखम्भा प्रका०, वाराणसी

१३२. बालकृष्ण शर्मा नवीन : व्यक्ति और काव्य— डा० लक्ष्मीनारायण दुबे, १९६४ ई०, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग

१३३. भारत वर्तमान और भावी— रजनी पामदत्त, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, लिमिटेड, दिल्ली

१३४. भागवत दर्शन — डा० हरवंशलाल शर्मा, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़

१३५. भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि— श्री किशोरीलाल गुप्त, प्रथम संस्करण, सन् १९५६ ई०, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस

१३६. भक्ति साहित्य में — मधुरोपासना श्री परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग

१३७. भारतेन्दुयुग— डा० रामविलास शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

१३८. मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता— डा० उमाकान्त, सन् १९५८ ई०, नेश० पब्लि० हाउस, दिल्ली

१३९. रामकथा(उत्पत्ति और विकास)— रेवरेंड फादर कामिल बुल्के, द्वितीय संस्करण, सन् १९६२, हिन्दी परिषद्, प्रकाशन, प्रयाग

१४०. राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय—डा० भगवतीप्रसाद सिंह, अवध साहित्य मंदिर, बलरामपुर

१४१. राम भक्ति साहित्य में मधुर उपासना—श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र `माधव` प्रथम संस्करण, सन् १९५७ ई०, बिहार रा०भा०परि०, पटना

१४२. रीतिकालीन श्रृंगारिक प्रवृत्ति तथा नव निबन्ध — परशुराम चतुर्वेदी, सं० १९५५ ई०, लोक सेवा प्रका०, बनारस

१४३. रीतिकाव्य की भूमिका — डा० नगेन्द्र, द्वितीय संस्करण, १९५३ ई०, गौतम बुकडिपो, दिल्ली

१४४. रैलिजस एण्ड सोशल डाग्र इन पुराणज — (प्रयाग विश्वविद्यालय का अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध) सिद्धेश्वरी नारायण राय (१९५६ ई०)

१४५. वैदिक माइथालजी — ए०ए० मैकडानेल, अनु० श्रीरामकुमार राय, प्रथम संस्करण, सन् १९६१ ई०, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

१४६. साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य — डा० रघुवंश, प्रथम संस्करण, १९६३ ई०, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

१४७. संस्कृत साहित्य का इतिहास — वाचस्पति गैरोला, प्रथम संस्करण २०१७ वि०, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

१४८. हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास — डा० वीरेन्द्र सिंह, प्रथम संस्करण, १९६४ ई० हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग

१४९. हिन्दी नवलेखन — डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, १९६० ई०, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग

१५०. हिन्दी साहित्य का इतिहास — पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९८६ वि०, इन्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग

१५१. हिन्दी साहित्य [उद्भव और विकास] — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन् १९५५ ई० अतर चन्द कपूर एण्ड सन्ज़, दिल्ली

१५२. हिन्दुस्तान की कहानी — पं० जवाहरलाल नेहरू, १९४७ ई०। सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली

१५३. हिन्दुत्व — श्री रामप्रसाद गौड़, प्रथम संस्करण, १९९५ वि०, ज्ञान मंडल यंत्रालय, काशी

१५४. हिन्दी कविता में युगान्तर— डा० सुधीन्द्र, सन् १९५० ई०, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, नयी दिल्ली

१५५. आधुनिक हिन्दी साहित्य— डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण, १९४१ ई०, हिन्दी परिषद्, प्रयाग

~~१५६. हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास — डा० हरदेव बाहरी~~

पुराण

१. अग्निपुराण—प्रसं० संवत् १९७७ वि०, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

२. कूर्म पुराण - संवत् १९८२ वि०, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

३. गरुण पुराण—प्र०सं०, १९९६ वि०, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

४. नारदपुराण—प्र०सं०, सं० १९६२ वि०

५. पद्मपुराण— संवत् १९५२ वि०, श्री वेंकटेश्वर यंत्रालय, बम्बई

६. ब्रह्मपुराण— संवत् १९६३ वि०, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

७. ब्रह्मवैवर्तपुराण—संवत् १९८८ वि०, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

८. ब्रह्माण्ड पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

९. भविष्य पुराण—सं० १९६७ वि० वेंकटेश्वर प्रेस

१०. मत्स्यपुराण— (अनुवाद) रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००३ वि०

११. मार्कण्डेयपुराण—सम्वत् १९८१ वि०, वेंकटेश्वर प्रेस

१२. लिंग पुराण—संवत् १९६३ वि०, वेंकटेश्वर प्रेस

१३. वामन पुराण—सन् १९०६ ई०, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

१४. वाराह — सं० १९५६ वि०, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

१५. विष्णु पुराण—सं० २००९ वि०, गीता प्रेस गोरखपुर

१६. शिव पुराण- १९९६ वि० श्याम काशी प्रेस, मथुरा
१७. श्रीमद्भागवत पुराण-(भाग१व२)-गीताप्रेस गोरखपुर
१८. स्कन्द पुराण (सात खण्ड), १९६६ वि०, वेंकटेश्वर प्रेस(मुद्रणालय) बम्बई
१९. स्कन्द पुराण-गीताप्रेस, गोरखपुर

अन्य संस्कृत ग्रन्थ

१. ऋग्वेद संहिता (प्रथम खण्ड) सं० १९८७ वि० आर्य साहित्य मंडल, अजमेर
२. ऋग्वेद संहिता (द्वितीय खंड) सं० १९९० वि० आर्य साहित्य मंडल, अजमेर
३. ऋग्वेद संहिता(तृतीय खंड) सं० १९९१ वि० आर्य साहित्य मंडल, अजमेर
४. ऋग्वेद संहिता (चतुर्थ खण्ड) सं० १९९१ वि० आर्य साहित्य मंडल, अजमेर
५. वाल्मीकि रामायण (बालकाण्ड से युद्ध काण्ड तक)प्रथम संस्करण, भास्कर प्रेस, मेरठ
६. वाल्मीकि रामायण (युद्धकांडेतर काण्ड), जुलाई १९६०, गीता प्रेस, गोरखपुर
७. महाभारत (सम्पूर्ण साहित्य) - गीताप्रेस, गोरखपुर
८. बृहदारण्य उपनिषद्, १९७६ वि०, बाम्बे मशीन प्रेस, लाहोर
९. शिव महिम्नस्तोत्रम्, पुष्पदन्त विरचित, तृतीय संस्करण, २०२३, मुमुक्षु आश्रम, शाहजहांपुर
१०. ~~हिन्दी-अनुवाद~~

कोश—

१. हिन्दी साहित्य कोश– ज्ञान मण्डल लिमिटेड,वाराणसी, प्रथम संस्करण, २०२०वि०

२. हिन्दी विश्व कोश– नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

३. अमर कोश– अमर सिंह, नवल किशोर प्रेस, प्रथम प्रकाशन, १६१६

अंग्रेजी की पुस्तकें—

१. इन्साक्लोपीडिया ब्रिटेनिका– १४ वां संस्करण, वाल्यूम २१

२. सिम्बालिज्म इट्स मिनिंग एण्ड एफेक्ट– व्हाइट हेड

३. गाइड टू माडर्न थाट — सी०ई०एम०, जोड

४. दी हेरिटेज आफ सिम्बालिज्म–सी०एम० बावरा

पत्र-पत्रिकाएं—

१. सरस्वती

२. आलोचना

३. नयी कविता

४. प्रतीक

५. कल्पना

६. मर्यादा
७. चाँद
८. माधुरी
६. सुधा
१०. हरिश्चन्द्र मैगजीन
११. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका
१२. कल्याण

पुराण-कथानुक्रमणिका

पुराण कथानुक्रमणिका—

रामकथा

१. ब्रह्म पुराण	रामतीर्थ वर्णनम्;- अध्याय १२३, देव-दानव युद्ध में ~~कैकेयी की~~ कैकेयी की वर प्राप्ति, अश्वमेध यज्ञ, पुत्र प्राप्ति से लेकर-वनवास प्रसंग में राम द्वारा दशरथ को पिण्डदान द्वारा नरक से मुक्ति दिलाना
	सप्त कुंडादि तीर्थ- महात्म्य अध्याय १५४ (रावण वध के पश्चात सपरिवार राम का अयोध्यागमन्, सीता वनवास, रामश्वमेध लवकुश वृत्तान्त)
	किष्किंधा-तीर्थ- महात्म्य अध्याय १५६ (रावणवधोपर् सीतादि के साथ गौतमी के पास लौटना)
	अनन्तवासुदेव- महात्म्य अध्याय १७६ (देवताओं सहित रावण का संग्राम और राम-रावण युद्ध
	श्रीहरि के अनेक अवतार वर्णन में रामावतार वर्णन । अ २१३
	रावण द्वारा कुबेर पराभव, कुबेर द्वारा शिव स्तुति, अ० ९७
	सिद्धतीर्थ वर्णन प्रसंग में रावण के तप का प्रभाव । अ० १४३
२. पद्मपुराण	राम का रैवागमन—सृष्टि खंड, अध्याय २८
	राम द्वारा शम्बूकवध, अध्याय ३२
	राम अगस्त्य संवाद । अ— ३३
	श्री राम का लंका, रामेश्वर, पुष्कर और मथुरा होते हुए गंगा तट पर वामन की स्थापना, अध्याय ३५

पाताल खण्ड

शेष के प्रति वात्स्यायन का रामचरित विषयकप्रश्न, रावण वध, राम का अयोध्या प्रत्यागमन, सीता के साथ नन्दिग्राम दर्शन, सीता त्याग, रामाश्वमेध, लवकुश और रामयुद्ध, राम सीता पुनर्मिलन, रामाश्वमेध समाप्ति— १।६८ अध्याय

राम द्वारा विभीषण को बन्धन से मुक्त करना । अध्याय१००

श्रीराम पुष्पारोहण, श्रीरंग नगर जाना, राम का वैकुण्ठ जाना, राम-लक्ष्मी संवाद, अध्याय १०१

राम-जाम्बवन्त संवाद, पुराकल्पीय रामायण कथन ।अ० ११२

रामकृत कौशल्या की श्राद्धविधि । अध्याय ११३

उत्तर खण्ड

रामरक्षा स्तोत्र— अध्याय ७४

रामचरित— लंका प्रत्यागत, राम का राज्याभिषेक, शिवकृत राम-सीता स्तुति, राम का परलोक गमन ।
२६६, २७०, २७१

३. विष्णुपुराण — रामादि का जन्म— अंश ४, अध्याय ४

सीता की उत्पत्ति— अंश ४, अध्याय ५

४. शिवपुराण — सती द्वारा सीता रूप धारण करके राम की परीक्षा, शिव द्वारा सती का मानसिक त्याग । हनुमदवतारवर्णन । शतरूपक संहिता, रूद्र संहिता, सती खण्ड, अध्याय २४-२६

५. भागवतपुराण	रामचरित—स्कन्ध ९, अध्याय १०-११
६. नारदपुराण	भगवान् श्री राम, सीता लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न सम्बन्धी विविध मन्त्रों के अनुष्ठान की संक्षिप्त विधि । पूर्वार्द्ध अध्याय ७३
	हनुमान जी की उपासना, दीपदान विधि कथन , पूर्वार्द्ध७४-७५
	हनुमन्त कवच वर्णन तथा हनुमत चरित वर्णन, पूर्वार्द्ध ७८—७९
	श्री राम लक्ष्मण का संक्षिप्त चरित्र, लक्ष्मणधावल महत्व,उत्तरार्द्ध ७५
	दक्षिण समुद्र के किनारे राम द्वारा स्थापितरामेश्वर, शिवलिंग महात्म्य सहित सेतु-महात्म्य का वर्णन, उत्तरार्द्ध ७६
७. अग्निपुराण	श्रीमद्रामायणारम्भ, बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड, उत्तर काण्ड , अध्याय ५- ११
८. ब्रह्मवैवर्तपुराण	कुशध्वज का कन्या वेदवती की कथा, वेदवती का रावण को शाप, वेदवती का सीता रूप में जन्म, रामकथा के एक अंश का वर्णन, प्रकृति खण्ड, अध्याय १४
	अहिल्याउद्धार प्रसंग में रामकथा का वर्णन — श्रीकृष्ण जन्मखण्ड,उत्तरार्द्ध ६२
९. वराहपुराण	राम द्वादशी व्रत महात्म्य प्रसंगमें दशरथ द्वारा रामद्वादशी व्रत करने पर पुत्र प्राप्ति --अध्याय ४५
	कपिलवराह महात्म्य के अन्तर्गत विभीषण द्वारा प्राप्त वाराह मूर्ति का शत्रुघ्न द्वारा मथुरा में स्थापना । अध्याय १६३

१०. स्कन्द पुराण

रावण उत्कर्ष और पतन का इतिहास, माहेश्वर खण्ड, केदार-खण्ड, अध्याय ८

राम का स्वधामगमन--वैष्णव खण्ड, अयोध्यामहात्म्य खंड, अध्याय ६

सेतु बन्ध की महिमा--ब्रह्म खण्ड, सेतुमहात्म्य, अध्याय१-२
राम द्वारा शिवलिंग प्रतिष्ठा- ब्रह्मखण्ड, सेतुमहात्म्य खण्ड, अध्याय ७

सीता की अग्निपरीक्षा--ब्रह्मखंड, सेतुमहात्म्य, अध्याय २२

भगवान श्रीराम द्वारा रावणवध और सेतु क्षेत्र में रामेश्वर लिंग की स्थापना । ब्रह्मखण्ड, सेतु महात्म्य, अध्याय २७

रावण के बध के कारण राम द्वारा रामेश्वरलिंग की स्थापना, हनुमान का शिवलिंग लाने के लिए कैलाश जाना, देर होने पर राम द्वारा सैकत लिंग की स्थापना ।
— ब्रह्मखण्ड, सेतु महात्म्य, अध्याय ४४-४५

संक्षेप में राम चरित वर्णन, राम द्वारा धर्मारण्य तीर्थ की यात्रा, धर्मारण्यखंड, अध्याय ३२-३३

शिवलिंग को लाने के लिए हनुमान की लंकायात्रा । अवंती खंड, आवन्त्य क्षेत्र महात्म्य, अध्याय २१

ब्रह्म हत्या दोष के निवारण के लिए हनुमान की तपस्या । रेवा खण्ड, अध्याय ८३, अहल्योद्धार । रेवाखण्ड, अध्याय ३६

रावणादि भाइयों की तपस्या तथा शिव द्वारा वरदान । रेवाखंड, अध्याय १६८, लक्ष्मण का स्वामिद्रोह तथा तपस्या । नागर खण्ड, २०

राजवापी के प्रसंग में राजा दशरथ का प्रभाव, इन्द्र-दशरथ मैत्री,

उनके यहाँ रामादि का प्राकट्य, राम द्वारा लक्ष्मण का त्याग, लक्ष्मण का परम धाम गमन, श्रीराम का किष्किंधा, लंका एवं हाटकेश्वर तीर्थ में जाना, रामेश्वर, लक्ष्मणेश्वर, सीता की प्रतिमा की स्थापना । नागर खण्ड ६१-६७

रामेश्वर तीर्थ में राम लक्ष्मण द्वारा शिव प्रतिष्ठा । प्रभास खण्ड, अध्याय १११-११३

रावण द्वारा रावणेश्वर तीर्थ में शिव प्रतिष्ठा । प्रभास खण्ड, अध्याय १२३

दशरथेश्वर तीर्थ में दशरथ द्वारा शिव प्रतिष्ठा । प्रभासखण्ड, अध्याय १७१

११. वामनपुराण — रावण द्वारा अपमानित होकर वेदवती की सीता के रूप में उत्पत्ति, अध्याय ३७

१२. कूर्मपुराण — इक्ष्वाकुवंश वर्णन प्रसंग में राम चरित वर्णन, पूर्वविभाग, अध्याय २१.

सीता के पातिव्रत कथन प्रसंग में माया सीताहरण,

—उत्तरविभाग, अध्याय ३४

१३. गरुड़ पुराण - रामायण— अध्याय १४३

१४. ब्रह्माण्ड पुराण — मिथिलावंश वर्णन प्रसंग में सीताजन्म, ३, अध्याय ६४

१५. देवी भागवत — नवरात्रि प्रसंग वर्णन में रामचरित वर्णन, राम द्वारा नवरात्र व्रत, तृतीय स्कन्ध, अध्याय २८-२९

वेदवती कथा, रामचरित का एक अंश, भागवती सीता द्रौपदी के पूर्व जन्म का वृत्तान्त ।

— नवम स्कन्ध, अध्याय १६

१६. लिंग पुराण	सूर्यवंश वर्णन प्रसंग में राम का संक्षिप्त वर्णन, पूर्वार्द्ध, अध्याय ६६.
१७.	अम्बरीष की कथा, नारद शाप वश, राम,लक्ष्मण का अवतार-ग्रहण–उत्तरार्द्ध, अध्याय ५.
१७. भविष्यपुराण	कौशल्या-गौतमी की कथा —
	— अध्याय १११.

कृष्णकथा

१. ब्रह्मपुराण	वसुदेव जन्म और उनकी पत्नियों का नामकीर्तन
	—— अध्याय २७
	देवक का सप्तकुमारी लाभ, कंस जन्म
	— अध्याय १५
	स्यमन्तकोपाख्यान, कृष्ण के साथ जाम्बवती और सत्यभामा का विवाह।
	— अध्याय १६
	सतधन्वा का सत्राजित बध निरूपणकरना अक्रूर के निकट मणि-रखना।
	— अध्याय १७
	कृष्ण चरितारम्भ
	— अध्याय १८०

अवतार प्रयोजन, कंस द्वारा ब देवकी को कारावास देना ।

— अध्याय १८१

भगवान् का जन्म, वसुदेव का गोकुल में आकर पुत्र पहुंचाना, माया द्वारा कंस की भर्त्सना ।

— अध्याय १८२

कंस का बाल विनाश के लिए दैत्यों के प्रति आदेश और वसुदेव देवकी का कारामोचन, अध्याय

— अध्याय १८३

पूतना बध, शकटपतन, नामकरण, यमलार्जुन भंग, बाल लीला वर्णन ।

— अध्याय १८४

कालिय दमन

— अध्याय १८५

धेनुक बध

— अध्याय १८६

प्रलम्बासुर बध

— अध्याय १८७

गोवर्द्धन धारण, इन्द्र द्वारा कृष्ण स्तुति

— अध्याय १८८

रास क्रीड़ा, अरिष्टासुर बध

— अध्याय १८९

कंस नारद संवाद, अक्रूर प्रेरणा, केशि बध

— अध्याय १९०

अक्रूर का गोकुल आगमन, राम(बलराम)कृष्ण का मथुरा गमन

— अध्याय १९१

कुब्जा-कृष्ण आलाप, चाणूर बध, कंस बध, वसुदेव कृत भगवत् स्तुति

— अध्याय १९२

उग्रसेन राज्याभिषेक, रामकृष्ण का सन्दीपनि से अस्त्र प्राप्ति ,
संदीपनि को पुत्र प्राप्ति
— अध्याय १९४
जरासंध पराजय — अध्याय १९५
मुचुकुन्द द्वारा कालयवन बध — अध्याय १९६
मुचुकुन्द द्वारा का भगवान की आराधना तथा वर प्राप्ति,
गोकुल से बलदेव का आगमन
— अध्याय १९७
वरुणा-वारुणी, यमुना बलदेव संवाद, बलदेव का मथुरा जाना
— अध्याय १९८
रुक्मिणी हरण, प्रद्युम्नोत्पत्ति
— अध्याय १९९
शम्बासुर द्वारा प्रद्युम्न हरण, शम्बासुर बध, प्रद्युम्न का द्वारिका
आना — अध्याय २००
रुक्मिणी के पुत्रों का नाम, कृष्ण की भार्याओं का नाम, बल-
देव द्वारा रुक्मिबध — अध्याय २०१
कृष्ण द्वारा नरकासुर बध — अध्याय २०२
पारिजातहरण — अध्याय २०३
उषा अनिरुद्ध विवाह प्रसंग, चित्रलेखा का आलेख्य निर्माणकथन
— अध्याय २०४
अनिरुद्ध हरण — अध्याय २०५
कृष्ण-शंकर युद्ध, कृष्ण का अनिरुद्ध के साथ वापस आना
— अध्याय २०६
कृष्ण के चक्र से वाराणसी का जलना, पुन: कृष्ण के हाथ मे
चक्र का लौट आना — अध्याय २०७
साम्ब द्वारा दुर्योधन कन्या हरण, बलराम कौरव युद्ध, कौरव
पराजय — अध्याय २०८
बलदेव द्वारा द्विविध वानर बध — अध्याय २०९

कृष्ण का द्वारकागमन, प्रभास में यदुवंश विनाश

— अध्याय २१०

कृष्ण के प्रासाद से लुब्ध का स्वर्ग गमन ।

— अध्याय २११

रुक्मिणी आदि का असान्न असान, आभीरों के साथ अर्जुन का युद्ध, परीक्षित को राज्य देकर युधिष्ठिर वनगमन, कृष्ण चरित समाप्ति

— अध्याय २१२

अन्य अवतार प्रसंग में कृष्ण अवतार वर्णन

— अध्याय २१३

२. पद्मपुराण

उग्रसेन की कथा, पद्मावती गोभिल संवाद, पद्मावती का गर्भ और कंस जन्मकथा ।

—सृष्टिखंड — ४८-५१

श्रीकृष्ण चरितारम्भ, श्रीकृष्ण का क्रीड़ास्थल वर्णन, वृन्दावन महात्म्य, श्रीकृष्ण पार्षदगण निरूपण, राधामहात्म्य, गोपिकागण मध्यस्थ, परब्रह्म श्रीकृष्ण का स्वरूप निरूपण, गोपों की उत्पत्ति, अर्जुन का राधालोक दर्शन, स्त्रीत्व प्राप्ति, संक्षेप में कृष्ण चरित कीर्तन, कृष्ण तीर्थ तथा कृष्ण रूप गुण वर्णन

—पातालखण्ड ६६।७७

कृष्ण जी का वृन्दावन में दिनचर्या निरूपण, उस प्रसंग में राधा विलासादि वर्णन ।

— पाताल खण्ड, अध्याय ८

बलराम द्वारा वृद्ध ब्राह्मण सन्दीपनी के पुत्रों को पुनर्जीवित करना और कृष्ण समागम

— उत्तरखण्ड अध्याय२३०-२३

श्रीकृष्ण चरित, उपनयन संस्कार, मुचुकुन्द कृष्ण संवाद, राम-कृष्ण के साथ जरासंध युद्ध, रुक्मिणी हरण, स्यमन्तक पारिजात हरण, ऊषा अनिरुद्ध आख्यान कृष्ण का पौण्ड्रक वासुदेव और उनके पुत्रों को मारना, जरासंध बध, शिशुपाल बध, दन्तवक्रबध, सुदामा चरित, मुसलोत्पत्ति, यदुवंशध्वंस, कृष्ण का देह त्याग, अर्जुन का द्वारिका आना, अर्जुन के साथ आने वाली कृष्ण पत्नियों का हरण ।

— उत्तर खण्ड, २७२—२७६

विष्णुपुराण

स्यमन्तोपाख्यान, कृष्ण-जाम्बवती-विवाह, कृष्ण-सत्यभामा-विवाह, गांदनी की कथा ।

— अंश ४

शिशुपाल की मुक्ति का कारण, वसुदेव पत्नियों का नाम , श्रीकृष्णजन्म , यदुवंशियों की संख्या ।

— अंश ४, अध्याय १५

वसुदेव देवकी विवाह, कंस भार से दु:खी पृथ्वी का देवताओं के पास जाना, विष्णु का कंसबध अंगीकार, श्रीकृष्णजन्म, वसुदेव का गोकुलगमन, कंस के प्रति महामाया का उपदेश वाक्य पूतना बध, शकट भंजन, नामकरण, कालीय दमन, धेनुकबध, प्रलम्बासुर बध, गिरिपूजा, इन्द्रकोप, गोवर्द्धन धारण, रास-वर्णन, अरिष्टबध, केशी बध, अक्रूर का वृन्दावन जाना, श्रीकृष्ण-की मथुरा यात्रा, रजक बध, कुब्जा प्रसंग, कंसबध, उग्रसेन अभिषेक जरासंध पराभव, कालयवन बध, बलदेव का वृन्दावन आना, रेवती परिणय, रुक्मिणी हरण, प्रद्युम्नजन्म, प्रद्युम्नहरण, शम्बरबध, रुक्मिबध, कृष्ण की षोडश सहस्र कन्या प्राप्ति, पारिजात हरण, अनिरुद्ध-उषा विवाह, काशिराज बध,

बलदेव का हस्तिनापुर गमन, मुसलोत्पत्ति, यदुकुल नाश, श्रीकृष्ण-स्वर्गवास, परीक्षित अभिषेक ।

—अंश ५, अध्याय १– ३८

शिवपुराण

उषा चरित्र, बाणासुर की तपस्या, वर प्राप्ति, उषा का स्वप्न, अनिरुद्ध हरण, कृष्ण का बाणासुर युद्ध, शिव कहने पर कृष्ण द्वारा बाणासुर को अभयदान, उषा अनिरुद्ध विवाह । रुद्र संहिता, कुमार खण्ड ।

— अध्याय ५१– ५५

श्रीकृष्ण, उपमन्यु मिलन, उपमन्यु द्वारा श्रीकृष्ण को ज्ञान का उपदेश ।

—वायवीय संहिता, उत्तरखंड ४

श्रीमद्भागवत

श्रीकृष्ण का द्वारका जाना ।

— प्रथम स्कन्ध अध्याय १०

पृथ्वी को आश्वासन, वसुदेव देवकी विवाह, कृष्ण जन्म से श्री भगवान का स्वधाम गमन तक सम्पूर्ण चरित ।

—दशम स्कन्ध, अध्याय १-९०

—एकादश स्कन्ध अ० १- ३१

नारदपुराण

भगवान श्रीकृष्ण सम्बन्धी मन्त्रों की अनुष्ठान विधि तथा विविध प्रयोग , राधाकृष्ण सहस्र नाम स्तोत्र, राधावशावतार निरूपण । पूर्वार्द्ध तृतीय पाद,

—अध्याय ८०-८३

समुद्र स्नान महिमा और श्रीकृष्ण बलराम आदि के दर्शन की महिमा, श्रीकृष्ण राधा द्वारा सृष्टि रचना, गोलोक स्थित राधाकृष्ण के पंच रूप गुणों का निरूपण, ज्येष्ठ मास की

पूर्णिमा को श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्रा का अभिषेक ।

—उत्तरार्द्ध अध्याय ५७-६०

नारद द्वारा भावी कृष्ण चरित का वर्णन ।

—उत्तरार्द्ध, अध्याय ८१

ब्रह्मवैवर्त पुराण

गोलोक, वैकुण्ठ लोक, शिव लोक की स्थिति, कृष्ण के परात्पर रूप का निरूपण, श्रीकृष्ण से सृष्टि का आरम्भ, गोलोक में श्रीकृष्ण का नारायण आदि के साथ रास मंडल में निवास, कृष्ण के वामपार्श्व से राधा का प्रादुर्भाव, राधा के रोम कूपों से गोपांगनाओं का प्राकट्य, श्रीकृष्ण से गोपों, गौओं, आदि की उत्पत्ति, श्रीकृष्ण का नारायण आदि को लक्ष्मी आदि का पत्नी रूप में दान ।

— ब्रह्मखण्ड १-६

परमब्रह्म श्रीकृष्ण और राधा से प्रकट देवी-देवताओं तथा विराटस्वरूप बालक का वर्णन ।

— प्रकृति खंड, अध्याय २-३

श्रीकृष्ण महत्वस्थापना

— प्रकृति खण्ड, अध्याय ३४

नारद-नारायण संवाद में पार्वती द्वारा पूछने पर महादेव का राधा की उत्पत्ति का वर्णन ।

— प्रकृति खण्ड, अध्याय ४८

राधा-सुदामा का परस्पर शाप ।

— प्रकृति खण्ड, अध्याय ४६

कृष्ण चरित—कृष्ण राधा के अवतार ग्रहण से लेकर-मथुरागमन तथा गोलोकगमन तक की विविध लीलाओं का वर्णन । श्रीकृष्ण

जन्म खण्ड, अध्याय-५४

कंस प्रेषित अक्रूर का ब्रजगमन से कृष्ण का गोलोकगमन ।

—कृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय ६३-१२७

११. मत्स्यपुराण जाम्बवान कृष्ण युद्ध ।

— अध्याय ४७

पूर्वक्रीड़ा के निमित्त श्रीकृष्ण जी की उत्पत्ति का वर्णन, वसुदेव देवकी, नन्द और यशोदा का वर्णन, कृष्ण स्त्रियों का वर्णन कृष्ण के पुत्रों का वर्णन ।

— अध्याय ४७

१२. ब्रह्माण्डपुराण कृष्णाविर्भाव कथन ।

— मध्यभाग, उपोद्घातपाद, अ० ३६

१३. देवीभागवत पुराण यदुकुल क्षय, परीक्षित वृत्तान्त । द्वितीय स्कन्ध, अ० ८

जनमेजय और व्यास जी के अवतार विषयक प्रश्नोत्तर, कश्यप जी को वरुण और ब्रह्मा का शाप तथा अदिति को दिति का शाप

—चतुर्थ स्कन्ध, अध्याय १-३

भाराक्रान्त पृथ्वी का भगवान की शरण में जाना, योगमाया का आश्वासन, कृष्णावतार, देवकी की सन्तानों का वध, कंस के हाथ मारे जाने वाले देवकी के बालकों के पूर्वजन्मकी कथा तथा देवताओं तथा दानवों के अंशावतार का वर्णन, कारागार में भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार ग्रहण, वासुदेव द्वारा कृष्ण को नन्द भवन में पहुंचाना, श्रीकृष्णावतार का संक्षिप्त चरित्र-नंदोत्सव से लेकर प्रद्युम्न जन्म तक व की कथा । श्रीकृष्ण द्वारा शिव की स्तुति करना ।

—चतुर्थ स्कन्ध, अध्याय १८-२५

राजा रैवत का ब्रह्मा जी के पास जाना, उनकी सम्मति से रेवती बलराम विवाह। सप्तम स्कन्ध पर ब्रह्म श्रीकृष्णा और राधा से प्रकट चिन्मय देवी और देवताओं के चरित्र, परिपूर्णतम श्रीकृष्णा और चिन्मयी राधा से प्रकट विराट्स्वरूप बालक का वर्णन।

— नवम स्कन्ध, अध्याय २–३

राधाकृष्णा के अंश से सम्भव गंगा की गोलोक में उत्पत्ति।

— नवम स्कन्ध, अध्याय १२

राधा और दुर्गा का चरित्र। नवम स्कन्ध, अध्याय ५०

१४. लिंग पुराण — यदुवंश वर्णन, कृष्णावतार की संक्षेप कथा।

— पूर्वार्द्ध अध्याय ६६

१५. भविष्य पुराण — श्रीकृष्णा और साम्ब संवाद।

— पूर्वार्द्ध, अध्याय ६६

अपनी रानियों और अपने पुत्र शाम्ब को श्रीकृष्णाचन्द्र जी का शाप।

— पूर्वार्द्ध, अध्याय १७१

१६. वाराह पुराण — द्वारिका माहात्म्य वर्णन के अन्तर्गत यादव कुल के प्रति दुर्वासा के शाप का कथन।

— वाराहपुराण, अध्याय १४६

स्कन्द पुराण — श्रीकृष्णाकीर्तन की महिमा, श्रीकृष्णा के बालस्वरूप का ध्यान,

-- वैष्णवख०, मार्गशीर्ष मा०मा०अ०१८-२६

परीक्षित और ब्रजनाभ का समागम, शाण्डिल्य द्वारा भगवान की लीला का रहस्य तथा ब्रजभूमि के महात्म्य वर्णन, यमुना, श्रीकृष्णा पत्नियों का संवाद, कीर्तनोत्सव में उद्धव जी का

प्रकट होना । वैष्णव खण्ड, श्रीमद्भागवत महात्म्य खण्ड

— अध्याय १३१- १३३

कोटितीर्थ की महिमा, भगवान श्रीकृष्ण का अवतार, कंसवध तथा श्रीकृष्ण का कोटितीर्थ में स्नान । ब्राह्मखण्ड, सेतुमहात्म्य खण्ड, अध्याय १६६

अंकपाद तीर्थ की महिमा, श्रीकृष्ण द्वारा मरे हुए गुरु पुत्र को लौटाना ।

—आवन्त्य खंड, अवन्ती क्षेत्र महात्म्य, अ०२६१

बाणासुर के तीन पुत्रों का शिव द्वारा संहार, बाणासुर को शिव लोक की प्राप्ति ।

—रेवाखण्ड, अध्याय ३२७

मार्कण्डेय पुराण — बलदेव जी की ब्रह्महत्या-जनित-पाप-प्रक्षालनार्थ तीर्थयात्रा वर्णन

— अध्याय ७

कूर्म पुराण — यदुवंश वर्णन, श्रीकृष्ण की तपस्या, श्रीकृष्ण रुद्र दर्शन, कृष्ण-मार्कण्डेय सम्वाद में लिंग महात्म्य कथन । श्रीकृष्ण साम्ब आदि का वंशानुकीर्तन ।

— अध्याय २४ – २७

शिवकथा

ब्रह्मपुराण — रुद्र महिमा, दाक्षायिणी संवाद, पार्वती का आख्यान,

— अध्याय ३४

उमा-त्रिदश-संवाद, शिव-पार्वती संवाद ।

— अध्याय ३५

पार्वती-स्वयंबर, शिव - पार्वती विवाह ।

—अध्याय ३६

मदनदाह, रवि का शिववर से इष्टदेश में जाना, पार्वती की कोप शान्ति के लिए महेश्वर का नर्म संभाषण

— अध्याय ३८

दक्षयज्ञ विध्वंस — अध्याय ३६

शिवकृत ज्वर-विभाग —अध्याय ४०

शम्भु विवाह, गौरी के रूप दर्शन से ब्रह्मा का वीर्यपात, उसी वीर्य से बाल-खिल्यों की उत्पत्ति, शिव द्वारा ब्रह्मा को कमंडल देना अध्याय ७२

२. पद्मपुराण— दक्षयज्ञ विनाश, दक्ष द्वारा शिवस्तुति और वर प्राप्ति ।

—सृष्टि खण्ड, अध्याय ५

क्रौष्टुवंश कथा के अन्तर्गत स्यमन्तोपाख्यान, कृष्ण की जन्म कथा, वसुदेव देवकी नन्द का पूर्वजन्म वृत्तान्त, कृष्ण वंश चरित —सृष्टि खण्ड, अध्याय १३

शिव द्वारा शिरच्छेद से रुष्ट ब्रह्मा के स्वेद से पुरुष की उत्पत्ति, स्वेद के भय से शंकर का विष्णु के पास जाना, विष्णु की दक्षिणभुजा त्रिशूल से काटना, शिव कृत ब्रह्म शिरच्छेदन कारण वर्णन, शंकर कृत ब्रह्मस्तव, ब्रह्म हत्या क्षालनार्थ शंकर के प्रति विष्णु उपदेश, रुद्र कृत सकल तीर्थ गमन ।

— सृष्टि खण्ड अध्याय १४

हिमालय में पार्वती उत्पत्ति तथा पार्वती विवाह वर्णन ।

—सृष्टि खण्ड, अध्याय ४०

दक्ष यज्ञ, सतीका देह त्याग, दक्ष शाप ।

— स्वर्ग खण्ड, अ० ३३

हनुमान के साथ शिव का युद्ध ।

— पाताल खण्ड, अध्याय ४४

श्रीराम शिव समागम ।

— पाताल खण्ड, अध्याय ४५-४६

शंकर द्वारा सब देवताओं के तेज से बना हुआ चक्र का निर्माण ।

—उत्तरखण्ड, अध्याय १०

शंकर द्वारा युद्ध में दैत्यों का पराभव, माया, शंकर और पार्वती संवाद

—उत्तरखण्ड, अध्याय १३-१४

नारद के मुख से पार्वती की प्रशंसा सुनकर जलधर का शिव के पास राहुक को दूत बनाकर भेजना, समस्त देवतेज द्वारा शंकर का सुदर्शन निर्माण और दैत्यगण के साथ शिव सैन्य युद्ध, शिव कृत दैत्य पराभव, शिव जलधर युद्ध, गान्धर्व माया से शिव को मुग्ध करके जालन्धर का पार्वती के पास आना, पार्वती का अन्तर्धान होना और स्मरण मात्र से विष्णु का पार्वती के पास आना, शंकर द्वारा जलन्धर बध ।

— उत्तर खंड, अध्याय १०१– १०६

३. शिवपुराण

महाप्रलयकाल में निर्गुण-निराकार ब्रह्म से सदाशिव की उत्पत्ति, सदाशिव से स्वयंभूता शक्ति का प्रकटीकरण, उन दोनों द्वारा उत्तमक्षेत्र काशी का प्रादुर्भाव, शिव के वामांग से परम विष्णु का आविर्भाव ।

— रुद्र संहिता सृष्टि खण्ड, अ० ६

सदाशिव से त्रिदेवों की उत्पत्ति ।

— रुद्र संहिता, सती खण्ड, अध्याय १-२

दक्ष की तपस्या, देवी शिवा का वरदान देना, दक्ष द्वारा मैथुनी सृष्टि का आरम्भ, दक्ष की आठ कन्याओं का विवाह, दक्ष के यहाँ देवी शिवा का अवतार, सती की तपस्या,

ब्रह्मा विष्णु के कहने पर शिव का सती के साथ विवाह करने को तैयार होना, सती शिव विवाह, सती-शिव कैलाश गमन, सती का राम के सम्बन्ध में शंका, सीता रूप धारण करके सती का राम की परीक्षा लेना, सती का शिव द्वारा मानसिक त्याग, दक्ष यज्ञ, सती अपमान, सती का योगाग्नि में अपने शरीर को भस्म कर देना, दक्ष यज्ञ विनाश, शिव का देवताओं पर क्रोध, भयभीत देवताओं का शिव की स्तुति करना, शिव की प्रसन्नता, दक्ष को पुनर्जीवित करना, ।

—रुद्र संहिता, सतीखं०,अ० १०-४३

हिमालय मैना विवाह, देवताओं तथा हिमालय द्वारा उमाराधन, देवी द्वारा दिव्यदर्शन देना तथा अवतरित होने का आश्वासन देना, मैनाक जन्म, उमा जन्म, नारद द्वारा उमा का विवाह शिव जी के साथ होने की भविष्यवाणी, पार्वती द्वारा शिव की सेवा, तारकासुर द्वारा सताये देवताओं का शिव के पास जाना, काम दहन, पार्वती का दुस्तर तप, शिव की प्रसन्नता, पार्वती विवाह ।

रुद्रसंहिता, पार्वती खण्ड, १--५५

४. श्रीमद्भागवत पुराण — शिव और दक्ष का वैर । सती का पिता के यज्ञ में जाना, सती का अग्नि प्रवेश , वीरभद्र द्वारा दक्ष यज्ञ विनाश, दक्ष-बध , देवताओं द्वारा शिव की स्तुति, दक्षयज्ञ पूर्ति ।

--स्कन्ध, अध्याय २--७

५. ब्रह्मवैवर्त पुराण — शिव शंखचूण युद्ध, --प्रकृति खंड, १७-२०

शिव पार्वती सम्भोग, देवताओं द्वारा विघ्न, जमीन पर गिरे हुए शिव के वीर्य से स्कन्द उत्पत्ति-प्रक्रिया, पार्वती का देवताओं को शाप, पार्वती के प्रति शंकर का पुण्यव्रत उपदेश, पार्वती का व्रतविधान, पार्वती के स्तुति से प्रसन्न कृष्ण का

प्रकट होना, वर प्रदान करना और बालक रूप में उनकी शैय्या पर लेटना। गणपति खंड, अध्याय १—६

६. वाराह पुराण गौरी प्रादुर्भाव, दक्ष यज्ञ, दक्ष यज्ञ विनाश, पार्वती जन्म, पार्वती शिव विवाह।

—अध्याय २२

७. स्कन्दपुराण— भगवान शिव की महिमा, दक्ष का शिव जी से द्वेष, दक्ष यज्ञ में सतीगमन, सती अग्नि प्रवेश, दक्ष यज्ञ विनाश, पुन: दक्ष पर शिव की कृपा।

—माहेश्वरखण्ड-केदारखण्ड, अ० ४-५

हिमालय के घर सती का जन्म, कामदेव दाह, पार्वती की तपस्या, शिव द्वारा पार्वती की परीक्षा लेना, सप्तर्षियों द्वारा पार्वती शिव विवाह निश्चय। शिव-पार्वती विवाह, कुमार जन्म।

— माहेश्वर खण्ड, केदार खण्ड अ० १४-१७

भगवान शंकर का अरुणाचल रूप में प्रकट होना तथा विष्णु की उनकी स्तुति करना। माहेश्वरखण्ड, अरुणाचल०खण्ड, अ०५०

अरुणाचलेश्वर की पूजा, शिव के द्वारा सृष्टि का प्रादुर्भाव, विष्णु द्वारा भगवान शंकर की स्तुति, शिव पार्वती के दाम्पत्य जीवन की झांकी, पार्वती की अरुणाचलस्य क्षेत्र में तपस्या। माहेश्वर खण्ड, अरुणा० खण्ड, अ० ५३-५४

सती का देह त्याग, पार्वती विवाह, भगवान शिव का हरिहर रूप में प्राकट्य, शालग्राम शिला का महात्म्य।

— ब्राह्म खण्ड, चातुर्मास्य महात्म्य, अ१६८

महादेव द्वारा पार्वती के प्रति ध्यान योग, एवं ज्ञान योग

का निरूपण ।

—ब्रह्मखंड, चातुर्मास्यखंड, अ० २०१

महाकालवन में शिव का प्रवेश, कपाल मोचन, देवताओं द्वारा स्तवन, महापाशुपत व्रत की महिमा ।

—आवन्त्य खण्ड, अवन्ती क्षेत्र म०, अ० २८४

८. वामनपुराण विष्णु और महादेव संवाद । अध्याय ३

शिव जी का काल स्वरूप कथन । अध्याय ५

कामदाह । अध्याय ६

पार्वती जी की उत्पत्ति। अध्याय २१

भिक्षुक रूपधारी शिव जी का पार्वती से संवाद, पार्वती जी के साथ महादेव जी का विवाह कराने के लिए देवताओं का हिमालय के पास जाना, गौरी विवाह । अध्याय ५१-५३

९. कूर्मपुराण रुद्र सर्ग । अध्याय १०

दक्ष यज्ञ विध्वंस । अध्याय १५

१०. मत्स्यपुराण शिव का त्रिपुर के घर जाने का वर्णन । अध्याय १२८

ब्रह्मादि देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर देवनिर्मित रथ पर शिव का आरूढ़ होना । अध्याय १३२—१३३

शंकर द्वारा त्रिपुर दाह । अध्याय १४०

शिव जी ने पार्वती से अपने श्वेतकान्ति का वर्णन, पार्वती जी का पर्वत के देवता कुसुमामोहिनी नाम सती के सम्मुख दीखना, वीरभद्रपर क्रोधयुक्त होकर शापदेना कि तेरी माता कृष्ण-शिला के समान हो जाए, अग्नि के वीर्य के प्रभाव से पार्वती

जी के वाम कन्धे को फाड़कर दूसरा बालक निकलना ।

— अध्याय १५४-१५८

११. ब्रह्माण्ड पुराण रुद्रोत्पत्ति । प्रक्रियापाद, अध्याय २३

दक्षकन्या और दक्षशाप वर्णन । दक्ष कर्तृक शिवस्तवन ।

— प्रक्रियापाद, अध्याय २६-२७

१२. लिंग पुराण ब्रह्मा, विष्णु का परस्पर कलह, लिंग का प्रादुर्भाव, पंच ब्रह्म-मंत्रों की उत्पत्ति, विष्णु जी को शिव जी का दर्शन होना, विष्णु द्वारा शिव स्तुति, विष्णु का शिव से वर प्राप्त करना ।

— पूर्वार्द्ध अध्याय १७- २२

शिवपूजन का संक्षेप में विधान

— पूर्वार्द्ध, अध्याय २७

देवदारु वन में शिव जी का जाना, वहां के मुनियों का शिव जी पर क्रोध ।

— पूर्वार्द्ध , अध्याय २९

शिवपूजन विधि, मुनियों का शिवदर्शन, मुनियों द्वारा शिव स्तोत्र, मुनियों के प्रति शिव जी का उपदेश कथन ।

— अध्याय ३१-३३

शिव जी के अनेक प्रकार की प्रतिमाओं के स्थापना का फल ।

— पूर्वार्द्ध, अध्याय ७६

शिव जी के अनेक भांति के प्रासाद निर्माण का वर्णन ।

— पूर्वार्द्ध अध्याय ७७

शिवपूजन का फल ।

— पूर्वार्द्ध अध्याय ७९.

शिव जी के नगर का वर्णन ।

—पूर्वार्द्ध अध्याय, ८०

संक्षेप में सती जी की कथा,

—पूर्वार्द्ध अध्याय ९९

दक्ष यज्ञ विध्वंस का वर्णन ।

—थ पूर्वार्द्ध अध्याय १००

कामदेव का शिव नेत्र से भस्म होना ।

—पूर्वार्द्ध अध्याय १०१

पार्वती जी का स्वयंवर में शिव को वरना ।

— पूर्वार्द्ध अध्याय १०२

शिव-पार्वती विवाद ।

— पूर्वार्द्ध अध्याय १०३

शिव की आज्ञा का वर्णन, शिव की आठ मूर्तियां ।

--- उत्तरार्द्ध १०-१३

शिव का महात्म्य वर्णन ।

— उत्तरार्द्ध १६-१९